Digitized by eGangotri

Prescribed as a textbook on Rhetorics and Poetics in the Intermediate and B.A. Examinations of the Benares Hindu University.

Kavey pardeep

काव्य-प्रदीप

(अर्थात् रस, गुण, अलंकार, छंद आदि काव्य के अंगों का सुबोध विवेचन)

इंटरमीडिएट, बी. ए., तथा उनकी समकक्ष परीक्षाओं के निमित्त

Ramblori shukal

लेखक

पं० श्री रामबहोरी शुक्ल एम. ए., साहित्यरत्न

अध्यापक, क्वीन्स कालेज,

बनारस

प्रकाशक

हिन्दी भवन Hindi Bhawan

लाहौर Lahoer

Sri Pratap Singh Public Library Srinagar.

मूल्य

१।।।)

Mohar Chand Lachhman Das LAHORE

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रकाशक
श्री धर्मचन्द्र विशारद
हिन्दी भवन
लाहौर

दूसरा संस्करण (संशोधित और परिवर्द्धित)—१९३४

मुद्रक
श्री देवचन्द्र विशारद
हिन्दी भवन प्रेस
लाहौर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

Kishore Jain
N. W. W. Jammu

इस पुस्तक के विषय में

जिन विषयों पर इस पुस्तक में प्रकाश डालने का यत्किंचित् प्रयत्न किया गया है, उन पर संस्कृत में अगणित बड़े-छोटे पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ रचे जा चुके हैं; हिन्दी में भी तद्विषयक सुन्दर कृतियों का बाहुल्य है। यह जानते हुए भी इसको प्रकाश में लाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इन पंक्तियों के लेखक को परमात्मा के असीम अनुग्रह से कुछ लोगों को इन विषयों के पढ़ाने का सुअवसर कुछ वर्षों से मिल रहा है। उसे उन विद्यार्थियों की कठिनाइयों से प्रायः नित्य परिचय मिला करता है। उनके दूर करने की यथाशक्य चेष्टा वह सदैव कक्षा के भीतर और बाहर किया करता है। प्रस्तुत पुस्तक उसकी अधिक संख्यक विद्याध्ययन करने वाले नवयुवकों को काव्य के अङ्गोपाङ्ग सम्बन्धी विषयों को समझाने की इच्छा के फल-स्वरूप प्रकाशित हो रही है। इस कार्य में कदाचित् वह कुछ लोगों को सहायता पहुँचा सके।

इस पुस्तक में आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार उदाहरणों के द्वारा काव्य-सम्बन्धी विविध विषयों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। उनकी संख्या की अधिकता से यद्यपि पुस्तक का कलेवर कुछ बढ़ सा गया है, तथापि विषय को भली-भाँति सुबोध बनाने के अभिप्राय से ऐसा जान-बूझकर किया गया है। हमारे यहाँ की प्राचीन शिक्षा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विधि में मेधा और धारणा दोनों शक्तियों के विकास का निरन्तर ध्यान रखा जाता था। परन्तु आज कल नवयुवकों को यदि घुमा फिरा कर भी 'रटने' का संकेत किया जाता है, तो उन्हें बुरा मालूम होता है। वे इसी कारण पुस्तकों पर ही सदैव निर्भर रहा करते हैं, अपने मस्तिष्क पर विश्वास नहीं के बराबर करते हैं। इसका कारण चाहे जो हो, स्थिति कुछ ऐसी ही है। अतः इस पुस्तक में इस प्रकार की कोई बात बतलाने की चेष्टा नहीं की गयी जिससे उसमें रटने की बू आवे। इससे जहाँ तक हो सका है मैंने विषय को पूर्णरूपेण स्पष्ट करने का यत्न किया है। ऐसा करने में प्राचीन एवं अर्वाचीन पुस्तकों से बिना किसी सङ्कोच के सहायता ली है। एतदर्थ उनके रचयिताओं के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

हिन्दी के मान्य विद्वान् श्रद्धेय पण्डित रामचंद्र जी शुक्ल ने इस पुस्तक को देख कर कई स्थलों पर जो परामर्श दिये हैं, और काव्य के कुछ सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जो स्पष्टीकरण किया है उससे मैंने पूरा लाभ उठाया है। शुक्लजी को शाब्दिक धन्यवाद देने भर से मुझे अपने हृदय के भावों का पूर्ण प्रकाशन करने का अवसर न मिलेगा। अतः उनके प्रति अपनी कृतज्ञता मन में ही रखता हूँ।

इस पुस्तक में आकार की सीमा ने सदैव और भी अधिक विस्तार से समझाने की प्रवृत्ति के मार्ग में रोड़े डाले हैं। इस पर भी रस, शब्द, शक्ति, गुण, अलंकार, छन्द आदि कविता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के आवश्यक अंगों पर यथा-संभव थोड़ा-थोड़ा प्रकाश डालने की चेष्टा की है। इसमें विषय को स्पष्ट करने का जो ढंग स्वीकृत हुआ है उसके अतिरिक्त मैं इस पुस्तक की किसी बात में मौलिकता का दावा नहीं करता। मैंने तो संस्कृत और हिन्दी के विस्तृत साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की बातें समझाने का प्रयत्न मात्र किया है; उदाहरण स्वरूप मैंने जो अवतरण चुनने की कोशिश की है वे इस विषय की अन्य पुस्तकों में से यथा संभव नहीं लिये।

अपनी शक्तियों की सीमा अच्छी तरह जानते हुए भी मैंने ऐसे गम्भीर विषय को, सो भी इतने कम पृष्ठों में, बोधगम्य बनाने का दुस्साहस किया है। मेरा यह कार्य विद्वानों-द्वारा कैसा समझा जायगा और विद्वान् बनने के लिए सचेष्ट छात्रों का कहाँ तक पथ-प्रदर्शक या सहचर बन सकेगा—इसका निर्णय करना न तो मेरा काम है, और न अधिकार ही। यदि यह किसी काम का हुआ तो अपनाया जायगा ही और यदि इसमें कुछ नवीनता, विशेषता या उपयोगिता न हुई तो यह आप से आप नष्ट हो जायगा; कारण, इस संघर्षमय जगत् में सब से शक्तिशाली वस्तु का ही बच सकना त्रिकाल अबाधित प्रकृत सत्य है। यदि कोई सज्जन इसकी कमियों, त्रुटियों आदि की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की कृपा करेंगे तो मैं उन की सत्सम्मति से लाभ उठाऊँगा।

श्रीरामबोहोरी शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सूची

१. विषय प्रवेश	**१—३**
कविता का आकर्षण	१
२. काव्य और उसके भेद	**४—१९**
कविता का स्वरूप	४
गद्य, पद्य, सूक्ति और कविता	६
काव्य के भेद—गद्य, पद्य और चम्पू	९
दृश्य और श्रव्य	१०
श्रव्य काव्य के भेद	१५
प्रबंध काव्य के भेद—खंड काव्य, महा काव्य	१६
ध्वनि, गुणभूत, व्यंग्य और चित्र या अलंकार काव्य	१७
३. शब्द-शक्ति	**२०—४४**
भूमिका	२०
अभिधा	२३
लक्षणा	२५
रूढा और प्रयोजनवती	२८
लक्षण और उपादान	३१
गौणी और शुद्धा	३३
व्यंजना	३५
व्यंजना के भेद	३७
ध्वनि	४४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४. रस रहस्य ४५—१०४
रस क्या है ४५
रस की उत्पत्ति ४७
स्थायीभाव ५०
विभाव ५३
अनुभाव ५४
अनुभाव के प्रकार—सात्विक, कायिक ५६
संचारी या व्यभिचारी भाव ५७
संचारी भावों की संख्या ५९
रस के भेद ६७
श्रृंगार रस ६८
हास्य रस ७५
करुण रस ७८
रौद्र रस ८१
वीर रस ८३
भयानक रस ८६
वीभत्स रस ८८
अद्भुत रस ९०
शांत रस ९२
वात्सल्य रस ९४
रसों का पारस्परिक संबंध ९८
रसात्मक उक्ति के भेद १००
रसाभास १००

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भावाभास १०१
भावशान्ति १०२
भावोदय १०२
भावसंधि १०३
भावशवलता १०४
५. गुण १०५—१०८
गुण और उसके भेद १०५
ओज १०६
माधुर्य १०७
प्रसाद १०७
६. अलंकार प्रकाश १०९—२६८
अलङ्कार और काव्य में उसका स्थान १०९
अलङ्कार के भेद १११
शब्दालंकार
शब्दालंकार के मुख्य भेद ११२
अनुप्रास ११२
अनुप्रास के भेद ११४
छेकानुप्रास ११५
वृत्यनुप्रास ११६
लाटानुप्रास ११८
यमक १२०
पुनरुक्तवदाभास १२७
पुनरुक्तिप्रकाश १२८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वीप्सा	१२९
श्लेष	१३१
वक्रोक्ति	१३३
अर्थालंकार	
अर्थालंकारों का श्रेणी-विभाग	१३७
साम्य-मूलक अर्थालंकार	
उपमा	१४३
उपमा के अंग	१४४
उपमा के लिए कुछ आवश्यक बातें	१४९
लुप्तोपमा	१४७
मालोपमा	१४९
रसनोपमा	१५३
उपमेयोपमा	१५४
अनन्वय या अनन्वयोपमा	१५५
प्रतीप	१५६
व्यतिरेक	१६१
रूपक	१६३
सम, अधिक और न्यून रूपक	१६५
सांग, निरंग और परंपरित रूपक	१६६
उत्प्रेक्षा	१७२
वस्तु-उत्प्रेक्षा	१७३
हेतु-उत्प्रेक्षा	१७४
फल-उत्प्रेक्षा	१७४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हेतु और फल-उत्प्रेक्षा में अंतर	१७७
स्मरण	१७७
अपह्नुति	१८१
शुद्धापह्नुति	१८२
हेत्वपह्नुति	१८३
पर्यस्तापह्नुति	१८४
भ्रान्तापह्नुति	१८५
छेकापह्नुति	१८६
कैतवापह्नुति	१८७
भ्रान्तिमान् (भ्रम)	१८८
सन्देह	१९०
उल्लेख	१९४
प्रतिवस्तूपमा	१९८
दृष्टान्त	२००
उदाहरण	२०२
निदर्शना	२०३
अतिशयोक्ति	२०५
रूपकातिशयोक्ति	२०५
भेदकातिशयोक्ति	२०७
सम्बंधातिशयोक्ति	२०८
असम्बंधातिशयोक्ति	२०९
अक्रमातिशयोक्ति	२०९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चपलातिशयोक्ति २१०
अत्यन्तातिशयोक्ति २११
अत्युक्ति २१३
तुल्ययोगिता २१४
दीपक २१६
कारक दीपक २१७
माला दीपक २१८
अर्थान्तरन्यास २१८
अप्रस्तुत प्रशंसा २२१
अप्रस्तुत प्रशंसा के भेद २२२
समासोक्ति २२४
सहोक्ति २२६
विनोक्ति २२७
परिकर २२८
परिकरांकुर २३०
व्याजस्तुति २३१
अर्थ-श्लेश २३४

विरोधमूलक-अर्थालंकार

विरोध और विरोधाभास २३७
विषम २४०
असंगति २४२
विशेषोक्ति २४४
विभावना २४५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अन्य संसर्ग-मूलक अर्थालंकार

अन्योन्य	२४८
सार	२४८
यथासंख्य या क्रम	२५०
पर्याय	२५१
प्रत्यनीक	२५३
काव्यर्थापत्ति	२५४
तद्गुण	२५६
पूर्वरूप	२५८
अतद्गुण	२५९
मीलित	२६०
उन्मीलित	२६१
मुद्रा	२६२
परिसंख्या	२६३

उभयालंकार

संसृष्टि	२६४
संकर	२६६

७. पिंगल-परिचय	२६९-३२६
पद्य और कविता का संबंध	२६९
पिंगल शास्त्र	२६९
चरण	२७०
छंदों के भेद	२७०
छंदों के दो नवीन भेद—उभय और मुक्त या स्वच्छद	२७१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुक्त वृत्त या स्वच्छंद—उसके दो भेद	२७३
गति	२७५
यति	२७६
मात्रा—लघु गुरु	२७६
लघु गुरु के चिह्न और नियम	२७७
गण	२८२
गणों के देवता और उनका फल	२८४
अशुभ और दग्धाक्षर	२८५
तुक	२८६
सम अर्धसम और विषम	२८९
मात्रिक और वर्णवृत्तों में से कुछ मुख्य-मुख्य प्रधान छंदों का विवरण	२९२
मात्रिक सम (साधारण)	२९२
तोमर	२९२
उल्लाला	२९२
चौपई	२९३
चौपाई	२९३
अरिल्ल	२९४
प्लवंगम	२९५
रोला	२९५
दिक्पाल (दिग्पाल)	२९६
रूपमाला का मदन	२९७
कामरूप	२९७

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गीतिका	२९८
सार या ललितपद	२९९
हरिगीतिका	३००
वीर या आल्हा	३००
त्रिभंगी	३०१
मात्रिक विषम	३०२
बरवा	३०२
दोहा	३०२
सोरठा	३०३
उल्लास	३०३
मात्रिक विषम	३०४
कुंडलिया	३०५
छप्पय	३०६
वर्णवृत्त सम (साधारण)	३०८
इन्द्रवज्रा	३०८
उपेन्द्रवज्रा	३०८
दोधक	३१०
वंशस्थ	३१०
भुजंगप्रयात	३११
द्रुतविलंबित	३१२
मौक्तिकदाम (मोतियदाम)	३१२
वसंततिलका	३१३
मालिनी	३१३
शिखरिणी	३१४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मंदाक्रांता ३१५
शार्दूलविक्रीडित ३१६
स्रग्धरा ३१६
सवैया ३१७
मदिरा ३१७
चकोर ३१८
मत्तगयंद ३१८
सुमुखी ३१९
किरीट ३१९
मुक्तहरा ३२०
दुर्मिल ३२१
अरसात ३२१
वाम ३२२
सुन्दरी ३२२
वर्णवृत्त-दंडक ३२४
कवित्त या मनहर ३२४
घनाक्षरी ३२५
रूप-घनाक्षरी ३२५
देव-घनाक्षरी ३२६
८. दोष-दर्शन ३२७-३४१
पद दोष ३२८
वाक्य दोष ३३४
अर्थ दोष ३३७

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काव्य-प्रदीप

१—विषय प्रवेश

कविता का आकर्षण

सुन्दरता से हमारा स्वाभाविक अनुराग है। यदि कोई सुन्दर वस्तु हमारे सामने आती है तो हम आप-से-आप उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। हम बगीचे में घूमते समय कोई बढ़िया फूल देखते हैं; राह में कोई सुन्दर शरीर वा मुखाकृति वाला व्यक्ति देखते हैं; नगर के किसी भाग में किसी इमारत की कारीगरी देखते हैं; मन्दिर में भगवान् की प्रस्तर-निर्मित मूर्त्ति देखते हैं; चित्रशाला में किसी चित्रकार की तूलिका की सफाई के फलस्वरूप कोई चित्र देखते हैं; अथवा सृष्टि का कोई अन्य पदार्थ जहाँ कहीं देखते हैं, यदि उसमें सुन्दरता होती है, तो इस जमाने के व्यस्त और बहुधन्धी जीवन में भी सौ काम छोड़कर, थोड़ी देर के लिए ही सही, उसके देखने के लिए रुक जाते हैं। उसे देखकर जिस आनन्द का अनुभव करते हैं, उसको लाख चेष्टा करने पर भी ज्यों-का-त्यों न तो वाणी से कह सकते हैं और न लेखनी द्वारा लिख सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ठीक इसी प्रकार का रुचिकर अनुभव हम किसी मनोरञ्जक उक्ति या बात को सुनकर किया करते हैं। जब कोई मनोहर कथन हम सुनते या पढ़ते हैं तब हमारे कान या हमारा मन उसकी ओर स्वतः खिंच जाता है और साधारणतया किसी बात को दुबारा सुनने या पढ़ने से जैसे विरक्ति हमें होती है, वैसे उस सुन्दर बात को बार-बार सुनने या पढ़ने से भी नहीं होती, उलटे उससे हर बार नया आनन्द मिलता है। इस प्रकार का कथन चाहे गद्य में हो, चाहे छंदःशास्त्र के नियमानुसार पद्य में, सुनाई पड़ते या दिखाई देते ही हमारे हृदय में एक अनिर्वचनीय गुदगुदी पैदा कर देता है। इसके विपरीत जब हमें कोई असुन्दर या भोंड़ी बात सुनाई पड़ती या लिखी दिखाई देती है तब हमारा जी उसकी ओर से सहज-प्रेरणा से तत्क्षण हट जाता है। दूसरे शब्दों में, हम चाहे अपने निर्णय करने का कारण बता सकने में समर्थ हों या असमर्थ, किन्तु किसी भी उक्ति को सुनते या पढ़ते ही हम तुरन्त यह बता सकते हैं कि वह अच्छी है अथवा बुरी। सुन्दर, प्रभावशाली, हृदयस्पर्शी और आकर्षक उक्तियाँ 'कविता' कहाती हैं। इसलिए किसी भी कथन को, हम आसानी से जान लेते या बता देते हैं कि वह कवित्वपूर्ण है अथवा नहीं; किन्तु जब हमारे सामने कोई ऐसा व्यक्ति आ पहुँचता है, जिसकी मनोवृत्ति आम जैसे स्वर्गीय फल का स्वाद लेने की ओर नहीं होती, किन्तु पेड़ों के गिनने, उनकी जाति निर्णय करने या उनके फलने का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काल निश्चित करने की ओर होती है तब बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। जिस प्रकार हम सब जानते हैं कि सौन्दर्य क्या है, प्रेम क्या है अथवा इस सम्पूर्ण संसार का नियमित रूप से सञ्चालन करने वाला ईश्वर क्या है, किन्तु इनमें से किसी का शब्दों के द्वारा पूरा वर्णन नहीं कर पाते, उसी प्रकार यह जानते हुए भी कि किस उक्ति को कविता-मय कह सकते हैं, 'कविता क्या है ?'—यह पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर सकते।

इस असमर्थता के होते हुए भी अपने ज्ञान अनुभव या मनोविचार में किसी नियमित व्यवस्था का पता लगाने की मनोवृत्ति भी हमारी सहजात है। इसी के कारण सब देशों में और सब कालों में कुछ लोग व नियम खोजने और निश्चित करने में तत्पर रहे हैं, और हैं, जिनका प्रयोग करके यह जाना जा सके कि कोई कथन-विशेष कविता कहला सकता है या नहीं, अथवा किन-किन बातों के होने से कोई कथन कवित्वपूर्ण कहा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२—काव्य और उसके भेद

कविता का स्वरूप

रुचि अथवा समझ की विभिन्नता के कारण इस देश के तथा अन्य देशों के अगणित साहित्य-शास्त्रियों ने कविता की जो परिभाषाएँ लिखी हैं उनमें भी भिन्नता है। कुछ लोगों ने सुनने में प्रिय शब्दों के समुदाय को कविता कहा है, कुछ ने शब्दों के अर्थ की रमणीयता को काव्य का लक्षण माना है; और कुछ लोगों ने शब्द और अर्थ दोनों की सुन्दरता से युक्त कथन को काव्य का नाम दिया है। इस अन्तिम विचारवाले लोगों की समझ में कविता के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसी भाषा में प्रकट की जाय जो साधारणतया व्यवहार में आनेवाली भाषा से अधिक सुन्दर संस्कृत और गठी हुई हो और जिसका अर्थ भी रमणीक और आनन्दप्रद हो। वह केवल श्रवण-सुखद या मनोरञ्जक ही न हो, अर्थ की मनोहरता से भी युक्त हो। दूसरे शब्दों में निर्दोष, गुणपूर्ण, अलंकृत और मनोहर अर्थ-समन्वित वाक्य को काव्य कहते हैं। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि इनमें से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यदि अन्य विशेषताएँ हों किन्तु अलंकृति (सजावट) न भी हो तो भी काव्य हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकट या शीघ्र ही जान पड़ने वाला अलंकार न होने पर भी अन्य गुणों के होने पर किसी युक्ति में काव्यत्व हो सकता है। लेकिन इस परिभाषा में काव्य के पूर्णरूप का बोध नहीं होता। कविता का काम है हमारे विचारों का परिष्कार करके उन्हें उच्च बनाना, हमारे हृदय को अनिर्वचनीय आनन्द देना और साथ ही हमारे हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न करना और सदा बनाये रखना कि जिसके द्वारा हमारा सृष्टि के अन्य सम्पूर्ण चेतन-अचेतन पदार्थों से एक प्रकार का आत्मिक सम्बन्ध स्थापित हो जाय। किन्तु यह भावना हम में तभी जागरित होगी जब कविता सरल और सरस शब्दों में हो, एवं उसमें रूप-सौष्ठव हो। इसलिए सरल, सुन्दर और सरस वाक्यों के द्वारा अभिव्यक्त ऐसे विचारों को कविता की संज्ञा दी जा सकती है जो श्रोता या पाठक के हृदय में वही भाव उत्पन्न करने में समर्थ हों, जो उनके निर्माता के हृदय में उठे थे और जिनके सहारे वह अहंभाव से विरक्त होकर सजीव और निर्जीव सभी पदार्थों से आत्मैक्य का अनुभव करे। काव्य-विषयक इस धारणा को संक्षेप में यों कह सकते हैं—सरल और सरस शब्दों में व्यक्त, मन को मुग्ध करने वाले ऐसे उच्च भावों को कविता कहते हैं जिनसे हमारे विचार देश या काल की सीमा को लाँघ कर विश्वमैत्री का अनुभव करने वाली उदारता से समन्वित हो जायँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर विदित होता है कि (१) कविता का विषय ऐसा होना चाहिए जो मानव-हृदय पर प्रभावशाली हो और जिसके द्वारा उसमें से पशुत्व का अंश—अहंभाव—निकल कर उसमें सच्चे मनुष्यत्व-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व का भाव प्रतिष्ठित हो जाय तथा (२) जो ऐसे शब्दों में, ऐसे ढंग से प्रकट किया जाय कि अपनी ओर मानव हृदय को खींच सके उसे मोह सके और उसमें ऐसा आनन्द पैदा कर सके, जो संसार के अन्य पदार्थों से प्राप्त न हो सकता हो।

गद्य, पद्य, सूक्ति और कविता

इन बातों को सामने रखकर किसी रसात्मक वाक्य को चाहे वह गद्य में हो, चाहे पद्य में काव्य कह सकते हैं। परन्तु हमारे देश में यद्यपि पहले भी गद्य में अपने भाव प्रगट करके उनको ग्रन्थों में रक्षित रखने की प्रथा थी तथापि लोग अधिकतर पद्य में ही अपनी भावाभिव्यक्ति छोड़ गये हैं। इसी कारण प्राचीन समय में जहाँ किसी कथन को काव्य के नाम से अभिहित करना पड़ा है वहाँ उसके लिए पद्यात्मक होना आवश्यक-सा माना गया है। इधर गत शताब्दी से हमारे यहाँ भी पाश्चात्य देशों की भाँति गद्य में भाव-व्यञ्जना की जाने लगी है। इससे यदि गद्यात्मक वाक्य में कवित्व के सब उपादान पाये जायँ तो उसे गद्य-काव्य* कहा जाता है। अब रहा पद्य में अभिव्यक्त वाक्य।

* प्रोफेसर श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख'जी ने इसे 'गद्य-मुक्तक का नाम दिया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सो परंपरा से हमारे यहाँ काव्य कहे जाने वाले ग्रन्थों के पद्य-बद्ध होने से साधारणतया पद्य और कविता एक दूसरे के पर्याय-वाचक-से हो गये हैं। परन्तु वास्तव में सभी पद्यमय वाक्य कविता के पवित्र नाम के अधिकारी नहीं। उन्हें कविता कहलाने का गौरव केवल उसी दशा में मिल सकता है जब वे कविता के ऊपर बतलाए हुए लक्षणों से समन्वित हों।

"भोजन बनाओ, अब उठो
निज कार्य साधो, सब उठो
तुमको अभय-दायक वचन मैंने दिये।"

यह वाक्य-समुदाय पद्य ही कहा जायगा, इसमें छंदः-शास्त्र के नियमों का पूर्ण रूप से पालन हुआ है सही, परन्तु इसमें कोरी तुकबंदी के अतिरिक्त, हमारे हृदय को वक्ता के मनोभावों से ओतप्रोत करने की शक्ति नहीं।

इसी प्रकार—

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
यहि खाये बौरात है वहि पाये बौराय॥

में 'कनक' शब्द के 'सोना' और 'धतूरा' दो अर्थों के कारण शाब्दिक चमत्कार प्रदर्शित करते हुए कवि ने निस्सन्देह एक सांसारिक सत्य को सुन्दर ढंग से प्रकट किया है। किन्तु इस दोहे को सुनकर हम कवि के दो भिन्न अर्थ वाले परन्तु एक ही रूप वाले शब्द के प्रयोग-चातुर्य पर ही प्रसन्न होकर रह जायँगे। इस कथन से हमारी अन्तरात्मा को कोई स्थायी और नित्य नया होने वाला आनन्द न मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इससे इस प्रकार के वाक्य को 'पद्य' न कहकर 'सूक्ति' कहेंगे।

परन्तु जब हम राम और लक्ष्मण के साथ वन-यात्रा करते हुए सीता को जमुना पार करने के अनन्तर गाँव की भोली-भाली स्त्रियों के राम का परिचय पूछने पर तुलसीदासजी के शब्दों में, इस चौपाई द्वारा उनका और अपना सम्बन्ध बताते हुए देखते हैं—

बहुरि बदन-बिधु अंचल ढाँकी, पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।
खंजर मंजु तिरीछे नैननि, निज पति तिनहिं कहेउ सिय सैननि ॥*

तब हम केवल आर्य-मर्यादा की प्रतिनिधि स्वरूपा सीता को अपने पति की उपस्थिति में उनका नामोच्चारण करने से विरत नहीं देखते, किंतु पति के समीपस्थ होने से भारतीय महिला को जो स्वाभाविक लज्जा लगती है उसको भी प्रत्यक्ष देखते हैं। इतना ही नहीं, सीता की सब के सामने अपने पति का परिचय देने की चतुरता भी हमारे हृदय पर अपना प्रतिबिम्ब डालती है। शब्दों की कोमलता के साथ इस चौपाई के द्वारा जो स्पष्ट चित्र कवि अंकित करता है वह देश और काल के प्रभाव से परे, चिरस्थायी है। यदि यह बात सीता ने राम के साथ एकान्त में की होती तो हिन्दी के

---

* अर्थ—फिर अपना मुख-चन्द्र अंचल के छोर से ढककर, अपने प्रियतम (श्रीराम) की ओर तिरछी भौंहें करके सीताजी ने खंजन पक्षी के-से अपने नेत्रों से, तिरछी निगाह से,—कनखियों से—देखते हुए उन्हें (इशारे से) अपना पति बतला दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रीति-कालीन कवियों की भाँति इसमें 'संभोगशृंगार' का नग्न चित्र मात्र होता, कोई विशेषता न होती। परन्तु यहाँ बात ऐसी नहीं है। ग्रामबालाओं के मध्य सीता जी की यह चेष्टा कुल-वधू की—मर्यादा की—मनोमोहक व्यञ्जना है। इसी से जितनी बार ही यह चौपाई पढ़ी जाती है, एक नए आनन्द की लहर हृदय में उठा देती है। इसी प्रकार की उक्तियाँ वास्तव में 'कविता' कहलाने की अधिकारिणी हैं।

इस प्रकार पद्य, सूक्ति और कविता का अंतर जान लेने पर यह उचित प्रतीत होता है कि काव्य के अन्तर्गत जितने प्रकार की रचनाएँ हो सकती हों उनका भी अवलोकन कर लिया जाय।

काव्य के भेद—गद्य, पद्य और चम्पू

जैसा ऊपर कहा जा चुका है 'काव्य' के अन्तर्गत केवल उन्हीं रचनाओं की गणना चम्पू में होती है जिन में कवित्व का मूल-तत्व (जिसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है) वर्तमान हो। ऐसी रचनाएँ पद्य और गद्य दोनों में हो सकती हैं। जिस प्रकार श्रीमैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथ वध' या महाकवि तुलसी का 'रामचरित मानस' काव्य हैं उसी प्रकार श्रीवियोगीहरि कृत 'तरङ्गिणी' या 'अन्तर्नाद' अथवा श्रीराय कृष्णदास विरचित 'साधना' और 'भावुक' भी काव्य हैं। कुछ परम्परा के अनुयायी केवल पद्यात्मक रचनाओं को ही काव्य मानते हैं; परन्तु ऐसा करके वे आकार को, बाहिरी ढाँचे को, प्रधान मान लेते हैं; आत्मा की—कविता के गुण की—उपेक्षा कर बैठते हैं। यह ठीक नहीं। वास्तव में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कविता के गुणों से युक्त कथन को चाहे वह पद्य में हो, चाहे गद्य में काव्य कहना अधिक युक्तिपूर्ण है। परन्तु कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जो गद्य और पद्य दोनों में होती हैं। श्रीवियोगीहरि-रचित 'साहित्य विहार' और 'प्रेमयोग' तथा श्रीजयशंकर 'प्रसाद' के 'चित्राधार' में संगृहीत 'उर्वशी' और 'बभ्रुवाहन' इसी कोटि की कृतियाँ हैं। ऐसी रचनाओं को 'मिश्रकाव्य' या 'चम्पू' कहते हैं।

दृश्य और श्रव्य—

प्रयोजन की दृष्टि से काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेद किये जाते हैं। दृश्य काव्य वे कहलाते हैं जिन में वर्ण्य कथानक का अभिनय (किसी अवस्था का देह, वचन, वेषभूषा और शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा किया गया अनुकरण) किया जा सके। दृश्य काव्य को 'रूपक' भी कहते हैं। क्योंकि इस में अभिनेता दूसरों का रूप धारण करके अपने में उनका आरोप किया करता है। दर्शक-गण उसे थोड़ी देर के लिए वही व्यक्ति समझ लेते हैं जिसका अभिनय वह करता है।

श्रव्य काव्य वे हैं, जो केवल सुने या पढ़े जा सकें, जिनका अभिनय न हो सके। दृश्य काव्य पढ़े या सुने न जा सकते हों—ऐसा नहीं, किन्तु उनका असली आनन्द तभी आता है जब उनका अभिनय रंगशाला में किया जाय। राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनूदित 'अभिज्ञान शाकुन्तल', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य-हरिश्चन्द्र', 'भारत-दुर्दशा' आदि अथवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रीजगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' कृत 'प्रताप-प्रतिज्ञा', श्री 'प्रसाद' विरचित 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त' या 'स्कंदगुप्त', इत्यादि पुस्तकों का आनन्द सुनने या पढ़ने से कम नहीं आता, परन्तु जब इनमें वर्णित कथानक हम अभिनेताओं के द्वारा खेला जाता देखते हैं तब इनका आनन्द सुनने या पढ़ने की अपेक्षा कई गुना बढ़ जाता है। दृश्य काव्य के अन्तर्गत 'रूपक' और 'उपरूपक' आते हैं जिनमें से रूपक के दस और उप-रूपक के अठारह भेद ❀ होते हैं। 'नाटक' शब्द का प्रयोग

❀ रूपक के दस भेद ये हैं:—

(१) नाटक—इसकी कथा इतिहास-प्रसिद्ध होती है, कवि-कल्पित नहीं। इसका नायक धीर, गम्भीर, उदात्त, प्रतापी, गुणवान्, राजा, राजर्षि या कोई दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष होता है। इसमें प्रधान रस वीर या श्रृंगार होता है, अन्य रस इनमें से किसी एक प्रधान रस के अंग होकर आते हैं। इसमें पाँच से लेकर दस तक अङ्क होते हैं। (पाँच से अधिक अङ्क वाले नाटक को महानाटक कहते हैं) इसके अङ्क उत्तरोत्तर छोटे होने चाहिए।

(२) प्रकरण—इसकी कथा लौकिक एवं कवि-कल्पित होती है। इसमें प्रधान रस श्रृङ्गार होता है, और नायक ब्राह्मण, मन्त्री अथवा वैश्य होता है। वह धर्म, अर्थ और काम में परायण धीर होता है तथा विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए वह सफल-मनोरथ होता है। इसमें नायिका कहीं कुलकन्या होती है, कहीं वेश्या और कहीं दोनों होती हैं। इसमें तीसरा भेद धूर्त, जुआरी, विट, चेटादि पात्रों से युक्त होता है। अन्य बातों में यह नाटक के समान ही होता है।

(३) भाण—इसमें धूर्तों का ही चरित्र अनेक अवस्थाओं से व्याप्त दिखाया जाता है। इसमें एक ही अङ्क और एक ही पात्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हमारी भाषा में 'रूपक' के अर्थ में होने लगा है, परन्तु वास्तव

होता है। वह पात्र कोई बुद्धिमान् विट होता है। वह रङ्गमञ्च पर अपनी या औरों की अनुभूत बातों को कथोपकथन के रूप में 'आकाशभाषित' (स्वयं ही पूछता और स्वयं उत्तर देता हुआ) के द्वारा प्रकाशित करता है। इसका भी कथानक कल्पित होता है।

(४) प्रहसन--यह भी भाण के ही समान होता है; पर इसमें हास्य-रस की अधिकता रहती है। इसमें पाषंडी, सन्यासी, तपस्वी, पुरोहित, नपुंसक, कंचुकी आदि की नायक के रूप में योजना की जाती है।

(५) डिम—इसकी कथा पुराण या इतिहास प्रसिद्ध होती है। यह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उन्मत्तादिकों की चेष्टा तथा उपरागों (सूर्य-चन्द्र-ग्रहण) आदि के वृत्तान्त से पूर्ण रहता है। इसमें रौद्ररस प्रधान होता है तथा शान्त, हास्य और शृंगार के अतिरिक्त अन्य उसके सहायक। इसमें चार अङ्क होते हैं, प्रवेशक नहीं होते। देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महोरग, भूत, प्रेत, पिशाच आदि अत्यन्त उद्धत सोलह नायक इसमें होते हैं।

(६) व्यायोग—इसका भी आख्यान पुराण या इतिहास-प्रसिद्ध होता है, पर इनमें नायक धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है। इसमें पात्रों की अधिकता होती है; पर वे सब के सब पुरुष होते हैं, एक भी स्त्री पात्र नहीं होता। इसमें युद्ध होता है, पर स्त्री के कारण नहीं। इसमें एक ही अङ्क होता है, जिसमें एक ही दिन का वृत्तान्त होता है।

(७) समवकार—इसकी कथा इतिहास की कोई ऐसी घटना होती है जिसका सम्बन्ध देवताओं और असुरों से होता है। इसमें तीन अङ्क होते हैं, और बारह देवासुर नायक। प्रत्येक नायक का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में यह 'रूपक' के दस भेदों में से एक है। इसका कारण यह फल पृथक् ही होता है। इसमें वीर रस प्रधान होता है, जिसकी पुष्टि अन्य सब रस करते हैं।

(८) वीथी—इसमें एक ही अङ्क होता है और कोई एक पुरुष—उत्तम, मध्यम या अधम—नायक कल्पित कर लिया जाता है। 'भाण' की भाँति इसमें भी आकाशभाषित के द्वारा उक्ति-प्रयुक्ति होती हैं। इसमें शृङ्गार रस की अधिकता रहती है।

(९) ईहामृग—इसका वृत्तान्त मिश्रित, अर्थात् कुछ ऐतिहासिक और कुछ कल्पित होता है। इसमें नायक और प्रतिनायक प्रसिद्ध धीरोद्धत मनुष्य या देवता होते हैं। इसमें एक ही अङ्क होता है।

(१०) अंक या उत्सृष्टिकांक—इसमें एक ही अङ्क होता है। नायक साधारण पुरुष होता है। इसका वृत्तान्त प्रख्यात होता है। कवि उसी को विस्तृत कर देता है। इसमें स्त्रियों के विलाप की प्रचुरता रहती है, इसी से करुण रस की भी प्रधानता रहती है।

उपरूपक—

(१) नाटिका—इसमें चार अङ्क होते हैं। अधिकांश पात्र स्त्रियाँ होती हैं। नायक धीर-ललित राजा होता है। नायिका रनिवास से संबंध रखने वाली या राजवंश की कोई गायन-पटु अनुरागवती कन्या होती है।

(२) त्रोटक—इसमें पाँच, सात, आठ या नौ अङ्क होते हैं। प्रत्येक अङ्क में विदूषक का व्यापार रहता है। शृङ्गार रस प्रधान होता है।

(३) गोष्ठी—इसमें एक ही अङ्क होता है। पाँच-छः स्त्रियों और नौ-दस मनुष्यों का व्यापार रहता है। वासनामय (काम) शृङ्गार की प्रधानता रहती है।

(४) सट्टक—की रचना प्राकृत में मानी गयी है। इसमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है कि उसमें नाट्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले सभी लक्षण पाये जाते हैं और उसमें सभी रसों का समावेश हो सकता है।

अद्भुत रस रहता है। इसके अङ्कों को 'जवनिका' कहते हैं, अन्य बातें नाटिका के सदृश होती हैं।

(५) नाट्यरासक—इसमें एक ही अंक होता है। शृंगार सहित हास्य रस प्रधान रहता है। नायक उदात्त, उपनायक पीठमर्द तथा नायिका वासकसज्जा होती है।

(६) प्रस्थानक—इसमें दो अङ्क होते हैं। नायक दास और उप-नायक हीन पुरुष होता है। नायिका दासी होती है।

(७) उल्लाप्य—इसमें एक अङ्क, दिव्य कथा, धीरोदात्त नायक, तथा हास्य, शृङ्गार एवं करुण रस होता है। कुछ लोग इसमें तीन अङ्क मानते हैं।

(८) काव्य—इसमें एक अङ्क और हास्य रस होता है। गीतों की बहुलता होती है।

(९) रासक—इसमें भी एक ही अंक होता है, पाँच पात्र होते हैं सूत्रधार नहीं होता। नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख होता है। इसमें उदात्तभाव उत्तरोत्तर प्रदर्शित किये जाते हैं।

(१०) प्रेंखण—इसमें भी एक अङ्क होता है। नायक हीन पुरुष होता है। इसमें सूत्रधार नहीं होता। नांदी तथा प्ररोचना नेपथ्य से पढ़ी जाती है।

(११) संलापक—इसमें तीन या चार अंक होते हैं। नायक पाखण्डी होता है। शृंगार और करुण रस नहीं होते। नगर का घेरा, संग्राम आदि का इसमें वर्णन रहता है।

(१२) श्रीगदित—इसमें कथा प्रसिद्ध होती है। यह एक अंक का होता है। नायक धीरोदात्त और नायिका प्रख्यात होती है।

(१३) शिल्पक—इसमें चार अंक होते हैं। शान्त और हास्य के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रव्य काव्य के भेद श्रव्य काव्य को, शैली-भेद से, गद्य और पद्य दो विभागों में बाँटा जा सकता है। गद्य काव्य के अन्तर्गत कथा-कहानी, आख्यायिका, निबंध उपन्यास आदि आते हैं। इनके अतिरिक्त

अतिरिक्त अन्य रस होते हैं। नायक ब्राह्मण होता है। इसमें मरघट, मुरदे आदि का वर्णन रहता है।

(१४) विलासिका—यह शृङ्गार बहुल, एक अङ्क वाली, विदूषक, विट, पीठमर्द से विभूषित, हीनगुण-नायक से युक्त, थोड़ी कथावाली होती है।

(१५) दुर्मल्लिका—इसमें चार अंक होते हैं। पहले अंक में विट की क्रीड़ा दूसरे में विदूषक का विलास, तीसरे में पीठमर्द का विलास-व्यापार और चौथे में नागरिकों की क्रीड़ा रहती है। इन चारों अंकों का व्यापार क्रमशः ६, १०, १२ और २० घड़ी का रहता है। इसमें पुरुषपात्र सब चतुर होते हैं, पर नायक छोटी जाति का होता है।

(१६) प्रकरणिका—इसमें नायक व्यापारी होता है। नायिका उसकी सजातीया होती है। शेष बातों में यह 'प्रकरण' के सदृश होती है।

(१७) हल्लीश—इसमें एक ही अंक होता है। सात से दस तक स्त्रियाँ होती हैं और एक उदात्त वचन बोलने वाला पुरुष रहता है। इसमें गाने, ताल और लय अधिक होते हैं।

(१८) भाणिका—इसमें भी एक ही अङ्क होता है। नायक मन्दमति तथा नायिका उदात्त होती है।

इन सब रूपक और उपरूपकों की प्रकृति यद्यपि नाटक ही है तथापि इन में औचित्य के अनुसार यथासम्भव नाटक के अङ्गों का समावेश होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसी रचनाएँ भी आती हैं जिन्हें किसी अन्य अच्छे नाम के अभाव में, 'गद्य-काव्य' या 'गद्य-मुक्तक' कहा जाता है। पद्य-काव्य के प्रबन्ध की दृष्टि से (१) मुक्तक और (२) प्रबंध, ये दो भेद किये जाते हैं। 'मुक्तक' काव्य ऐसी छन्दोबद्ध रचना को कहते हैं जिसके एक छन्द का भाव दूसरे से 'मुक्त' या 'निरपेक्ष' हो। मीरा के पद, बिहारी, तुलसी, वृन्द, रहीम या वियोगीहरि की सतसई के दोहे मुक्तक काव्य के उदाहरण हैं। प्रबन्ध-काव्य में कोई कथानक धारा-वाहिक रूप से वर्णित होता है। उसके छंद परस्पर सम्बन्धित होते हैं, वे एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। यदि ऐसा किया जाय तो उनका भाव पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता। 'मुक्तक' में एक छंद अपने तईं पूर्ण होता है, प्रबन्ध में नहीं। तुलसी का 'राम-चरित मानस,' जायसी का 'पद्मावत', हरिऔध का 'प्रिय-प्रवास,' मैथिलीशरण का 'साकेत' या 'जयद्रथवध' प्रबन्ध काव्य के उदाहरण हैं।

प्रबन्ध काव्य के भेद खण्ड काव्य, महाकाव्य

प्रबन्ध के विस्तार की दृष्टि से प्रबन्ध-काव्य के भी दो भेद किये जाते हैं:—(१) खण्ड काव्य और (२) महाकाव्य। खंड काव्य में मानव-जीवन के किसी एक अंश का वर्णन होता है, उसकी सम्पूर्ण व्यापकता का नहीं। मैथिलीशरण के 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी' 'विरहिणी व्रजांगना, 'बकसंहार' 'वनवैभव', आदि, रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' 'मिलन' और 'स्वप्न' अथवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सियारामशरण गुप्त का 'मौर्यविजय' खण्ड काव्य हैं। महाकाव्य में जीवन का विस्तृत और पूर्ण वर्णन होता है।* उनमें खण्डकाव्य की अपेक्षा आकार की दीर्घता के साथ विषय की व्यापकता भी अधिक रहती है। तुलसी का 'रामचरितमानस' और रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित-चिन्तामणि' महाकाव्य हैं।

ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र या अलंकार काव्य

इन भेदों के अतिरिक्त रमणीयता के अनुसार, काव्य के तीन प्रकार माने जाते हैं। जिस कविता में शब्दों के साधारण अर्थ की अपेक्षा उनसे निकलने वाले व्यंग्य में अधिक चमत्कार हो उसे ध्वनि-काव्य कहते हैं। जैसे राम ने जटायु से कहा कि 'सीता-हरण का समाचार स्वर्ग में जाकर मेरे पिता (दशरथ) से न कहना, यदि

* 'साहित्य दर्पण' में महाकाव्य का लक्षण यह माना गया है:—इसका नायक देवता या सद्वंश-जात क्षत्रिय होता है। इसका प्रधान रस शृंगार, वीर या शान्त होता है। अन्य रस भी होते हैं, पर वे गौण होते हैं। कथा ऐतिहासिक या लोक-प्रसिद्ध सज्जन-सम्बन्धिनी होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इनमें एक उसका फल होता है। आरंभ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु-निर्देश होता है। कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन होता है। न बहुत छोटे न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में एक ही छंद होता है, किन्तु सर्ग का अन्तिम छंद भिन्न होता है। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि-प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मैं राम हूँ, तो स्वयं रावण अपने कुल-सहित आकर (यह समाचार उनसे) कहेगा' ❀। इसमें व्यंग्य यह है कि मैं रावण को उसके कुल-समेत मार डालूँगा। वह सपरिवार स्वर्ग जायगा। इस प्रकार मैं उससे सीता के हरने का बदला लेकर अपने स्वर्गस्थ पिता को दिखा दूँगा कि मैं उनका सपूत हूँ। तभी मेरा नाम, राम, भी सार्थक होगा। इस ध्वनि के कारण इस उक्ति में राम के शौर्य की पूरी झलक देखने को मिलती है। इससे एक विशेष आनन्द का सञ्चार होता है।

जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रधानता न हो या शब्दों का साधारण अर्थ और व्यंग्यार्थ दोनों ही समान हों या व्यंग्यार्थ साधारण (वाच्य) अर्थ से न्यून हो वहाँ गुणीभूत व्यंग्य काव्य होता है, इसमें व्यंग्य गुणीभूत अर्थात् अप्रधान होता है। और जहाँ केवल शब्दों के अर्थ का चमत्कार हो, केवल शब्दों की सजावट का ध्यान हो वह चित्र या अलंकार काव्य होता है (अलंकारों का विवरण आगे दिया जायगा)। चित्र काव्य के अन्तर्गत ऐसी रचनाएँ भी होती हैं जिनमें अक्षर इस ढंग से लिखे जाते हैं कि उनका आकार कमल, कामधेनु, धनुष, खड्ग

मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मंत्र, प्रेम, अभ्युदय, आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होता है।

❀ सीता हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥

(रामचरित मानस)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आदि कुछ वस्तुओं का-सा बन जाता है। ऐसा होने से उक्ति के अर्थ की सुन्दरता की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता, केवल उसके शब्दों की सजावट तक रह जाता है। इन भेदों में 'ध्वनि काव्य' उत्तम 'गुणीभूत व्यंग्य' मध्यम और 'चित्र' या 'अलंकार' अधम अथवा निम्न कोटि का माना जाता है।

नीचे दिये हुए शब्द शक्तियों के विवेचन से इन तीनों प्रकारों को हृदयंगम करने में अधिक सहायता मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

३—शब्द-शक्ति

जिस प्रकार शरीर और प्राण दोनों के रहने पर ही किसी प्राणी का अस्तित्व रहता है, इनमें से किसी एक के न रहने से दूसरे का रहना असम्भव है, उसी प्रकार किसी भी कथन में शब्द और अर्थ दोनों की स्थिति अनिवार्य है। शब्द-विहीन अर्थ और अर्थ-विहीन शब्द की कल्पना (कमसे-कम साहित्य के अन्तर्गत) की ही नहीं जा सकती; शब्द और अर्थ दोनों एक-दूसरे से मिले-जुले रहते हैं। काव्य के लिए जैसे सुन्दर शब्दों की आवश्यकता होती है वैसे ही उनसे व्यक्त होने वाले सुन्दर अर्थ की भी। किन्तु शब्दों का अर्थ प्रसंग के अनुसार बदला करता है। पशुओं के मध्य एक विशेष आकार-प्रकार के पशु के लिए हम 'बैल' शब्द का प्रयोग करते हैं; परन्तु किसी नासमझ, मूर्ख और विवेक शून्य पुरुष को कोई बात समझाते-समझाते जब हम ऊब जाते हैं और खीझ कर कह बैठते हैं कि "तुम तो निरे 'बैल' हो" तब उस को 'बैल' कहने से हमारा आशय यह नहीं होता कि वह मनुष्य का आकार छोड़कर बैल नामक पशु विशेष का-सा हो गया है; प्रत्युत इसके द्वारा हम उसकी पशु की-सी बुद्धि-हीनता की ओर संकेत करते हैं। उसे 'महा मूर्ख' कहने से

भूमिका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसकी बुद्धि-शून्यता के विषय में हमारी भावना सन्तुष्ट नहीं होती और उसे 'बैल' कहने पर ही ऐसा प्रतीत होता है कि हमने उसकी मूर्खता का यथातथ्य उल्लेख कर दिया। इस प्रकार उक्त वाक्य में 'बैल' का साधारणतया प्रचलित अर्थ न लेकर एक दूसरा ही (अत्यन्त मूर्ख) अर्थ लिया जायगा। अस्तु, प्रसंग के अनुसार, 'बैल' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ माने जायँगे।

प्रसंग के अनुकूल अर्थ की इस प्रकार की विभिन्नता के संबंध में एक आख्यान स्मरण आ रहा है। संस्कृत में 'सैंधव' शब्द 'घोड़ा' और 'सेंधा नमक'—दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। एक पण्डितजी ने रसोई बनाते समय अपने एक आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान शिष्य से कहा, "सैन्धवमानय" (अर्थात्, सैंधव ले आओ)। शिष्य ने सोचा, शायद गुरुजी इस समय शीघ्रता पूर्वक कहीं बाहर जाने का विचार कर रहे हैं; इससे उसने झट एक बढ़िया तेज़, घोड़ा लाकर चौके में खड़ा कर दिया। पण्डितजी का प्रस्तुत किया हुआ भोजन अपवित्र हो गया और उन्हें उससे हाथ धोना पड़ा। वे बेचारे शिष्य की मूर्खता पर—प्रसंग के अनुसार शब्द का अर्थ न समझने की बुद्धि की अजीर्णता पर—मन ही मन पछता कर रह गये। ख़ैर, कहने का तात्पर्य यह है कि वाक्य के अन्तर्गत शब्दों का ठीक-ठीक अर्थ समझना साधारण बात नहीं है। इसलिए किस-किस प्रकार वाक्य के अन्तर्गत शब्द के अर्थ का बोध होता है—इसका यहाँ विचार करना समीचीन प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जिन शब्दों का कुछ अर्थ ही नहीं होता, जो निरर्थक हैं, उनपर यहाँ इस कारण विचार न किया जायगा कि वे साहित्य में शक्ति-विहीन हैं। यहाँ केवल सार्थक शब्दों के विषय में विचार किया जायगा, क्योंकि उनमें यह शक्ति होती है कि वे किसी व्यक्ति, पदार्थ, वस्तु, क्रिया आदि का ज्ञान कराते हैं। ऐसे शब्दों का ठीक अर्थ वाक्य में उनके स्थान से ही निश्चित होता है। इसलिए इस विवेचन में जहाँ शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में कुछ कहा जायगा वहाँ यह समझना चाहिए कि उनके वाक्य के अन्तर्गत होने से ही अभिप्राय है; उनके स्वतंत्र रूप से नहीं। जैसे यदि 'उल्लू' शब्द स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होगा तो उसका अर्थ एक विशेष प्रकार का पक्षी ही होगा जो रात में ही अपने घोंसले से बाहर निकला करता है। "यदि उल्लू को सूर्य का प्रकाश अच्छा नहीं लगता तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ?"—इस वाक्य में 'उल्लू' का अर्थ पक्षी विशेष ही माना जायगा। इसके विपरीत, यदि किसी विद्यार्थी को बारंबार एक ही विषय समझाने पर भी उसकी समझ में वह नहीं आता और इस पर क्रुद्ध होकर अध्यापक कह देता है कि "ऐसे उल्लुओं को यदि वृहस्पति भी आ जायँ तो नहीं समझा सकते"—तो इस वाक्य में 'उल्लू' का अर्थ पक्षी विशेष नहीं प्रत्युत 'अत्यन्त मूर्ख' समझा जायगा।

अस्तु, जिन शक्तियों के द्वारा वाक्य के अन्तर्गत किसी शब्द का मुख्य या अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, उन पर अलग-अलग जरा विस्तार के साथ विचार करना ठीक होगा।

10015

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वी. वेद अभिधा वाच्यार्थ

(१) अभिधा

किसी शब्द को सुनते ही हमें पहले उसके साधारण तथा प्रचलित अर्थ का बोध हुआ करता है। शब्द की जिस शक्ति के कारण किसी शब्द का ऐसा (साधारणतया प्रचलित) मुख्य (या संकेतित) अर्थ ❀ समझा जाता है उसे अभिधा[1] शक्ति कहते हैं। अभिधा वाक्य के अन्तर्गत किसी शब्द के केवल संकेतित अर्थ का बोध कराती है। बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनके कई अर्थ होते हैं—यह बात कोशों से जानी जा सकती है। उनमें से कौन सा अर्थ वाक्य में प्रयुक्त किसी शब्द का लिया जायगा—इसका ज्ञान प्रसंग से या उसके वाक्य के अन्य शब्दों के संबंध से होता है।

अभिधा

वाक्यान्तर्गत अन्य शब्दों के (१) सान्निध्य (निकटता), (२) संयोग (या साहचर्य), (३) वार्त्तालाप के प्रसंग, (४) स्थल या समय के अनुसार अथवा कहने या सुनने वाले की दृष्टि से, आदि अनेक बातों से किसी शब्द का अर्थ समझा जाता है। जैसे, (१) 'मोती बड़ा नटखट लड़का है', और 'आजकल मोती सस्ते हो गये हैं'—इन दो वाक्यों में से पहले में 'मोती' शब्द व्यक्ति

❀ व्याकरण, कोश, साधारण व्यवहार आदि में प्रसिद्ध अर्थ 'मुख्य अर्थ' कहलाता है। उसे 'मुख्य अर्थ' इसलिए कहते हैं कि, शब्द के अन्य अर्थ भी हो सकते हैं; परन्तु उसे सुनने पर अविलम्ब सबसे पहले मुख्यतया उसी का संकेत होता है।

१. अभिधा का शब्दार्थ है 'नाम'।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विशेष का नाम और दूसरे में एक बहुमूल्य पदार्थ विशेष का नाम निर्देश करता है। 'मोती' के ये दोनों अर्थ उसके अन्य शब्दों के निकट होने से जाने गये। (२) 'मधुकर-कमल के ऊपर गुंजार करता है'—इस वाक्य में 'कमल' शब्द के साहचर्य से (उसके साथ होने से) 'मधुकर' का अर्थ 'भ्रमर' लिया जायगा 'शहद की मक्खी' नहीं; (मधुकर-संस्कृत में शहद की मक्खी को भी कहते हैं) कारण, कमल का रस भ्रमर ही पान करता है, मधु-मक्षिका नहीं। (३) 'सैंधव' शब्द का अर्थ 'घोड़ा' और 'सेंधा नमक', दोनों होते हैं; अतः यदि भोजन के वर्णन के प्रसंग में 'सैंधव' शब्द का प्रयोग होगा तो उस का अर्थ 'सेंधा नमक' ही लिया जायगा, और युद्ध या यात्रा आदि के प्रसंग में प्रयुक्त इस शब्द का अर्थ 'घोड़ा' ही होगा। (४) 'प्रभाकर' सूर्य और चन्द्रमा दोनों का पर्यायवाचक शब्द है। इससे दिन या रात के समय का वर्णन देखकर ही उसमें प्रयुक्त 'प्रभाकर' का यथोचित अर्थ लिया जायगा।

हिन्दी में भिन्न-भिन्न भाषाओं के कुछ ऐसे शब्द भी सम्मिलित हो गये हैं, जो आकार में एक-से होते हुए भी समानार्थक नहीं होते। उनका भी अर्थ प्रसंग के अनुसार वही समझा जाता है जो उनकी मूल-भाषाओं में होता है, जैसे 'परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत'—इसमें 'आराम' शब्द संस्कृत का है, जिसका अर्थ प्रसंग से 'बाग' होगा; परन्तु 'आजकल हमें काम की कमी होने से बहुत आराम मिलता है'—इस वाक्य में 'आराम' शब्द का इसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मूल-आधार फारसी के अनुसार, प्रसंग से, सुख या चैन समझा जायगा। इसी प्रकार 'कुँभला गये बदन थे सबके अतीव दुख से'—इस वाक्य में बदन का अर्थ प्रसंग से, 'चेहरा' समझा जायगा। यह शब्द संस्कृत के 'वदन' शब्द का तद्भव रूप है। परन्तु 'बदन कट गये शत्रु पक्षवालों में सब के'—इस वाक्य में 'बदन' का अर्थ, प्रसंग से, 'शरीर' विदित हो जायगा। यह फ़ारसी का शब्द है।

इस तरह, अभिधा शक्ति के द्वारा प्राप्त अर्थ वाच्यार्थ अथवा मुख्यार्थ कहलाता है और इस अर्थ को प्रकट करने करने वाला शब्द वाचक* ।

(२) लक्षणा

लक्षणा

'ऐसे उल्लुओं को यदि बृहस्पति भी आ जायँ तो नहीं समझा सकते'—ऊपर अवतरित इस वाक्य में, जैसा बतलाया जा चुका है, 'उल्लू' शब्द से (उल्लू की भाँति) 'नासमझ' या 'अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति' अभिप्रेत है। यहाँ 'उल्लू' शब्द का उपर्युक्त अभिधा शक्ति से संकेतित अर्थ (पक्षी विशेष) नहीं लिया गया, किन्तु इसीसे सम्बन्ध रखने वाला एक दूसरा ही अर्थ लिया गया है। इस प्रकार का अर्थ लेने में मुख्यार्थ

---

* सांसारिक व्यवहार में एक शब्द से कोई निश्चित अर्थ मान लिया जाता है। इस प्रकार की कल्पना को संकेत कहते है। अतः जिस शब्द के द्वारा किसी रुकावट के बिना किसी विशेष अर्थ का संकेत के द्वारा बोध होता है वह शब्द उस बोध्य अर्थ का वाचक कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

या वाच्यार्थ के ग्रहण करने में बाधा अवश्य उपस्थित हुई, परन्तु जो अर्थ लिया गया है उसका सम्बन्ध मुख्यार्थ या वाच्यार्थ से कुछ न कुछ लगा हुआ है। वाक्य के अन्तर्गत किसी शब्द का ऐसा अर्थ जिस शक्ति के द्वारा ग्रहण किया जाता है उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं। लक्षणा के द्वारा विदित होने वाले अर्थ के लिए इन तीन बातों का स्मरण रखना चाहिए:— (१) वाक्य में किसी शब्द या वाक्यांश के नियत या मुख्य अर्थ से वाक्य का अर्थ समझने में बाधा पड़े, (२) इस कारण उस शब्द या वाक्यांश का कुछ और अर्थ लिया जाय, जो मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखता हो, और (३) इस अन्य अर्थ के ग्रहण करने का या तो (क) कोई विशेष प्रयोजन (अभिप्राय) हो, या (ख) इस अर्थ को अंगीकार करने के विषय में कोई रूढ़ि * या परम्परागत धारणा हो।

उपर्युक्त वाक्य में यदि 'उल्लू' शब्द का प्रचलित या संकेतित अर्थ, अर्थात् पक्षी विशेष, लिया जाता तो वाक्य में इसकी संगति न बैठती, वाक्य का अर्थ समझने में बाधा

* रूढ़ अर्थ से उस अर्थ का आशय है जो किसी शब्द के साथ लगा हुआ बहुत काल से चला आता हो। जैसे, 'तुषार' वास्तव में एक देश (आधुनिक 'पामीर' प्रदेश) का प्राचीन नाम है, पर बहुत दिनों से यह शब्द घोड़े के लिए रूढ़ हो गया है (क्योंकि किसी समय में तुषार देश के घोड़े बहुत प्रसिद्ध होते थे) अर्थात् तुषार देश के ही घोड़ों के लिए प्रयुक्त न हो कर यह शब्द 'घोड़ा' जाति भर के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार 'घोड़ा' के लिए 'तुषार' कहने की रूढ़ि या परंपरा चल पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पड़ती। कारण, आदमी अपने रूप-रंग का परित्याग करके उल्लू पक्षी का-सा आकार धारण कर ही नहीं सकता। इसलिए यहाँ उल्लू शब्द का मुख्यार्थ नहीं लिया गया। दूसरे, इसका जो अर्थ लिया गया है (अर्थात् उल्लू की भाँति अत्यन्त मूर्ख) वह मुख्यार्थ—उल्लू नामक पक्षी—से सम्बन्ध रखता है (मूर्खता में उल्लू का सादृश्य होने के कारण ही उसे ऐसा कहा गया है)। तीसरे, इस दूसरे अर्थ के लेने में वक्ता का कुछ विशेष प्रयोजन भी है। वक्ता जिस व्यक्ति की मूर्खता का आधिक्य व्यंजित करना चाहता है, उसके लिए 'अत्यन्त मूर्ख' या इसके सदृश अन्य वाक्य या वाक्य-समूह से अपना काम चलता न देखकर 'उल्लू' शब्द का प्रयोग करता है। यही इस शब्द के प्रयोग का यहाँ प्रयोजन है।

इसी प्रकार, किसी मेले में बड़ी भीड़ देखकर यदि कोई कहे कि 'जान पड़ता है आज यहाँ सारा शहर चला आया है' तो 'शहर' शब्द का मुख्यार्थ—इमारतें, सड़कें आदि—न लिया जायगा। क्योंकि इमारतें, सड़कें आदि अपने स्थान से चलकर दूसरी जगह जाना तो दूर रहा, एक इंच भी हट कर अन्यत्र खड़ी नहीं रह सकतीं, इसलिए यहाँ 'शहर' शब्द से तात्पर्य 'शहर के निवासी गण' से लिया जायगा। ऊपर के वाक्य में 'शहर' का अर्थ इमारतें आदि लेने से वाक्य का अर्थ गड़बड़ हो जाता है, अतः यहाँ (१) मुख्य अर्थ में बाधा है। इससे शहर का दूसरा अर्थ 'शहर के निवासी' लिया गया। यह लक्ष्यार्थ हुआ, जो (२) मुख्यार्थ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से भिन्न होते हुए भी उससे संबंध रखता है। और (३) ऐसा अर्थ 'रूढ़ि' के कारण लिया गया है, क्योंकि 'शहर के निवासियों' को संक्षेप में 'शहर' कहकर काम चलाने की रीति समाज में बहुत दिनों से चली आ रही है।

ऐसे ही, कहीं-कहीं पर किसी शब्द का वाच्यार्थ से उलटा अर्थ लेने पर ही वाक्य में उसका अभिप्राय समझा जाता है। जैसे, बीमारी के कारण अपने किसी क्षीणकाय मित्र को देखकर किसी के मुँह से अकस्मात् निकल पड़ा कि 'अच्छा, आजकल तुम बहुत मोटे-ताजे हो रहे हो! क्या ममला है?'—यहाँ 'मोटे-ताजे' का मुख्य अर्थ (हृष्ट-पुष्ट) न लेकर लक्षणा से इसका उलटा अर्थ (दुबला) लेने से ही वाक्य का अर्थ ठीक होगा। यह उलटा अर्थ वाच्यार्थ से वैपरीत्य-सम्बन्ध रखता है। इससे ऐसे स्थलों पर विपरीत लक्षणा होती है।

भिन्न-भिन्न दृष्टियों से वाक्य में किसी शब्द या वाक्यांश का लक्ष्यार्थ लेने से लक्षणा के तीन मुख्य भेद माने जाते हैं:—(क) रूढ़ा और प्रयोजनवती; (ख) लक्षण और उपादान और (ग) गौणी तथा शुद्धा।

(क) रूढ़ा और प्रयोजनवती

रूढ़ा लक्षणा वहाँ होती है जहाँ किसी शब्द के नियत या संकेतित अर्थ से भिन्न अर्थ अर्थात् लक्ष्यार्थ बहुत दिनों की रूढ़ि या परम्परा से नियत हो गया हो। जैसे—

करहिं तुखार पवन सौं रीसा। कंध ऊँच, असवार न दीसा

(जायसी)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ 'तुखार' शब्द 'घोड़े' के अर्थ में आया है, यद्यपि यह देश विशेष का भी नाम है। घोड़े के लिए 'तुषार' शब्द का प्रयोग करने की बहुत समय से रूढ़ि पड़ गई या परंपरा चल पड़ी है। इसी प्रकार, 'सिरोही' यद्यपि एक स्थान का नाम है, तथापि लक्षणा से इसका अर्थ कविता में 'तलवार' भी लिया जाता है। (सिरोही की तलवार बहुत मजबूत और अच्छी बनती थी, इससे कुछ समय के अन्तर 'सिरोही' शब्द खड्ग के लिए ही प्रयुक्त होने लगा और अब इस अर्थ में इस शब्द के प्रयुक्त होने की रूढ़ि पड़ गयी है। ऐसे ही 'पंजाब वीर है'—इस वाक्य में 'पंजाब' शब्द का लक्ष्यार्थ 'पंजाब देश की भूमि' नहीं किन्तु 'पंजाब के निवासी' लिया जाता है। 'पंजाब देश के निवासी'—इस लंबे वाक्यांश के स्थान पर 'पंजाब' कहने की परम्परागत चाल पड़ गयी है। ऐसा कहने में कोई और प्रयोजन या उद्देश्य नहीं है। इसी तरह 'इन दोनों घरों में झगड़ा' है—इस वाक्य में 'घरों' का अर्थ 'घरों के लोग' है न कि घर की इमारतें या अन्य वस्तुएँ। ऐसा कहने की भी परम्परागत रूढ़ि चली आती है।

प्रयोजनवती लक्षणा वहाँ होती है जहाँ किसी शब्द का नियत अर्थ न लेकर उससे भिन्न अर्थ, या लक्ष्यार्थ, किसी विशेष प्रयोजन से, अर्थात् किसी विशेष प्रकार के प्रयोजन को (अभिप्राय, मतलब) व्यंजित करने के लिए, लिया जाता है। जैसे—"उस गाँव में हर साल मलेरिया क्यों न फैले? कारण, वह तो बिलकुल पानी में बसा है।"—इस वाक्य में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गाँव को पानी में बसने वाला कहने पर यदि अभिधा से इस का वाच्यार्थ लिया जायगा तो अनर्थ हो जायगा, क्योंकि कोई गाँव पानी के अन्दर या ऊपर तो बस नहीं सकता; इस का अभिप्राय यही है कि वह पानी के बिलकुल निकट बसा है, या ऐसी जगह पर बसा है जहाँ बराबर पानी बना रहता है। परन्तु 'पानी में बसा है'--यह कहने का उद्देश्य यह है कि वक्ता उसमें 'सीड़ की अधिकता' व्यंजित करना चाहता है, और तभी इसका लक्ष्यार्थ ही लेने से काम चलेगा। इस प्रकार का लक्ष्यार्थ लेने का विशेष प्रयोजन या उद्देश्य है। इससे इस उक्ति में प्रयोजनवती लक्षणा है।

इसी प्रकार, किसी आदमी को गधा, उल्लू या बैल कहने का प्रयोजन उसकी मूर्खता के आधिक्य को व्यंजित करना होता है, इसीसे ऐसे वाक्यों में भी प्रयोजनवती लक्षणा होगी जिनमें इन शब्दों का किसी मनुष्य के लिए (यथा, तुम तो निरे गधे हो, वह पूरा उल्लू का बच्चा है आदि) प्रयोग होता है।

विशेष—हिन्दी के सब मुहावरे लक्ष्यार्थ के उदाहरण हैं, अर्थात् उन सब में लक्षणा शक्ति अभिप्रेत होती है। बँधे हुए मुहावरे होने के कारण उनमें रूढ़ा लक्षणा मानी जायगी; परन्तु वे सदैव विशेष अर्थ की व्यंजना के उद्देश्य से ही प्रयुक्त होते हैं, इससे उनमें प्रयोजनवती लक्षणा भी कही जा सकती है। जैसे, 'सिर पर क्यों खड़े हो'—इसमें 'सिर पर' का लक्ष्यार्थ 'निकट' है। 'निकट' न कह कर 'सिर पर' कहने का प्रयोजन 'निकटता का आधिक्य' व्यंजित करना है। और इस अर्थ में ही इसके प्रयुक्त होने की रूढ़ि भी हो गयी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस प्रकार भिन्न-भिन्न दृष्टियों से ये मुहावरे रूढ़ा और प्रयोजनवती दोनों लक्षणाओं के उदाहरण हो सकते हैं ।

(ख) लक्षण और उपादान

लक्षण लक्षणा

लक्षण लक्षणा वहाँ होती है जहाँ लक्ष्यार्थ (अर्थात् वह वस्तु जिसका लक्ष्यार्थ बोध कराता है) के साथ वाच्यार्थ (अर्थात् वह वस्तु जिसका वाच्यार्थ बोध कराता है) कुछ भी न लगा हो। इसी को 'जहत् स्वार्था' लक्षणा वृत्ति भी कहते हैं; क्योंकि 'जहत्' का अर्थ होता है 'छोड़ दिया हो', इससे जिसने अपना (स्व) अर्थ (अर्थात् वाच्यार्थ) छोड़ दिया हो वह 'जहत् स्वार्था' वृत्ति कही जायगी। जैसे—उस घर के लोग आये दिन मलेरिया से क्यों न पीड़ित हों, क्योंकि वह तो पानी में है'—इस वाक्य में 'पानी में' का वाच्यार्थ होता है 'पानी की धारा में'; किन्तु पानी की धारा के अन्दर घर की स्थिति हो ही नहीं सकती, इससे इस वाच्यार्थ को छोड़कर इसका तात्पर्य लिया जायगा 'पानी के तट पर'। अतः इसमें 'तट' रूप वस्तु (अर्थात् लक्ष्यार्थ में) 'जल-धारा' रूप वस्तु (अर्थात् वाच्यार्थ) का बिलकुल लगाव नहीं है। इससे इस कथन में लक्षण या जहत् स्वार्था लक्षणा होगी।

इसी प्रकार, 'वह आदमी निरा गधा है'—इस वाक्य में आदमी में गधा रूप वस्तु (अर्थात् वाच्यार्थ) का लगाव लेने से बड़ी गड़बड़ी हो जायगी, आदमी अपना स्वरूप छोड़कर गधा का आकार तो धारण कर ही नहीं सकता; इससे 'गधा' शब्द

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से व्यक्त होने वाली वस्तु (अर्थात् वाच्यार्थ) का उससे लिये जाने वाले **'गधा की सी मूर्खता'**—इस लक्ष्यार्थ (अर्थात् वह वस्तु जिससे इस लक्ष्यार्थ का बोध होता है) से कोई लगाव नहीं है । इससे इस उक्ति में भी लक्षण या जहत् स्वार्था लक्षणा होगी।

उपादान लक्षणा में, लक्षण लक्षणा के विपरीत, लक्ष्यार्थ (अर्थात् वह वस्तु जिसका लक्ष्यार्थ से बोध होता है) के साथ वाच्यार्थ (अर्थात् वह वस्तु जिसका वाच्यार्थ से बोध होता है) अंग रूप में अन्वित होता है, अर्थात् लगा होता है। इसे 'अजहत् स्वार्था' भी कहते हैं, क्योंकि इस में अपना (स्व) अर्थ (अर्थात् वाच्यार्थ) बिलकुल छोड़ा नहीं (अजहत्) होता, कुछ न कुछ लगा होता है । जैसे,

उपादान लक्षणा

'सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है'

इसमें 'साधुता' और खलई (खलता, दुष्टता) भाव या गुण हैं, वे क्रमशः, सोच नहीं सकते या आनन्दित नहीं हो सकते। यही अर्थ की बाधा है, इससे लक्षणा से यहाँ 'साधुता' का अर्थ 'साधु' और 'खलई' का 'खल' लिया जायगा। इस 'साधु' लक्ष्यार्थ के साथ साधुता रूप गुण और 'खल' लक्ष्यार्थ के साथ 'खलता' रूप गुण, अर्थात् वाच्यार्थ, छूटा नहीं, लगा हुआ है । इससे यहाँ उपादान या अजहत् स्वार्था लक्षणा होगी।

इसी प्रकार,

'चक्र सुदर्शन करत सदा जन की रखवारी'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में 'सुदर्शन चक्र' स्वयं रक्षा कर नहीं सकता, अतः वाच्यार्थ को छोड़कर इसका **लक्ष्यार्थ** लेना होगा। लक्षणा से इसका अर्थ 'विष्णु भगवान्' है। विष्णु के साथ सुदर्शन चक्र, अंग रूप से, रहता भी है, इससे इसमें उपादान या अजहत् स्वार्था लक्षणा होगी।

इसी तरह

"लाल पगड़ी के आते ही भीड़ छँट गयी"

इसमें, 'लाल पगड़ी' चल नहीं सकती। इससे इसका वाच्यार्थ न लेकर लक्ष्यार्थ लेना होगा। लक्षणा से इसका अर्थ 'सिपाही' हुआ। सिपाही के साथ, अंग रूप से, 'लाल पगड़ी' लगी रहती है, इससे इसमें उपादान या अजहत् स्वार्था लक्षणा होगी।

(ग) गौणी और शुद्धा

गौणी लक्षणा में सादृश्य अर्थात् समान धर्म के द्वारा लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है। जैसे, 'पुरुष सिंह है'—इसमें 'पुरुष' को 'सिंह' कहने में मुख्यार्थ की बाधा है, क्योंकि मनुष्य 'सिंह' नहीं हो सकता, अतएव सिंह के पराक्रम, शौर्य आदि समान गुण (धर्म) के द्वारा लक्ष्यार्थ, अर्थात् 'सिंह के समान शक्तिवाला पुरुष', का बोध होता है, इससे इसमें गौणी लक्षणा है।

गौणी लक्षणा के दो भेद होते हैं। (१) **सारोपा** और (२) **साध्यवसाना**।

सारोपा में उपमेय और उपमान दोनों रहते हैं। जैसे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह पुरुष सिंह है। यहाँ उपमेय (पुरुष) और उपमान (सिंह) दोनों मौजूद हैं।

साध्यवसाना में उपमेय का कथन न होकर केवल उपमान का ही कथन होता है। जैसे, "अब सिंह अखाड़े में उतरा" में उपमेय (पुरुष) का कथन नहीं हुआ, केवल उपमान (सिंह) कहा गया है।

(आगे अलंकारों के प्रकरण में समझाये जाने वाले) रूपक अलंकार में सारोपा गौणी लक्षणा होती है, और रूपकातिशयोक्ति में साध्यवसाना गौणी लक्षणा।

शुद्धा लक्षणा में, जैसा कि गौणी में होता है, सादृश्य संबंध के अतिरिक्त अन्य सम्बन्ध से लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है। जैसे, 'पानी में घर है'—इस में लक्ष्यार्थ, अर्थात् पानी के तट पर घर है, का बोध, पानी और घर के सादृश्य से नहीं प्रत्युत दोनों के नैकट्य से होता है। इसलिए यहाँ शुद्धा लक्षणा है। इसी तरह 'लाल पगड़ी के आते ही भीड़ छँट गयी'— में भी 'लाल पगड़ी' से प्राप्त लक्ष्यार्थ, अर्थात् सिपाही, सादृश्य सम्बन्ध से नहीं, किन्तु साहचर्य सम्बन्ध से (सिपाही और लाल पगड़ी सहचर हैं) उपलब्ध हुआ है। इससे इसमें भी शुद्धा लक्षणा है।

किसी एक ही वाक्य में आये हुए लाक्षणिक शब्द में लक्षणा के उपर्युक्त ये तीनों भेद एक साथ घटित हो सकते हैं। यथा, "लाल पगड़ी के आते ही भीड़ छँट गयी" इस वाक्य में— 'लाल पगड़ी' शब्द में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(१) रूढ़ा लक्षणा है;

(क्योंकि 'सिपाही' के लिए 'लाल पगड़ी' बोलचाल में आया करता है। ऐसा किसी विशेष प्रयोजन से नहीं होता, प्रत्युत व्यवहार से ही होता है)

(२) उपादान लक्षणा है;

(क्योंकि 'लाल पगड़ी' का संबंध सिपाही से बना हुआ है, छूटा नहीं)

और (३) शुद्धा लक्षणा है;

(क्योंकि 'लाल पगड़ी' और 'सिपाही' में समान धर्म नहीं है)

इस प्रकार, 'लाल पगड़ी' में, यहाँ रूढ़ा उपादान (या अजहत् स्वार्था) शुद्धा लक्षणा हुई।

लक्षणा से लिये जाने वाले अर्थ को लक्ष्यार्थ और उस अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को लाक्षणिक या लक्षक कहते हैं।

(३) व्यंजना

कभी-कभी उपरि-उल्लिखित अभिधा और लक्षणा में से किसी से वाक्य का अभिप्रेत अर्थ नहीं खुलता। ऐसी दशा में जिस शक्ति से अभिप्रेत अर्थ तक पहुँच होती है, उसे

व्यंजना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्यंजना कहते हैं। यथा, किसी आदमी ने एक दूसरे व्यक्ति से कहा कि 'तुम्हारे चेहरे से शठता झलकती है।' उसने चट उत्तर दिया, 'अच्छा मुझे आज ही मालूम हुआ कि मेरा चेहरा दर्पण है।' इस उत्तर का ठीक आशय इस वाक्य के वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ से प्रकट नहीं होता। इसलिए इनके अतिरिक्त तीसरी, अर्थात् व्यंजना, शक्ति से इसका तात्पर्य यह समझा जायगा कि उत्तर देने वाले व्यक्ति का अपने कथन से यह व्यंग्य है कि 'जैसे दर्पण में मनुष्य अपना प्रतिबिम्ब देखता है, वैसे ही वक्ता (अर्थात् पहला पुरुष) उसके मुख पर अपने ही प्रतिबिम्ब की झलक देख रहा है, अर्थात् वह स्वयं शठ है।' इस व्यंग्यार्थ के लेने ही से उक्त वाक्य की संगत बैठती है, अन्यथा नहीं। जिस शक्ति के सहारे यह व्यंग्यार्थ विदित हुआ उसे व्यंजना कहते हैं।

इसी प्रकार, किसी व्यक्ति को उसके नियमित शयन काल, अर्थात् दस बजे के, पश्चात् के एक बजे रात,तक जागता देखकर कोई कहे कि 'जान पड़ता है अभी दस नहीं बजे' तो उसका अभिप्राय होगा उसे व्यंग्य से बतलाना कि 'सोने का समय बहुत देर से व्यतीत हो चुका है; अब उसके लिए बहुत अतिकाल हो रहा है।'

ऐसे ही, किसी धूर्त्त व्यक्ति को साधु का वेश बनाकर भोले भाले लोगों को ठगते देखकर कोई उन्हें चेतावनी देने के लिए कहे कि 'हाँ, हम अच्छी तरह जानते हैं, आप बड़े महात्मा हैं' तो उसका आशय उस कपटी व्यक्ति को 'दुरात्मा' कहने से होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन दोनों उदाहरणों में भी व्यंजना शक्ति के द्वारा ही, असली, अभिप्रेत, अर्थ का साधन हुआ। काव्य में इसी शक्ति का सबसे अधिक प्रयोजन पड़ता है। इस शक्ति, अर्थात् व्यंजना, से उपलब्ध अर्थ को व्यंग्यार्थ और उसके प्रकट करने वाले शब्द को व्यंजक कहते हैं।

व्यंजना के भेद

(क) व्यंजना के दो भेद होते हैं:—(१) **शाब्दी** और (२) **आर्थी**।

(१) जहाँ व्यंग्यार्थ किसी विशेष शब्द के प्रयोग पर ही निर्भर रहता है (अर्थात् उस शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रख देने से व्यंजना नहीं रह जाती,) वहाँ **शाब्दी व्यंजना** होती है। शाब्दी व्यंजना, इस प्रकार, केवल अनेकार्थी शब्दों में होती है। जैसे,

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ? ये वृषभानुजा,[1] वे हलधर के वीर[2] ॥
(बिहारी)

इसमें, वास्तव में, सखी श्रीकृष्ण और राधा के महत्त्व का वर्णन करके उनके संबंध की उपयुक्तता सूचित करती है। पर, 'वृषभानुजा' और 'हलधर के वीर'—इनके क्रमशः वृषभ अनुजा (बैल की बहन; गाय) और हलधर (बैल) के वीर (भाई); बैल—इन दो अर्थों की ओर ध्यान जाने से सखी का छिपा हुआ परिहास भी व्यंजित होता है।

---

१. वृषभानु (राधा के पिता का नाम) की पुत्री। २. हलधर (बलदेव जी) के वीर (भाई) अर्थात् श्रीकृष्ण।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जहँ अमिली पाकइ हिय माँहा, तँह न भाव नौरँग के छाँहा
(जायसी)

यहाँ पद्मावती (पद्मिनी) ऊपर से तो केवल अपनी सौत नागमती के पेड़ों के लगाने के ढंग में, उसकी बागवानी में, दोष बता रही है; परन्तु इसमें यह भी व्यंग्य छिपा हुआ है कि 'प्रिय तुझको नहीं चाहता' और यह अर्थ 'अमिली' शब्द के (इमली के अलावा) दूसरे अर्थ, अर्थात् अ मिली (जिससे प्रिय न मिलता हो) और नौरँग के (नारँगी के अतिरिक्त) दूसरे अर्थ, अर्थात् नव क्रीड़ा, पर ध्यान जाने से स्फुट होता है। यदि 'अमिली' के स्थान पर 'इमली' और 'नौरँग' के स्थान पर 'नवकेलि' या इन शब्दों के कोई अन्य पर्याय रख दिये जायँ तो इनके द्वारा उपर्युक्त व्यंजना न रह जायगी।

विशेष—श्लेष अलंकार (जिसका विवेचन अलंकार प्रकरण में आगे किया जायगा) और शाब्दी व्यंजना में भेद होता है। श्लेष में शब्द के दोनों अर्थों पर कवि का समान रूप से लक्ष्य रहता है, परन्तु शाब्दी व्यंजना में प्रधान वाच्यार्थ ही रहता है, दूसरे अर्थ का आभास मात्र इष्ट होता है।

(२) जहाँ व्यंजना किसी शब्द विशेष पर अवलंबित न हो, अर्थात् उसका पर्याय रखने पर भी वह बनी रहे, वहाँ आर्थी व्यंजना होती है। ऊपर व्यंजना का साधारण परिचय देते समय जो तीन उदाहरण दिये गये हैं वे सब आर्थी व्यंजना के ही प्रमाण में लिये जाने चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(ख) व्यंजना के दो और भेद होते हैं:—(१) लक्षणा मूला और (२) अभिधा मूला ।

(१) वह व्यंजना **लक्षणा मूला** कहलाती हैं जिसमें व्यंग्यार्थ पर लक्ष्यार्थ के उपरान्त पहुँचा जाता है। जैसे, 'यह मनुष्य नहीं, बैल है।' इसमें पहले 'बैल' शब्द के लक्ष्यार्थ, अर्थात् मूर्ख, को स्पष्ट करके फिर इसके व्यंग्यार्थ, अर्थात् मूर्खता के आधिक्य, पर ध्यान जायगा।

(२) वह व्यंजना **अभिधामूला** कहलाती है जिसमें वाच्यार्थ से एक बारगी व्यंग्यार्थ पर पहुँचते हैं। जैसे, (लंका में सीता का पता लगा आने के पश्चात् हनुमान श्रीराम से सीता की दशा वर्णन करते हुए कहते हैं)

तुम्हरे बिरह भई गति जौन,
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि, जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न
(गीतावली)

यहाँ "जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न"—इसके वाच्यार्थ (अर्थात्, सीता की तुम्हारे वियोग में जो दशा हुई है वह पूरी नहीं केवल कुछ ही मैं जानता हूँ, सो भी कह नहीं सकता; उसका भी वर्णन करते मेरी शक्ति के बाहर है) से ही इससे व्यंजित व्यंग्यार्थ, अर्थात् 'सीता के विरह का आधिक्य', पर पहुँच हो जाती है।

इसी प्रकार, लंकादहन के अनन्तर हनुमान जिस समय बन्दी होकर रावण की सभा में पहुँचे, उस समय रावण और उनका वार्त्तालाप यों हुआ—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक, दूत बली रघुनंदनजू को।
को रघुनंदन रे ? त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण, भूषण भू को।
सागर कैसे तर्‍यो ? जस गोपद; काज कहा ? सिय चोरहिं देखो।
कैसे बँधायों ? जु सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत, पातक लेखो।

(रामचंद्रिका)

इस छंद में व्यंजनाओं का अत्यन्त सुन्दर जमघट है। जब राम का दूत अकेला (ससैन्य) अक्षयकुमार को मार सकता है, और समुद्र को गाय के खुर के रखने से पड़े हुए गड्ढे के समान, बिना विशेष प्रयास किये ही, पार कर सकता है, तब वे स्वयं (अर्थात् राम) कितने अधिक शक्तिशाली होंगे—यह सब इसमें व्यंजित होता है। पर सबसे अधिक सुन्दर व्यंजना है रावण के (व्यंजना द्वारा) यह पूछने पर कि 'यदि तू इतना बलवान था, तो फिर मेरे सेवकों के द्वारा बाँधा क्यों गया ?' हनुमान के इस उत्तर में कि 'मैंने सीता को खोजते समय जो तुम्हारे महलों में सोती हुई स्त्रियों का स्पर्श दृष्टि से किया है, अर्थात् जिन्हें मैंने केवल सोती हुई दूर से देखा है, उस पर-स्त्री के देखने के पाप के कारण मेरी यह दशा हुई।'—इस कथन के इस वाच्यार्थ से ही हम तुरन्त इस व्यंग्यार्थ पर पहुँच जाते हैं कि "मैंने दृष्टि मात्र से पर-स्त्री का स्पर्श किया है उसका फल मुझे यह भोगना पड़ता है कि मैं बंदी हुआ; परन्तु हे रावण, तुमने पर-स्त्री (सीता) का शरीर से स्पर्श ही नहीं हरण तक किया है उसका न जाने क्या भयंकर फल तुम्हें भोगना पड़ेगा।" इस कारण इसमें अभिधामूला व्यंजना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसी तरह, रावण और अंगद के निम्न-लिखित संवाद में भी इसी प्रकार की अभिधामूला व्यंजना है:—

कौन को सुत ? बालि को; वह कौन बालि न जानिए !
काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए।
है कहाँ वह ? वीर अंगद देव-लोक बताइयो ।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान बिमान बैठि सिधाइयो ।

इसमें, रावण ने अंगद से पूछा "तुम किसके पुत्र हो ?" उसने उत्तर दिया, "बालि का।" इस पर रावण ने पूछा, "बालि कौन ? मैं नहीं जानता।" (इस वाच्यार्थ से व्यंजित यह होता है "बालि तो ऐसा साधारण व्यक्ति है, जिसे मैं नहीं जानता।") इस पर अंगद उत्तर देता है कि "वही बालि, जो तुम्हें बगल में दबाये हुए सातों समुद्रों में स्नान करता फिरा था"—(इस वाच्यार्थ से यह व्यंजित होता है कि बालि इतना शक्तिशाली था कि तुम्हें बगल में दबाये रहने पर भी उसे कुछ प्रयास नहीं करना पड़ा था) आगे चलकर अंगद के उत्तर देने पर कि 'बालि राम के बाणों से मरकर स्वर्ग गया'—यह व्यंजित होता है कि 'जो बालि तुम्हें बगल में दबाकर सातों समुद्रों में स्नानार्थ जा सकता था, और तुम उसका कुछ बिगाड़ सकना तो दूर रहा, अपने को उसकी काँख से छुड़ा तक नहीं सकते थे, जब वही बालि राम के द्वारा मार डाला गया तब तुम्हारा मारना राम के लिए कितना आसान होगा—यह सोच लो।' इस प्रकार, वाच्यार्थ से ही तुरंत राम की शक्ति का आधिक्य इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्यंग्यार्थ की उपलब्धि हो जाती है। इससे इसमें भी, जैसा कहा जाचुका है, **अभिधामूला व्यंजना** है।

(३) व्यंजना के तीन अन्य भेद भी होते हैं (अ) **वस्तु** व्यंजना,(ब) **अलंकार** व्यंजना और (स) **भाव या रस** व्यंजना।

(अ) वह व्यंजना जिसमें कोई तथ्य या बात व्यंजित की जाती है, **वस्तु व्यंजान** कहलाती है। जैसे, 'पत्ता नहीं हिलता'—इसमें सन्नाटे के आतिशय्य की व्यंजना है। ऊपर व्यंजना के जो विविध उदाहरण दिये गये हैं सब वस्तु व्यंजना के ही अन्तर्गत आयेंगे।

(ब) वह वस्तु व्यंजना जिसमें व्यंजित तथ्य का स्वरूप किसी अलंकार के स्वरूप से मिलता-जुलता है **अलंकार व्यंजना** कही जाती है। यथा, ऊपर अभिधा मूला व्यंजना के उदाहरण में अंगद के रावण के प्रति उत्तर में काव्यर्थापत्ति* अलंकार व्यंग्य है, इसमें व्यंग्य यह है कि 'जिस राम ने तुम्हारे (रावण के) विजेता बालि को मार डाला उसे तुम्हें मारने में क्या देर लगेगी।'

इसी प्रकार इसी अभिधामूला व्यंजना के हनुमान के उत्तर वाले उदाहरण में भी काव्यर्थापत्ति अलंकार व्यंजित है।

(स) जिस व्यंजना में हृदय के किसी मनोविकार या भाव की व्यंजना हो वह **भाव व्यजना** होगी। और जिस भाव व्यंजना में रस की सिद्धि के उपादान—स्थायीभाव,

* काव्यर्थापत्ति अलंकार का लक्षण और पूरा विवरण आगे अलंकारों के प्रसंग में देखिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विभाव, अनुभाव, और संचारीभाव※—होंगे उसमें रस व्यंजना होगी। जैसे—जनक की सभा में जब सब राजा धनुष के तोड़ने में असमर्थ रहे तब जनक ने कहा कि "अब जनि कोउ माखै भट मानी, वीर विहीन मही मैं जानी......।" यह सुनते ही—

माखे लखन कुटिल भइ भौंहैं, रद-पट फरकत नयन रिसौंहैं
रघुबंसिन मँह जहँ कोउ होई, तेहि समाज अस कहै न कोई
कही जनक जस अनुचित बानी, विद्यमान रघुकुल-मनि जानी

यहाँ, जनक आलंबन विभाव※ है और उनकी वाणी उद्दीपन;※ कुटिल भौंहैं, रद-पट फरकत, नयन रिसौंहैं—ये अनुभाव※ हैं, 'माखे' से अमर्ष संचारी※ है; और क्रोध नामक स्थायी भाव※ है; इससे इन सब के मेल से इसमें 'रौद्र रस' का पूर्ण संचार हुआ है। इस कारण इसमें रस-व्यंजना होगी।

यदि इसमें "माखे"—यह शब्द (जो अमर्ष संचारी है) निकाल दिया जाय तो रस के एक अवयव, अर्थात् संचारी, के खंडित हो जाने से पूर्ण रस न होगा, उस दशा में इसमें भाव-व्यंजना ही मानी जायगी।

(विभाव, अनुभाव और संचारी के मेल से ही स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होता है। यदि इनमें से एक भी अवयव न रहे तो रस का परिपाक नहीं माना जाता; उस दशा में केवल 'भाव' की व्यंजना रहती है। इस विषय का सम्यक् विवेचन आगे रस-संबंधी अध्याय में किया जायगा।)

※ इन सबका विवरण आगे रस-प्रकरण में दिया गया है। वहीं इन्हें देखिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ध्वनि

जिस कविता या पद्य में व्यंग्य अर्थ की प्रधानता रहती है, यानी जिसमें व्यंग्य ही विशेष चमत्कार-जनक होता है, वह ध्वनि कहलाता है। रस और वस्तु व्यंजना ध्वनि के ही उदाहरण होंगे; क्योंकि इनमें व्यंजना ही उक्ति की जान होती है। उपर्युक्त रावण से हनुमान और अंगद के उत्तरों वाले उदाहरणों में जो ध्वनि व्यंजित हुई है (जिसका स्पष्टीकरण उन प्रसंगों में हो चुका है), वही उनके सौन्दर्य की मूल है।

ध्वनि के दो भेद होते हैं; (१) संलक्ष्य क्रम ध्वनि और (२) असंलक्ष्य क्रम ध्वनि।

ध्वनि के भेद

(१) संलक्ष्य क्रम ध्वनि (व्यंग्य) वहाँ होती है, जहाँ वाच्यार्थ पर कुछ देर तक ठहर कर, थोड़े विचार या अनुमान के उपरान्त व्यंग्यार्थ तक पहुँचना होता है। वस्तु-व्यंजना इसी संलक्ष्य क्रम व्यंग्य के द्वारा की जाती ह।

(२) जहाँ वाच्यार्थ पर कुछ ठहरना न पड़े, अर्थात् वाक्य के सुनने के साथ ही व्यग्ंययार्थ स्फुट हो जाय, वहाँ असंलक्ष्य क्रम ध्वनि या व्यंजना होती है। भाव-व्यंजना और रस-व्यंजना इसी असंलक्ष्य ध्वनि के द्वारा होती है।

असंलक्ष्य क्रम ध्वनि या व्यंजना के ये भेद हैं:—

रस, रसाभास, भाव, भावाभास, भावोदय, भाव-शांति, भाव-संधि और भाव-शवलता। इन सब का विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४—रस-रहस्य

रस क्या है ?

काव्य का स्वरूप निश्चित करते समय उसका 'सरस'[१]—रस से युक्त होना—आवश्यक बतलाया जा चुका है। वहाँ 'रस' से तात्पर्य मीठा, तीता, खट्टा, कसैला आदि उन षट्रसों से नहीं है, जिनका स्वाद जिह्वा से लिया जाता है। कविता का सरस कहने से आशय उसमें ऐसे तत्त्व का होना है जिसके कारण उसके पढ़नेवाले के हृदय में एक विशेष प्रकार का आनन्द संचरित होने लगता है और जिसे वह अनुभव तो करता है, पर वाणी से पूर्णतया कह नहीं सकता। किसी काव्य में किसी युद्ध का सजीव वर्णन पढ़कर या सुनकर हमारे हृदय में उत्साह, वीरता, जोश आदि का संचार होने लगता है; किसी की करुण-कथा कविताबद्ध पढ़ या सुनकर हृदय में दया का स्रोत उमड़ पड़ता है; प्रकृति का कोई मनोहर शब्द-चित्रण देख या सुन अथवा कोई प्रेम-प्रबंध पढ़ या सुनकर हृदय में अनुराग लक्षित होने लगता है; कोई हँसानेवाली कविता पढ़ या सुनकर हम ठहाका मारकर अपना कमरा गुँजा देते हैं; किसी घृणास्पद या भयोत्पादक दृश्य को कविता-बद्ध पढ़ या सुनकर हम नाक-भौं सिकोड़ने लगते या भय-भीत-से होने लगते हैं—किन्तु इन सब वर्णनों के द्वारा हमारे

१. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चित्त में उन कविताओं के प्रति आकर्षण ही होता है, विराग नहीं। हम उन्हें बार-बार पढ़ते हैं, फिर भी हमारा जी उनसे ऊबता नहीं। इसके विपरीत, यदि इन कविताओं में वर्णित बातों का हमें वास्तविक अनुभव हो तो कुछ तो ऐसी होंगी जिन्हें हम एक बार भी पसन्द न करें, और कुछ ऐसी होंगी जिनकी पुनरावृत्ति के कारण उनके प्रति विरक्ति होगी। अस्तु, वास्तविक अनुभूति में सदैव आनन्द नहीं होता, परन्तु काव्यानुभूति में आनन्द अवश्य और सदैव होता है।

जैसे किसी कविता को पढ़ने या सुनने से हमें उसमें वर्ण्य-वस्तु या विषय का शब्द-चित्र देखने से अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है वैसे ही जब हम कोई नाटक देखते हैं तब भी हमारे हृदय में उन्हीं भावों का-सा अनुभव होने लगता है जिनकी व्यंजना शब्दों और चेष्टाओं के द्वारा अभिनय करनेवाले रंगमंच पर किया करते हैं। यथा, शैव्या और रोहिताश्व के सहित हरिश्चन्द्र के काशी में बिकने वाले दृश्य का अभिनय देखकर हमारे नेत्रों से अश्रुधारा बह चलती है। ऐसे ही, दुष्यंत के स्वर्गलोक से लौटते समय कश्यप के आश्रम में अपने पुत्र भरत को पहले पहल देखने वाले दृश्य को रंगमंच पर देखकर हम भी, दुष्यन्त की ही भाँति, वात्सल्य-स्नेह से ओत-प्रोत हो जाते हैं। कविता की तरह, नाटक में भी कभी कभी ऐसे स्थल होते हैं (जैसे—'उत्तररामचरित' में सीता का वाल्मीकि के आश्रम में लक्ष्मण द्वारा परित्याग; दण्डकारण्य में राम का प्रलाप या मूर्च्छित होना आदि) जिन्हें अभिनीत देखकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हमारा हृदय शोक से परिपूर्ण हो जाता है। फिर भी अवसर मिलने पर हम ऐसे दृश्यों का अभिनय एक नहीं अनेक बार देखते हैं। इन दृश्यों को देखने में भी एक विशेष प्रकार का अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है। कविता पढ़ने या सुनने और नाटक देखने से पाठक, श्रोता या दर्शक को, इस प्रकार जो ऐसा असाधारण, लोक की अन्य सुखद वस्तुओं में अप्राप्य, आनन्द मिलता है, जिसको शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, वही काव्य में रस कहलाता है।

रस की उत्पत्ति

हमारे हृदय में प्रेम, क्रोध, घृणा, करुणा, भय, उत्साह, आदि भाव या वृत्तियाँ स्थायी रूप से, बराबर, विद्यमान रहती हैं। जब हम नाटक देखते या कोई कविता पढ़ते अथवा सुनते हैं तब प्रसंगानुसार इनमें से कोई न कोई भाव हमारे हृदय में जाग-सा उठता है। इसी को 'रस' का अनुभव कहते हैं। दूसरे शब्दों में, मानव-हृदय में सदैव प्रसुप्तावस्था में मौजूद रहने वाले मनोविकारों से रस की सिद्धि होती है।

मान लीजिए, हम किसी निर्जन वन में संध्या समय अकेले जा रहे हैं। अचानक सामने से कुछ लोग 'सिंह, सिंह' चिल्लाते एवं भागकर आते हुए दिखाई पड़े। उनकी चिल्लाहट सुनते ही हमें यह शंका हुई कि सिंह कहीं आकर हम पर आक्रमण न करे। इतने में उसकी दहाड़ भी निकट ही सुनाई पड़ी। अब तो हमारा शरीर थर-थर काँपने लगा; रोमांच हो आया; देह पसीना-पसीना हो गयी। जिधर से सिंह का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गर्जन सुनाई पड़ा था उसके विपरीत दिशा की ओर हम अकस्मात् भाग खड़े हुए। हमारा हृदय 'भय' से पूर्ण अधिकृत हो गया।

इस दशा का विश्लेषण करने पर विदित होगा कि (१) 'भय' का विषय है 'सिंह', अर्थात् 'भय' सिंह के प्रति है। (२) इस भय के उदय से ही यह विचार या 'शंका' उत्पन्न हुई कि सिंह कहीं हम पर आक्रमण न करे। (३) भय के कार्य अथवा परिणाम हैं—कंप, स्वेद, रोमांच आदि चेष्टाएँ।

इसी प्रकार, किसी शत्रु से अपमान-जनक शब्दों को सुनते ही क्रोध से हमारा चेहरा तमतमा उठता है, नेत्र लाल हो जाते हैं, ओंठ फड़कने लगते हैं, उस पर प्रहार करने के लिए हमारे हाथ उठ जाते हैं। इस उदाहरण में, (१) शत्रु क्रोध का लक्ष्य है, अर्थात् क्रोध उसी के प्रति है। (२) उसके मुख से निकले हुए अपमान-जनक शब्द उद्दीपन हैं, क्योंकि उनसे क्रोध और भी उद्दीप्त हो जाता है। चेहरे का तमतमाना, नेत्रों का लाल होना, ओंठों का फड़कना, हाथों का उठना—ये सब उस क्रोध के कारण उत्पन्न चेष्टाएँ हैं। शत्रु के अपने प्रति पहले के किये गये दुर्व्यवहार भी इस अवसर पर अवश्य स्मरण आयेंगे। फलतः हमारा क्रोध और भी भड़क उठेगा।

भय और क्रोध का पात्र के हृदय में जैसा वास्तविक संचार ऊपर के उदाहरणों में दिया गया है वैसा ही संचार यदि किसी काव्य या नाटक के पात्र में दिखाया जाय तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पाठक या दर्शक को भी भय या क्रोध की अनुभूति होने लगेगी। यह अनुभूति वास्तविक न होकर रसात्मक होगी। अर्थात् इस प्रकार पाठक या दर्शक द्वारा अनुभव किया हुआ भय या क्रोध क्रमशः भयानक और रौद्र रस कहलाएगा। रसात्मक अनुभूति चाहे किसी भाव की हो आनन्द-स्वरूप ही कही जायगी। जैसे, करुण-रस के अनुभव में कभी कभी आँसू आ जाते हैं, फिर भी वह रस आनन्द-स्वरूप ही माना जाता है। बात यह है कि शोक, भय, घृणा, आदि के वास्तविक अनुभव में उनके अपने व्यक्तिगत संबंध के कारण जिस प्रकार का क्षोभ होता है उस प्रकार का उनके रसात्मक अनुभव में नहीं होता। रस के अनुभव की दशा में अपने व्यक्तित्व का कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

उपर्युक्त पहले उदाहरण में, भय का विषय, सिंह, आलंबन कहा जायगा; उसकी दहाड़, जो सुनाई पड़ी, उद्दीपन होगी, क्योंकि उसके कारण पात्र का भय और उद्दीप्त हुआ; भय के उदय होने के कारण सिंह के आक्रमण करने की जो शंका उत्पन्न हुई वह संचारी कही जायगी; भय के संचार के कारण पात्र का शरीर काँपना, रोंगटे खड़े होना आदि चेष्टाएँ या उसके शारीरिक व्यापार अनुभाव कहलाएँगे। अनुभाव कहलाने वाली चेष्टाओं और संचारी कही जानेवाली शंका के आविर्भाव के समय 'भय' नामक भाव कारण रूप से बराबर बना रहा है, इसी से वह **स्थायी भाव** कहा जायगा।

इसी प्रकार, दूसरे उदाहरण में, क्रोध का विषय, शत्रु,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आलंबन है, क्योंकि क्रोध उसी के प्रति है; उसके मुख से निकले हुए अपमान-जनक शब्द उद्दीपन हैं, क्योंकि उनके कारण ही पात्र का क्रोध और भी उद्दीप्त हुआ; उसके पूर्व-कृत अपकारों का स्मरण संचारी कहा जायगा; पात्र का चेहरा तमतमाना, आँखों का लाल होना आदि चेष्टाएँ या शारीरिक व्यापार अनुभाव होंगे। अनुभाव कहलाने वाले शारीरिक कार्य और संचारी कहे जाने वाले स्मरण के उत्पन्न होने के समय 'क्रोध' नामक भाव कारण रूप से बराबर बना रहा है.इससे वह **स्थायी भाव** कहा जायगा।

जैसा ऊपर निर्देश किया जा चुका है वास्तविक अनुभव से भिन्न काव्य में रसात्मक अनुभूति में भी स्थायी भाव आलंबन, उद्दीपन और संचारी के द्वारा क्रमशः उत्पन्न, उद्दीप्त और संचरित होता एवं अनुभावों के द्वारा व्यक्त होकर 'रस' संज्ञक होता है। इससे 'रस' का स्पष्टीकरण करने के पूर्व स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव आदि का सम्यक् विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है।

स्थायी भाव

स्थायी भाव

जिस प्रकार मानव-हृदय-सागर की थाह लगाना आसान काम नहीं है उसी प्रकार उसमें भरे हुए भाव रूपी रत्नों की गणना करना भी हँसी-खेल नहीं। संसार में मनुष्यों को जिन स्थितियों में रहना होता है उन सब की पूरी-पूरी गणना नहीं हो सकती,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसे ही मानव-हृदय में उठने वाले उन सभी भावों का भी लेखा नहीं लगाया जा सकता जो उन विभिन्न परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप होते हैं। फिर भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के ज्ञाता काव्य-शास्त्र के हमारे प्राचीन आचार्यों ने कुछ ऐसे भावों या मनोविकारों का निर्देश कर दिया है जिनके अन्तर्गत सभी प्रकार की मनोवृत्तियों का समावेश किया जा सकता है। काव्य में ये **प्रधान भाव** नौ माने गये हैं; **प्रेम हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा,** (जुगुप्सा) **विस्मय** (आश्चर्य) और **निर्वेद** या **वैराग्य**।* ये भाव हमारे हृदय में सदैव, अज्ञात दशा में, प्रसुप्तावस्था में (सोते हुए-से) रहते हैं; अनुकूल अवसर या कारण पाते ही (जैसे कोई काव्य पढ़ने पर या नाटक देखने पर) उद्बुद्ध हो उठते हैं—जाग-से पड़ते हैं। तभी इनके फल-स्वरूप क्रमशः **शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत** और **शांत**, नामक रसों की उत्पत्ति होती है। जैसे, 'रामचरित मानस' में, भरत के अपने ननिहाल से लौटने पर अयोध्या में कौशल्या के अथवा भरत के ही विलाप सम्बन्धी प्रकरण को पढ़कर या सुनकर हम स्वयं शोक के वश में हो जाते हैं; अथवा, 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में से, हरिश्चन्द्र और शैव्या के मरघट संबंधी दृश्य का अभिनय देखकर हम अपने व्यक्तित्व के

*दृश्य काव्य या नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने इन नौ भावों में से अंतिम अर्थात् निर्वेद या वैराग्य, को नहीं माना। उनके अनुसार, इसलिए, रस आठ ही होते हैं, शांत रस को वे रस की संज्ञा नहीं देते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अस्तित्व को भूल-सा जाते और पात्रों के-से शोक का अनुभव करने लग जाते हैं। ऐसे अवसर के (काव्य पठन या नाटक-दर्शन के द्वारा) उपस्थित होने पर हमारे हृदय में स्वाभाविक रूप से शोक या करुणा का भाव आप से आप उठने लगता है। यह शोक का भाव **स्थायी भाव** कहा जायगा।

इसी प्रकार, जब हम, 'रामचरितमानस' में, धनुर्भंग का प्रसंग पढ़ते या सुनते हैं और यह देखते हैं कि अपने गुरु शिव के धनुष को तोड़ने वाले का नाम सुनकर इधर तो परशुराम श्रीराम और लक्ष्मण से बातचीत करते और लक्ष्मण की धृष्टता देख-देखकर टेढ़ी भौंह एवं लाल आँखें करके उन पर झपटते हैं और उधर लक्ष्मण निर्भय होकर बीच-बीच में कटु-वचन बोल-बोलकर उन्हें और भी अधिक उत्तेजित करते हैं तब हमारे सामने क्रोध का चित्र-सा आ जाता है, और हमारा हृदय भी परशुराम के क्रोध में योग देता-सा जान पड़ता है। यह 'क्रोध' **स्थायी भाव** कहा जायगा।

इसी धनुर्भंग के प्रकरण में जब हम जनक की राज-सभा में आँखें लाल किये हुए परशुराम का प्रवेश होने पर वहाँ उपस्थित राजाओं में खलबली पड़ने, उनके इधर-उधर भागने और लुकने-छिपने आदि का वर्णन पढ़ते हैं तब हमारे सामने भय का एक चित्र-सा उपस्थित हो जाता है। यही 'भय' साहित्य में **स्थायी भाव** कहलाता है।

इन शोक, क्रोध, भय नामक स्थायी भावों के अतिरिक्त ऊपर लिखे हुए अन्य भाव भी स्थायी इसीलिए कहे जाते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि उनकी स्थिति हमारे हृदय में जन्मजात है, उसमें वे स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं।

इन भावों को स्थायी इसलिए कहते हैं कि इन्हें विरुद्ध या अ-विरुद्ध भाव छिपा नहीं सकते, इनका आस्वाद (काव्य या नाटक में) सदैव बना रहता है, वे विरोधी या सहायक भाव इनको पुष्ट करने में ही सहायक होते हैं।

विभाव

विभाव : आलंबन, उद्दीपन

किसी भाव के प्रवर्त्तन में दो पक्षों का होना आवश्यक है, एक तो वह जिसके हृदय में भाव उत्पन्न और संचरित होता है, और दूसरा वह जिस के प्रति भाव प्रवृत्त होता है। जिसके हृदय में भाव उत्पन्न एवं संचरित होता है वह **आश्रय** कहलाता है; और जिस के प्रति भाव प्रवृत्त होता है वह **आलंबन**। जैसे, उपर्युक्त परशुराम के क्रोधवाले उदाहरण में परशुराम **आश्रय** होंगे, जिनके हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ है; और लक्ष्मण **आलंबन**, जिनके प्रति क्रोध उत्पन्न हुआ है। ऐसे ही, इसके आगेवाले उदाहरण में राजा लोग **आश्रय** होंगे और परशुराम **आलंबन**।

किसी के प्रति कोई स्थायी भाव आश्रय के हृदय में उत्पन्न होकर कुछ बातों या वस्तुओं से बढ़ता भी है। जैसे, ऊपर लिखे हुए परशुराम के क्रोध संबंधी उदाहरण में, परशुराम का क्रोध लक्ष्मण के कटुवचन सुनकर और भी उद्दीप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(जागरित) होता है। भावों को उद्दीप्त करने वाली इस प्रकार की वस्तुओं को **उद्दीपन** कहते हैं।

उद्दीपन के प्रकार

उद्दीपन **दो प्रकार** के देखे जाते हैं, **एक** वे जो आलंबन में ही होते हैं, अर्थात् आलंबन की शारीरिक चेष्टाएँ, बातें आदि; और **दूसरे** वे जो आलंबन से अलग होते हैं। जैसे, उपर्युक्त उदाहरण में लक्ष्मण के कटु-वचन आलंबन ही में है। पर शृङ्गार रस में (नायक-नायिका की चेष्टाएँ या उक्तियाँ आलंबन में ही होंगी, लेकिन) वन-उपवन, चाँदनी, समीर, पुष्प इत्यादि भी, जो आलंबन से अलग वस्तुएँ होती हैं, उद्दीपन हो जाती हैं। ऐसे ही, युद्ध-यात्रा करते हुए वीर के आस पास बाजे, वीरों की हुंकार, कड़खे आदि आलंबन से अलग होते हुए भी, उद्दीपन की सामग्री होती हैं।

उपर्युक्त **आलंबन** और **उद्दीपन** साहित्य में **विभाव*** के अन्तर्गत माने जाते हैं।

अनुभाव

अनुभाव

आश्रय के हृदय में स्थित स्थायी भावों का पता पाठक या श्रोता को उसकी कुछ शारीरिक चेष्टाओं और उक्तियों के द्वारा लगता है; अर्थात् इन्हीं चेष्टाओं और वचनों से स्थायी भावों की व्यंजना होती है।

---

*भाव सामान्यतः वासना के रूप में स्थित रहते हैं, जो व्यक्ति या वस्तु इन भावों को विशेष रूप में प्रवर्त्तन करती है वह विभाव कहलाती है। विभाव = विशेष रूप से भाव को प्रवर्त्तित करने वाला।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काव्य में भाव व्यंजित किये जाते हैं—शारीरिक चेष्टाओं या वचनों के द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। केवल उनका (भावों का) नाम ले लेने से उनकी रस के रूप में अनुभूति नहीं हो जाती; जैसे केवल इतना कह देने से रौद्ररस नहीं हो जायगा कि लक्ष्मण ने क्रोध किया। इसमें रसात्मकता तभी आएगी जब यह वर्णन किया जाय कि क्रोध के फल-स्वरूप लक्ष्मण के शारीरिक व्यापार क्या हुए, उनके मुख से कौन सी आवेग-पूर्ण बातें निकलीं, आदि।

आलंबन के प्रति किसी भाव के उत्पन्न होने पर आश्रय के शरीर में कुछ विशेष चेष्टाएँ दिखाई पड़ने लगती हैं, उसके मुख से वचन भी कुछ विशेष ढँग के निकलने लगते हैं। इन्हीं चेष्टाओं और वचनों के द्वारा हम आश्रय के हृद्गत भावों का पता पाते हैं। इन्हीं (चेष्टाओं और वचनों) को अनुभाव* ! कहते हैं।

भावों की भिन्नता के अनुसार आश्रय की शारीरिक चेष्टाएँ और उक्तियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होंगी; जैसे, क्रोध में, मुँह का लाल होना, ओंठ फड़कना, टेढ़ी भौंह, उग्र वचन, डाटना, डपटना, झपटना आदि; शोक या करुणा में आँसू बहाना, सिर पीटना, बाल नोचना, भूमि पर लोटना इत्यादि; प्रेम में मुस्कराना, कटाक्ष पात करना आदि; हास में खिलखिला कर हँसना, अट्टहास करना; उत्साह में अंगों का

---

* अनुभाव = भाव के अनु (पीछे) जो हो। अर्थात् जिन बाह्य लक्षणों से भाव के होने का ज्ञान हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

फड़कना, हाथ में तलवार निकाल लेना, शत्रु की ओर आक्रमण करना आदि; आश्चर्य में, भौंचक्का हो जाना, अवाक् हो जाना आदि; भय में थर-थर काँपना, रोमांच होना आदि; निर्वेद में चेहरे की गंभीरता आदि।

ये अनुभाव दो प्रकार के होते हैं; (१) सात्विक*, और (२) कायिक। (१) वे विकार या व्यापार जो शरीर की ऐसी स्वाभाविक क्रिया के रूप में होते हैं जिन पर आश्रय का कोई वश नहीं रहता सात्विक कहलाते हैं। ऐसे

अनुभाव के प्रकारः सात्विक, कायिक

---

* सात्विक को अँगरेजी में involuntary (अयत्नज) कह सकते हैं। ये विभाव के उपस्थित होने पर आश्रय के शरीर पर आप से आप प्रकट होने वाले धर्म हैं। जैसे, भय, प्रद कोई वस्तु सामने आते ही हम आप से आप काँपने लगते हैं, हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आदि; हम चाहें तो इन व्यापारों को प्रयत्न करके रोक नहीं सकते।

इन सात्विकों से भिन्न कायिक को अँगरेजी में voluntary (यत्नज) कहते हैं। ये आश्रय की इच्छा के अनुसार प्रकट होते वा नहीं होते। जैसे, क्रोध करने पर आँखों का लाल होना, ओठों का फड़कना तो आप से आप उत्पन्न हो जाने वाले सात्विक अनुभाव हैं, परन्तु कड़े शब्दों का मुख से निकलना, मारने के लिए हाथ का उठना—ये ऐसे व्यापार हैं जो आश्रय की इच्छा शक्ति के आश्रित हैं। वह चाहे तो अपने क्रोध को कुछ संयत रखकर ऐसा न करे। इससे इन्हें कायिक अनुभाव कहा जायगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्यापार आठ माने गये हैं; (क) **स्तंभ** (प्रसन्नता, लज्जा, व्यथा आदि से अंगों की गति का रुक जाना); (ख) **स्वेद** (भय, अनुराग, आश्चर्य आदि से शरीर का पसीने से तर हो जाना; (ग) **रोमांच** (हर्ष, भय आदि से रोंगटों का खड़ा हो जाना); (घ) **स्वर-भंग** (स्वाभाविक रीति से मुख से वचनों का न निकलना); (ङ) **कंप** (शरीर का थर-थर काँपना); (च) **वैवर्ण्य** (विवर्णता; चेहरे का रंग उड़ जाना); (छ) **अश्रु** और (ज) **प्रलय** (चेतना-शून्यता, या सुध-बुध का खोजाना)।

(२) वे विकार या व्यापार जो शरीर के अंगों की चेष्टाओं के रूप में होते हैं, जो आश्रय के अधीन होते हैं, **कायिक** कहलाते हैं। काया (शरीर) से संबंधित होने के कारण इन्हें 'कायिक' कहते हैं। यथा, कटाक्ष-पात, हाथ से इशारा करना, फटकारना, झपटना, कूदना आदि।

इस बात का सदैव स्मरण रखना चाहिए कि आश्रय की चेष्टाएँ ही अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं आलंबन की नहीं।

संचारी या व्यभिचारी भाव

संचारी या व्यभिचारी भाव

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, कुछ भाव तो ऐसे होते हैं जो हमारे हृदय में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं, जिन्हें स्थायी भाव कहते हैं; परन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जो उन स्थायी भावों के स्थितिकाल में उन्हें पुष्ट करने में सहायता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पहुँचाने भर को उत्पन्न होते हैं और ये काम करके तुरंत ही लुप्त हो जाते हैं। इन्हें **संचारी या व्यभिचारी*** भाव कहते हैं। स्थायी भावों को हम जल कह सकते हैं जो नदी या सरोवर में स्थायी रूप से मौजूद रहता है, और इन दूसरे क्षण कालीन सहायक भावों को जल में उठने वाली लहरें, बुलबुले या फेन कह सकते हैं, जिनका अस्तित्व क्षणिक होता है।

जब हम अपने सामने किसी व्यक्ति को हमारे प्रति अपशब्द कहते सुनते हैं तब तुरन्त हमारे हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है। यह 'क्रोध' **स्थायी भाव** है, जो अपने अनुकूल अवसर के उपस्थित होने पर जागरित हो जाता है। किन्तु यदि वह व्यक्ति इसके पहले भी कभी हमारा अपमान कर चुका होता है तो उसका स्मरण आते ही हमारा क्रोध और भी बढ़ जाता है। यह 'स्मरण' हमारे क्रोध को बढ़ा अवश्य देता है, परन्तु सदैव बना नहीं रहता; केवल क्रोध को तीव्र करके लुप्त हो जाता है। इसीसे इस 'स्मरण' को **संचारी या व्यभिचारी** कहा जायगा।

---

* इन्हें संचारी भाव इसलिए कहते हैं कि स्थायी या प्रधान भाव जितने काल तक रहते हैं उतने काल तक अनेक प्रकार के ये छोटे छोटे भाव संचरण करते रहते हैं।

व्यभिचारी उसे कहते हैं जो किसी एक में दृढ़ता-पूर्वक स्थिर न रहे। संचारी-भाव किसी एक ही रस के साथ बँधे नहीं रहते, कभी किसी के साथ प्रकट हो जाते हैं और कभी किसी के साथ। इसीसे इन्हें व्यभिचारी कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कोई भाव संचारी तभी कहा जायगा जब वह किसी प्रधान भाव के कारण उत्पन्न होगा। यदि कोई भाव स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होता है, किसी प्रधान भाव के शासन में नहीं रहता है तो वह केवल भाव रहेगा, संचारी नहीं होगा। जैसे, सपत्नी के प्रति ईर्ष्या का कारण नायक के प्रति नायिका का प्रेम भाव है (जिसमें सौत बाधक होती है), ऐसी दशा में ईर्ष्या संचारी भाव होगी; परन्तु यदि ईर्ष्या स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होगी (जैसे, किसी वीर, धनवान या मेधावी की बड़ाई सुनकर) तो वह संचारी नहीं होगी।

संचारी भावों की संख्या

संचारी या व्यभिचारी भावों की संख्या **तेंतीस** मानी गयी है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है:—

(१) **निर्वेद** (उदासीनता)—इष्ट वस्तु के वियोग या अन्य किसी कारण से उपलब्ध विपत्ति, तथा ईर्ष्या आदि कारणों से किसी बात, व्यक्ति या वस्तु से उपेक्षा या उदासीनता को निर्वेद कहते हैं। दीनता, खिन्नता, चिन्ता, अश्रुपात, जल्दी-जल्दी साँस लेना, आहें भरना आदि चेष्टाएँ निर्वेद* से होती हैं। जैसे, कैकेयी के प्रति मंथरा की इस उक्ति में निर्वेद संचारी है: "कोउ नृप होइ हमैं का हानी, चेरि छाँडि अब होब कि रानी!"

---

*इस निर्वेद से विरक्ति या किसी काम में जी न लगने का आशय ही लेना चाहिए; इसे उस निर्वेद से भिन्न समझना चाहिए, जो परमार्थ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(२) **आवेग**—हर्ष, या भय के अकस्मात् प्राप्त आधिक्य को आवेग कहते हैं। इष्ट-जन्य आवेग में हर्ष और अनिष्ट-जन्य में शोक होता है। हर्षावेग में शरीर संकुचित हो जाता है; और शोकावेग में देह ढीली पड़ जाती है, कँपकँपी होने लगती है, दिल धड़कने लगता है, मुख से अस्तव्यस्त—ऊलजलूल—बातें निकल पड़ती हैं, आदि।

(३) **दैन्य** (दीनता)—दुःख, दरिद्रता, दुर्गति, अपमान आदि से उत्पन्न ओजस्विता का अभाव या अपकर्ष दैन्य कहा जाता है। इसमें मलिनता, उदासी, आदि होती है।

(४) **श्रम**—(इष्ट की प्राप्ति के लिए) मार्ग चलने, संभोग आदि से थकावट होने के फल स्वरूप-उत्पन्न खेद का नाम श्रम है। इस में जल्दी-जल्दी साँस चलने लगती है, निद्रा-सी आ जाती है, आदि।

(५) **मद**—मस्ती या बेहोशी और आनन्द की मिश्रित अवस्था को मद कहते हैं। यह मद्यादि का सेवन करने से उत्पन्न होती है। इस में अंगों और वचनों की गति स्खलित हो जाती है।

(६) **जड़ता**—इष्ट अथवा अनिष्ट के देखने या उसके

तत्त्व के चिंतन के कारण संसार के समस्त विषयों को असार एवं असत्य समझने से उनके प्रति विराग उत्पन्न होने का परिणाम होता है। इस सांसारिक असारता को समझने के कारण जो निर्वेद होता है वह 'शांतरस' का स्थायी भाव है। (इसका उल्लेख आगे यथास्थान होगा) निर्वेद संचारी और निर्वेद स्थायी का यह अंतर ध्यान में रखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विषय में सुनने से थोड़ी देर के लिए ऐसी दशा का उपस्थित हो जाना जिसमें "क्या करना चाहिए"—इसका निश्चय न किया जा सके। इसमें टकटकी लगाकर देखते रह जाना, चुप हो जाना, आदि कार्य होते हैं।

स्तंभ सात्विक में शरीर की गति का रुक जाना होता है, और जड़ता संचारी में किसी साध्य का स्थिर न करके उसकी ओर प्रवृत्त न होना होता है।

(७) **उग्रता**—शूरता, अपने प्रति अपराध, अपमान आदि से उत्पन्न चण्डता या निर्दयता को उग्रता कहते हैं। इसमें प्रस्वेद, सिर का घूमना या काँपना, तर्जन, ताड़न, आदि व्यापार होते हैं।

(८) **मोह**—भय, दुःख, वियोग, घबराहट, अत्यन्त चिन्ता आदि के कारण चित्त की विक्षिप्तता, जिसमें वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं रहता, मोह कहलाती है। इसमें मूर्च्छा, पतन, चक्कर आना, दिखाई न पड़ना, अज्ञान, आदि व्यापार होते हैं।

(९) **शंका**—अन्य की क्रूरता, अपने दोष आदि से अपने भावी अनिष्ट का सोचना शंका कहलाता है। इसमें चेहरे का रंग उड़ जाना, काँपना, स्वरभंग, इधर-उधर भौंचक्का-सा ताकना, मुँह सूखना, आदि व्यापार होते हैं।

(१०) **चिन्ता**—हित या इष्ट की अप्राप्ति अथवा अहित या अनिष्ट की प्राप्ति के कारण उत्पन्न ध्यान को चिन्ता कहते हैं। इस में शून्यता, श्वास, ताप, सिर नीचे करना, ध्यान-मग्नता, आदि व्यापार होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(११) **ग्लानि** (अनुत्साह और शैथिल्य)—मानसिक खेद, भूख, प्यास आदि के कारण प्राप्त शारीरिक कष्ट, आदि से उत्पन्न शरीर के अंगों की शिथिलता, कार्य में अनुत्साह, आदि क्लेशों को ग्लानि कहते हैं। इसमें कमजोरी, कंप, किसी भी काम में जी न लगना, आदि व्यापार होते हैं।

(१२) **विषाद**—आरम्भ किए हुए कार्य की असफलता, उपाय के अभाव के कारण पुरुषार्थ-हीनता. आदि से उत्साह के भंग होने को विषाद कहते हैं। इसमें निश्वास, उच्छ्वास, मनस्ताप, सहायता की खोज, आदि कार्य होते हैं।

(१३) **व्याधि**—रोग, वियोग आदि से उत्पन्न मनस्ताप ही व्याधि है। इसमें पृथ्वी पर लोट जाने की इच्छा, कंप, आदि व्यापार होते हैं।

(१४) **आलस्य**—श्रम-जन्य थकावट, गर्भ-धारण आदि से उत्पन्न निश्चेष्टता (काम न करने की इच्छा) को आलस्य कहते हैं। इसमें जँभाई आना, एक ही जगह बैठे रहने की इच्छा, आदि चेष्टाएँ होती हैं।

(१५) **अमर्ष**—अनुचित, अनिष्ट या अप्रिय व्यवहार की असहनीयता की प्रतीति ही अमर्ष है। इसमें नेत्रों का लाल होना, त्योरी चढ़ना, होठों का कंपन, तर्जन, आदि व्यापार होते हैं।

(१६) **हर्ष**—इष्ट या इच्छित पदार्थ, व्यक्ति आदि की प्राप्ति से उत्पन्न चित्त के उत्साह अथवा सुख का नाम हर्ष है। इसमें आनन्दाश्रु, गद्गद् होना, हँसना, आदि व्यापार होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(१७) गर्व—रूप, विद्या, ऐश्वर्य, कुल, प्रभाव, आदि के कारण उत्पन्न औरों की अपेक्षा अपने को बढ़कर समझने के मनोभाव को गर्व कहते हैं। इसमें दूसरों की अवज्ञा की जाती है, धृष्ट या विनयशीलता-विहीन बातें मुँह से निकलती हैं, या ऐसी ही अन्य चेष्टाएँ होती हैं।

(१८) असूया (ईर्ष्या, डाह)—दूसरे के गुण, समृद्धि, उन्नति, आदि को न सह सकना असूया कहलाता है। इसमें दोष-कथन, भ्रू-भंग, तिरस्कार, आदि काम होते हैं।

(१९) धृति—तत्त्वज्ञान, इष्ट प्राप्ति आदि के कारण इच्छाओं का पूर्ण हो जाना या लोभ, मोह, भय आदि से उत्पन्न होने वाले उपद्रवों से न डिगना धृति कहलाता है। इसमें संतृप्तता, आनन्दपूर्ण-वचनावली, स्थिरता, आदि व्यापार होते हैं।

(२०) मति—शास्त्र-विचार, नीति मार्ग के अनुसरण, सत्संग आदि से बात की तह तक पहुँचने या उचित और अनुचित के ज्ञान का नाम मति है। इसमें मुस्कराहट, धैर्य, संतोष, असंशय, निश्चित मत, आदि व्यापार होते हैं।

(२१) चापल्य (चपलता)—मात्सर्य, द्वेष, अनुराग, आदि के कारण चित्त की अस्थिरता को चापल्य कहते हैं। इसमें दूसरों को धमकाना, कठोर शब्द बोलना, उच्छृंखल आचरण, आदि काम होते हैं।

(२२) व्रीड़ा (लज्जा)—स्त्रियों के पुरुष के देखने आदि से या पुरुषों के प्रतिज्ञा-भंग, पराजय आदि से तथा दोनों के निकृष्ट आचरण, व्यवहार आदि से उत्पन्न धृष्टता या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चंचलता के अभाव को व्रीड़ा कहते हैं। इसमें सिर का नीचा होना, चेहरे का रंग उड़ जाना, आँखों का सामने न कर सकना, आदि व्यापार होते हैं।

(२३) **अवहित्था**—(छिपाव, दुराव)—भय, लज्जा, गौरव आदि से हर्षादि भावों के छिपाने को अवहित्था कहते हैं। इसमें अनभीष्ट (किसी दूसरे) की ओर प्रवृत्त होना, मुख्य विषय को छोड़कर किसी अन्य विषय पर बात करने लगना, दूसरी ओर देखने लगना, आदि चेष्टाएँ होती हैं।

(२४) **निद्रा**—परिश्रम, ग्लानि, मद-पान आदि से उत्पन्न देखना, सुनना, सूँघना, स्पर्श करना आदि बाह्य-विषयों से निवृत्त होना निद्रा कहलाता है। इसमें जँभाई, उच्छ्वास, अँगड़ाई, आँख मिचना आदि व्यापार होते हैं।

(२५) **स्वप्न**—नींद में निमग्न दशा में इन्द्रियों के विषयों का जागने की दशा की भाँति असली-सा, पर झूठा, अनुभाव करना स्वप्न कहलाता है। इसमें कोप, आवेग, भय, ग्लानि, सुख, दुःख आदि होते हैं।

(२६) **विबोध** (जागना)—निद्रा को दूर करने वाले कारणों या अविद्या के नाश के उपरान्त प्राप्त ज्ञान से उत्पन्न चेतनता को विबोध कहते हैं। इसमें जँभाई, अँगड़ाई, आँखों का मींचना, अपने अंगों का अवलोकन, चेहरे पर अद्भुत प्रकाश, गंभीरता, शांति, आदि व्यापार होते हैं।

(२७) **उन्माद**—काम, शोक, भय आदि से उत्पन्न चित्त का भ्रमित होना उन्माद कहलाता है। इसमें अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आप, अकेले में या अकारण ही औरों के बीच हँसना, रोना, बड़बड़ाना, आदि कार्य होते हैं।

(२८) **अपस्मार**—(मृगी या मिरगी) मानसिक संताप के आधिक्य से चित्त के विक्षेप से उत्पन्न एक प्रकार की व्याधि को अपस्मार कहते हैं। इसमें अकस्मात् पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ना, कंपन, प्रस्वेद, मुख से फेन और लार का निकलना, आदि व्यापार होते हैं।

(२९) **स्मृति**—किसी पहले के देखे, सुने, समझे या विचार किए हुए व्यक्ति, पदार्थ, आदि का उससे मिलते-जुलते या संबंध रखनेवाले व्यक्ति, पदार्थ का दर्शन, श्रवण, चिन्तन आदि करने से उत्पन्न ज्ञान ही स्मृति कहा जाता है। इसमें पुलक, रोमांच, शोक, हँसना, रोना, आदि व्यापार होते हैं।

(३०) **औत्सुक्य** (उत्सुकता)—इष्ट या इच्छित वस्तु की प्राप्ति में विलंब का न सह सकना औत्सुक्य कहलाता है। इसमें चित्त का संताप, जल्दबाजी, पसीना, दीर्घ निःश्वास, आदि कार्य होते हैं।

(३१) **त्रास**—बिजली की चमक, बादल की कड़क या अन्य किसी भय के कारण क्षणिक एकदम विचलित कर देने वाली दशा को त्रास कहते हैं। इसमें कंप, रोमांच, आदि काम होते हैं।

(३२) **वितर्क**—सन्देह के कारण उत्पन्न विचार को वितर्क कहते हैं। इसमें भ्रूकुटि-भंग, सिर हिलाना, उँगली उठाना, आदि व्यापार होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(३३) **मरण**—किसी कारण प्राण-त्याग को मरण कहते हैं। इसमें देह का पतन, उसका पूर्णतया-चेतना विहीन होना, आदि होता है।

मरण को अमंगल मानने के कारण कुछ आचार्य मृत्यु के कुछ ही काल पहले की दशा या रोगादि से चिरकाल तक रहने वाली मूर्च्छा को भी **मरण** मानते हैं।

उपर्युक्त तेंतीस संचारी या व्यभिचारी भावों से यह न समझना चाहिए कि ये इतने ही प्रकार के हो सकते हैं; प्रत्युत इन्हें उपलक्षण मात्र मानना चाहिए अर्थात् ये तो संकेत मात्र हैं, इनके सहारे, इनके अतिरिक्त, इन्हीं से मिलती-जुलती और भी मानसिक दशाएँ समझनी चाहिए। इतना स्मरण रखना चाहिए कि वे दशाएँ स्थायी या प्रधान भाव के सहायक रूप में ही आई हों। इतना होने पर ही उन्हें संचारियों के अन्तर्गत लिया जायगा।

कभी कभी यह भी देखा जाता है कि एक स्थायी भाव दूसरे स्थायी भाव का संचारी हो जाता है, अर्थात् जो स्थायी भाव अन्त तक किसी कविता में अपनी स्थिति नहीं रखते वे संचारी ही माने जाते हैं*। जैसे, शृङ्गार रस में अन्त तक लगातार स्थित रहने के कारण रति उसका स्थायी भाव होता है, परन्तु बीच में हास (जो हास्य का स्थायी भाव होता

* बहुधा शृङ्गार और वीर में हास, वीर में क्रोध और शांत में जुगुप्सा—ये (क्रमशः हास्य, रौद्र और बीभत्स रसों के स्थायी) संचारी हुआ करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है) उत्पन्न और विलीन होने से संचारी भाव होता है, कारण उस में संचारी का ही लक्षण पाया जाता है। (इसी से कहा जा चुका है कि जो भाव रस की अवस्था तक पहुँचता है, अर्थात् रस तक पुष्ट होता है वही स्थायी कहा जाता है)। कभी कभी संचारी भावों में भी एक दूसरे के संचारी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जो भाव प्रधान होगा वह स्थायी माना जायगा और जो उसके कारण होगा, जो उसे पुष्ट करने में सहायक होगा वह संचारी।

रस के भेद

रस का संचार और उसके भेद

ऊपर बतलाये हुए विभाव, अनुभाव और संचारी (या व्यभिचारी) भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति मानी जाती है; अर्थात् जब किसी काव्य या पद्य में ये तीनों अवयव रहते हैं तभी उसमें पूर्ण रस होता है। जहाँ इनमें से किसी अवयव की कमी रहती है वहाँ भाव ही माना जाता है, अर्थात् उस दशा में वह भाव रस-दशा तक पहुँचा हुआ नहीं कहा जाता है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है कि **शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त**—ये नौ रस ही साहित्य में सर्वमान्य हैं। इनके अतिरिक्त कुछ लोग **वात्सल्य** नामक एक दसवाँ रस भी मानते हैं। इसके अलावा भी भक्तिमार्गी लोगों ने **भक्ति और सख्य**—य दो अन्य रस माने हैं, परन्तु इन्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

केवल भाव मानना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। यहाँ पर संक्षेप में प्रत्येक रस के विषय में उसकी मुख्य-मुख्य विशेषताओं का विवरण दे देना अप्रासंगिक न होगा।

शृंगार रस

शृंगार

कामदेव के अंकुरित होने को 'शृंग' कहते हैं। उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस 'शृंगार'❀ कहलाता है। इसमें स्त्री-पुरुष का पवित्र प्रेम वर्णित होता है।

शृंगार का स्थायी भाव प्रेम अथवा रति है (रति का

❀ 'साहित्य दर्पण' से। उसी ग्रंथ में आगे स्पष्ट कहा गया है कि "पर-स्त्री तथा अनुराग-शून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकाएँ तथा दक्षिण (अर्थात् एकमात्र अपनी विवाहिता पत्नी से ही अनुराग रखनेवाला) आदि नायक इस रस के आलंबन विभाव माने जाते हैं।" इससे यह स्पष्ट है कि अश्लील, गन्दी, कुरुचिपूर्ण और ऐसी उक्तियों या कविताओं को जिन्हें शिष्ट-समाज में पढ़ते समय लज्जा लगे शृंगार रस कहना इस रस के साथ अन्याय करना है। इस तरह की रचनाओं को 'रसाभास' ही मानना होता है। ऐसा न करने के कारण शृंगार रस में गंदा पानी-सा मिल गया है, और तभी इस रस का नाम लेते ही इसी प्रकार की गंदी, वासनामयी कविताओं का सर्वप्रथम ध्यान आने से शिक्षित लोग इस रस के प्रति उपेक्षा या तिरस्कार का भाव प्रदर्शित किया करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सामान्य अर्थ प्रीति है; स्त्री-पुरुष की 'प्रीति' के अर्थ में ही अधिक प्रयुक्त होने से साधारणतया इसका यही अर्थ समझा जाता है।) इसलिए आलंबन के भेद से स्त्री-पुरुष के प्रेम के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार का भी प्रेम हो सकता है; जैसे, संतति-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, गुरु-शिष्य का प्रेम, स्वामी-सेवक का प्रेम, देश-प्रेम, आदि। परन्तु सब से प्रबल और वर्णन द्वारा पाठक या श्रोता के मन में सब से अधिक और शीघ्र संचरित होने के कारण आचार्यों ने दाम्पत्य-रति को ही रस की दशा तक पहुँचने वाला माना है और अन्य प्रकार के प्रेम को भाव-दशा तक ही रखा है। कुछ आचार्यों ने वात्सल्य-प्रेम को भी रसदशा तक पहुँचने वाला माना है [परन्तु यदि अन्य भाव भी विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से रसात्मकता पा जायँ तो उन्हें भी रस क्यों न माना जाय? इस पुस्तक में विवाद खड़ा करने या उसे तूल देने के स्थान नहीं है, इसीसे इसमें केवल सर्वमान्य सिद्धान्तों का ही उल्लेख किया जायगा।]

स्त्री-पुरुष के मिलने और बिछुड़ने के कारण उनके मानसिक विकारों में नितान्त परिवर्त्तन-सा उपस्थित होने से इस रस के दो पक्ष होते हैं; (१) **संयोग** (या संभोग) और (२) **वियोग** (या विप्रलंभ)।

संयोग में नायक और नायिका के प्रेम-पूर्ण विविध कार्यों—मिलन, वार्त्तालाप, दर्शन, स्पर्श आदि—का वर्णन होता है। और 'इसके विपरीत' **वियोग** में उत्कट प्रेम होने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर भी प्रेमिक और प्रेमिका का संयोग या मिलन वर्णित नहीं होता, अर्थात् उसमें एक दूसरे से अलग रहने से उत्पन्न उनकी दशा का वर्णन होता है।

वियोग शृंगार के तीन प्रकार होते हैं (१) पूर्वानुराग (नायक का नायिका के या नायिका का नायक के सम्मिलन के पहले ही चित्र-दर्शन, सौन्दर्य, गुण आदि के श्रवण, प्रत्यक्ष दर्शन (आदि से उत्पन्न पारस्परिक अनुराग का वर्णन), (२) मान प्रेमिक से सम्मान कराने के लिए प्रेमिका के उससे रूठने की दशा) और (३) प्रवास (सम्मिलन के पश्चात् पति-पत्नी में से किसी एक का विदेश-यात्रा के लिए प्रस्तुत होना या परदेश में होना)।

अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण—ये दश दशाएँ वियोग-शृंगार में आश्रय की हुआ करती हैं।

शृङ्गार-रस का—

स्थायी भाव—रति या प्रेम है।

आलंबन (विभाव)—नायक या नायिका है।

उद्दीपन❀ **(विभाव)**—नायक या नायिका की वेश-भूषा,

❀ संस्कृत के साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में नायिकाओं के २८ सात्विक अलंकार गिनाये गये हैं जो उन में यौवनकाल में प्रकट होते हैं। उन में से 'भाव' 'हाव' और 'हेला'—ये तीन अंगज अलंकार कहे गये हैं क्योंकि ये शरीर से ही संबंध रखते हैं। 'शोभा' 'कांति', 'दीप्ति', 'माधुर्य', 'प्रगल्भता', 'औदार्य' और 'धैर्य'—ये सात अयत्नज अलंकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विविध चेष्टाएँ आदि पात्रगत हैं, और पात्र से बहिर्गत हैं—चंद्र, चाँदनी, चंदन, बसन्त, सुरभित पवन, एकान्त स्थल, वाटिका, उपवन, भ्रमर-गुंजार आदि।

कहे गये हैं, क्योंकि ये यत्न या कृति से साध्य नहीं होते (बनाने से नहीं बनते, प्राकृतिक होते हैं) और लीला, विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, (विहृत) मद, तपन, मुग्धता, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि—ये अठारह यत्नज माने गये हैं क्योंकि विभाव-सिद्ध होते हुए भी ये यत्न अर्थात् कृति से साध्य होते हैं।

भाव जन्म से ही निर्विकार (Innocent) चित्त में उत्पन्न होने वाले विकार हैं, परन्तु हाव आलंबन नायिका की मनोमोदकता बढ़ाने वाली वे चेष्टाएँ हैं जो संयोग-काल में ही होती हैं, और जो थोड़े काल तक ही प्रकाशित होने वाले भाव हैं जैसे भ्रू-भंग, कटाक्ष, मुसकान आदि।

परन्तु हिन्दी के आचार्यों ने, उपर्युक्त संस्कृत के आचार्यों के बतलाये हुए अठारह यत्नज अलंकारों में से लीला (प्रेम की अधिकता से वेश, अलंकार, प्रेमालाप द्वारा प्रियतम का अनुकरण करना), विलास (प्रिय वस्तु के दर्शनादि से गति, स्थिति, आसन आदि की तथा मुख, नेत्रादि के व्यापारों की विशेषता), विच्छित्ति (कांति को बढ़ाने वाली थोड़ी सी वेश-रचना), विव्वोक (अति गर्व के कारण अभिलषित वस्तु में भी अनादर दिखाना), किलकिंचित (अति प्रिय वस्तु के मिलने आदि से उत्पन्न हर्ष से कुछ मुस्कराना, कुछ अकारण रोदन का आभास, कुछ हास, कुछ त्रास, कुछ क्रोध, कुछ श्रम आदि का विचित्र सम्मिश्रण), मोट्टायित (प्रियतम की कथा सुनकर अनुराग उत्पन्न होना), कुट्टमित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ये बहिर्गत उद्दीपन संयोग-दशा में आनन्द को बढ़ाते हैं, और वियोग में दुःख को। (वियोग-दशा में सूनी सेज, पावस, कोयल की कूक, पपीहा की पुकार आदि अनेक अन्य उद्दीपन होते हैं।)

अनुभाव—(आश्रय की) अनुरागपूर्ण दृष्टि, भ्रकुटिभंग, कटाक्ष, अश्रु, वैवर्ण्य आदि हैं।

संचारी—संचारी भावों के प्रसंग में गिनाये हुए सभी संचारी हो सकते हैं।

इस रस के सुखात्मक और दुःखात्मक—ये दो पक्ष हो जाने से इसमें सब प्रकार के संचारी भाव आ सकते हैं। इस रस का शासन सभी संचारियों पर रहता है, इसी से इसे **रसराज** कहते हैं।

(अन्य रसों में सब संचारी नहीं आ सकते)

नीचे संभोग और विप्रलंभ दोनों प्रकार के शृंगार रस के उदाहरण दिये जाते हैं :

(केश, अधर आदि के ग्रहण करने पर आंतरिक हर्ष होने पर भी बाह्य घबराहट के साथ शिर, हाथ आदि का परिचालन) विभ्रम (प्रियतम के आगमन आदि के हर्ष और अनुराग आदि के कारण शीघ्रता में भूषणादिक का स्थानान्तर पर धारण करना), ललित (अंगों को सुकुमारता से रखना) और विहृत (विहित) (लज्जा के कारण प्रिय के समीप कहने के समय भी बात का न कहना)—इन पहले दस को हाव के प्रकार माना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(१) संभोग श्रृंगार—

चितवत चकित चहूँ दिसि सीता, कहँ गए नृप-किसोर मन-चीता।
लता-ओट तब सखिन लखाए, स्यामल-गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप लोचन ललचाने, हरषे जनु निज निधि पहिचाने।
थके नयन रघुपति छबि देखे, पलकन्ह हू परिहरी निमेखे।
अधिक सनेह देह भई भोरी, सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी।
लोचन-मग रामहिँ उर आनी, दीन्हें पलक कपाट सयानी।
जब सिय सखिन प्रेम-बस जानी, कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी।

—तुलसी (रामचरित मानस)

यहाँ ('सीता' आश्रय है और) आलंबन* विभाव हैं राम। उद्दीपन है — लता-मण्डप। अनुभाव है—एकटक देखना (पलकन्ह हू परिहरी निमेखे); 'देह भइ भोरी' में प्रलय सात्विक है। तथा संचारी है 'लोचन ललचाने' में अभिलाषा; 'हरषे' में हर्ष, और 'मन सकुचानी' में व्रीड़ा (लज्जा)। इस प्रकार विभाव, अनुभाव तथा संचारी से पुष्ट 'रति' नामक स्थायी भाव यहाँ पर श्रृंगार रस का पूर्ण संचार करने में समर्थ हुआ।

---

*"लता-ओट तब सखिन लखाये, स्यामल-गौर किसोर सुहाये"— इस अर्धाली में कथित 'स्यामल गौर' ('राम-लक्ष्मण')—दोनों सीता के प्रेम-पात्र नहीं थे। कवि ने आगे स्पष्ट कर दिया है 'थके नयन रघुपति (अर्थात् राम) छबि देखे' और 'लोचन मग रामहिं उर आनी—' इससे निस्सन्देह राम के प्रति सीता का प्रेम सिद्ध होता है; इसी से यहाँ राम ही आलंबनविभाव हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(२) विप्रलंभ श्रृंगार—

(क) शान्ति स्थान महान कण्व[1] मुनि के पुष्याश्रमोद्यान[2] में
बाह्यज्ञान[3] विहीन लीन अति ही दुष्यन्त के ध्यान में
बैठी मौन शकुन्तला सहज थी सौन्दर्य से सोहती
मानों होकर चित्र में खचित-सी थी चित्त को मोहती

—मैथिलीशरण गुप्त (शकुन्तला)

इस छन्द में (शकुन्तला आश्रय है, और) दुष्यन्त आलंबन तथा कण्व का शान्त, पवित्र आश्रम-उद्यान उद्दीपन विभाव है। शकुन्तला का मौन होकर चित्र-खचित-सी बैठना स्तंभ सात्विक अनुभाव है। उसका बाह्यज्ञान विहीन होना, लीन होना जड़ता, संचारी है। अतः यहाँ विभाव, अनुभाव और संचारी से युक्त 'रति' स्थायी की व्यंजना हुई। इससे इसमें वियोग श्रृंगार है।

(ख) भूषण-बसन बिलोकत सिय के
प्रेम-बिबस मन, कंप पुलक तनु, नीरजनयन नीर भरे पिय के
सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत, सील सनेह सु-गुण-गन तिय के

यहाँ ('पिय', अर्थात् राम आश्रय हैं, और) सीता—आलंबन; उनके भूषण वस्त्र—उद्दीपन विभाव हैं। 'कंप' 'पुलक' (रोमांच) और (नीरज-नेत्रों में नीर भरना) अश्रु—ये सात्विक अनुभाव हैं। 'कहत सकुचत' में व्रीडा और 'सुमिरि उर उमगत' में स्मरण संचारी है।

---

१. शकुन्तला का पालन करने वाले मुनि। २ पवित्र आश्रम का बगीचा। ३ होश।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस तरह, यहाँ पर विभाव, अनुभाव और संचारी से युक्त 'रति' स्थायी की व्यंजना पूर्णतया हुई; अतः यहाँ वियोग शृंगार है।

हास्य रस

किसी व्यक्ति या वस्तु का (साधारण से भिन्न, अनोखा) विकृत (बिगड़ा हुआ; भद्दा या कुरूप) आकार (जैसे बौने का-सा), किसी की अनोखे ढंग की वेश-भूषा, तथा बातचीत, विचित्र प्रकार की चेष्टाएँ, अनोखे अलंकार आदि को देखकर हृदय में जो विनोद का भाव उत्पन्न होता है वही 'हास' कहलाता है। यह 'हास' स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, और संचारी से पुष्ट होकर 'हास्य रस' कहा जाता है। इसमें अधिकतर केवल आलंबन का वर्णन-मात्र यथेष्ट होता है, अनुभाव आदि की योजना की आवश्यकता नहीं होती।

हास्य-रस का—

स्थायी भाव—'हास' होता है;

आलंबन (विभाव)—विकृत आकृति वाला व्यक्ति या वस्तु है;

उद्दीपन (विभाव)—आलंबन की अनोखी आकृति, बातें, चेष्टाएं आदि हैं;

(हास्य-मंडली, 'फैंसी ड्रेस शो'—अनोखी वेश-भूषा के प्रदर्शन का सम्मेलन—आदि पात्र के वहिर्गत इस रस के उद्दीपन विभाव हो सकते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अनुभाव—(आश्रय की) मुस्कराहट, हँसी, उसके नेत्रों का मिच जाना आदि हैं।

संचारी—हर्ष, आलस्य, चपलता, अवहित्था आदि हैं।

हास्य के छः भेद माने जाते हैं—स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित।

(१) जहाँ नेत्रों में कुछ विकास हो और ओंठ जरा-जरा फड़कें वहाँ 'स्मित' होता है। (२) यदि इस प्रकार के व्यापार के साथ ही कुछ-कुछ दाँत भी दिखाई पड़ने लगें तो 'हसित' होगा। (३) यदि 'हसित' के सब व्यापारों के साथ ही मधुर शब्द भी हो तो वह 'विहसित' कहा जायगा। (४) 'विहसित' के कार्यों के साथ ही कंधे, सिर आदि में कँपकँपी होने से वह 'अवहसित' हो जाता है। (५) यदि हँसते-हँसते आँखों में पानी आ जाय तो वह 'अपहसित' होगा और (६) जिसमें इधर-उधर हाथ-पैर भी पटके जाते हैं वह 'अतिहसित कहलाता है। बड़े आदमियों में 'स्मित' और 'हसित' होते हैं, मध्यम श्रेणी के लोगों में 'विहसित' और 'अवहसित', तथा नीच पुरुषों में 'अपहसित' और 'अतिहसित'। हँसी के ये छः प्रकार हास की कमी या अधिकता के आधार पर ही निश्चित किये गये हैं। अतः इन पर अधिक जोर देने में कोई विशेष चमत्कार नहीं।

नीचे के अवतरण में हास्य रस है:—

(क) था गरमी का मौसम यहाँ ज़ोर पर,
तो करनी पड़ी एक लंबी सफ़र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गया रेल पर तो नज़ारा वहाँ
जो देखा तो तबियत भी सहमी वहाँ
वो शिद्दत की गरमी औ' वो कशमकश
वो गाड़ी में चढ़न को खिड़की पै 'रश' (Rush)
इसे देख पस्त मेरी हिम्मत हुई
ये सोचा कि बस आज गाड़ी गई
मगर एक 'इंटर' में देखा तो एक
चढ़ा कोई साहब का रच करके भेख
बदन पर थी 'पालिश' (Polish) वो जापान की
औ' पतलून 'गुदड़ी के बाजार' की[1]
शकल और सूरत की क्या बात थी !
उसे देख भैंसे की माँ मात थी
जो देखा कि चढ़ता है इक आदमी
तो लंगूर घबराए, उलटी ज़मीं !
कुली से वे बोले कि "ओ, ख़बरडार,
शुअर, क्या न जाने ये शाअब का कार ?"

—श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर' (जीवन के गीत)

इसमें अँगरेज-वेशधारी व्यक्ति आलंबन विभाव है; उस के काले रंग पर जापान की पालिश, उसके शरीर पर गुदड़ी-बाजार की (फटी, पुरानी) पतलून, अँगरेज़ों के अनुकरण पर उसके मुख से विचित्र प्रकार से उच्चरित 'खबरडार, शाअब' आदि शब्द—ये उद्दीपन विभाव हैं।

१ वह बाजार जहाँ इस्तेमाल की हुई पुरानी चीज़ें बिकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, केवल आलंबन के वर्णन से ही **हास्य रस** का संचार हुआ है।

(ख) विश्व-मोहनी के स्वयंवर में बन्दर की मुखाकृति वाले नारदमुनि का नीचे लिखा हुआ वर्णन भी हास्य रस का यथेष्ट संचार करता है:—

जेहि समाज बैठे मुनि जाई, हृदय रूप-अहमिति अधिकाई
तहँ बैठे महेसगन दोऊ, बिप्र-बेस गति लखै न कोऊ
करहिं कूट नारदहिं सुनाई, नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई !
रीझिहि राज-कुँअरि छबि देखी, इनहिं बरिहि हरि जान बिसेखी !

× × × ×

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं, देखि दसा हरगन मुसुकाहीं

यहाँ भी नारद आलंबन विभाव हैं, और उनकी (बन्दर की सी) आकृति, उनका 'पुनि-पुनि उकसना' (बार बार ऊपर को उठना)—ये उद्दीपन विभाव हैं।

इन्हीं के द्वारा **हास्य रस की** योजना इसमें हो गयी है।

करुण रस

प्रिय व्यक्ति या इष्ट वस्तु के नाश होने और अप्रिय व्यक्ति या अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने से हृदय को जो क्षोभ या क्लेश होता है उसी की व्यंजना से करुण रस की उत्पत्ति होती है।

इस रस का—

स्थायी भाव—शोक है;

आलंबन (विभाव)—विनष्ट प्रियतम, बन्धु, ऐश्वर्य आदि हैं;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उद्दीपन (विभाव)—उनका दाहकर्म, उनसे सम्बन्ध रखने वाली चीज़ें, जैसे घर, वस्त्र, भूषण आदि, उनकी कथा आदि हैं;

अनुभाव—दैव-निन्दा, भाग्य-निंदा, भूमि-पतन,, रोना, उच्छ्वास, निःश्वास, स्तम्भ, प्रलाप, विवर्णता आदि हैं।

संचारी—निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता, दैन्य आदि हैं।

विशेष—करुण की-सी दशा विप्रलंभ शृंगार में होती है; पर विप्रलंभ में समागम की आशा बनी रहती है और करुण में मिलने की आशा नहीं रहती है।

नीचे करुण रस का एक उदाहरण दिया जाता है:—

आधी रात, पुञ्जीभूत तम से भरी हुई
सन्न किसी डर से डरी हुई

× × × ×

किन्तु जानकी की माँ सकी न टाल।
क्षण काल
निज चिर यात्रा। विना जाने देश के लिए
चली गई युग्म नेत्र बन्द किए

× × × ×

हाहाकार घर में हुआ नया
निशि का अटूट वह मौन-व्रत टूट गया!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किन्तु यह सारा हाल,
जानकी न जान सकी; बेखबर सोती हुई।
जागी जब प्रातःकाल
हेतु कुछ जाने बिना, शंकित सी होती हुई
'माँ' 'माँ' कर रो उठी तुरन्त वह

× × ×

पोंछ निज नेत्र नीर अंचल के पट से
जीजी गई उसके समीप उठ झट से
और पुचकार उसे गोद में उठा लिया
एकाएक अर्थी पर
माँ को पड़ी देखकर
जीजी की गोद से कूद पड़ने के लिए
करके करुण रोर
रोकर लगाने लगी पूरा ज़ोर
"जाते हैं कहाँ वे अरे माँ को लिये !"

—सियाराम शरण गुप्त ('आर्द्रा')

यहाँ जानकी की माँ आलंबन विभाव है; उसका मृत शरीर, तथा उस मृत शरीर को अर्थी पर ले चलना—उद्दीपन हैं। जानकी का रोना, चिल्लाना, तथा 'जाते हैं कहाँ वे माँ को लिये'—यह प्रलाप अनुभाव हैं। 'शंकित-सी होती हुई'—यह शंका संचारी है और 'जीजी की गोद से कूद पड़ने की चेष्टा' में आवेग संचारी है। इस प्रकार, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से 'शोक' स्थायी पुष्ट होकर करुण रस के रूप में व्यंजित हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रौद्र रस

शत्रु, विपक्षी या किसी अविनीत की चेष्टाएँ, कृतियाँ; या अपना अपमान, अपकार अथवा गुरुजनों की निन्दा आदि के कारण उत्पन्न क्रोध से **रौद्र रस** का संचार होता है। इसका अनुभव पाठक या श्रोता को किसी अन्यायी, अत्याचारी या अनिष्टकारी के प्रति वचनों और चेष्टाओं से की गयी व्यंजना के द्वारा होता है।

इसमें

स्थायी भाव—क्रोध होता है;

आलंबन (विभाव)—शत्रु, विपक्षी, कोई धृष्ट व्यक्ति, देशद्रोही, जातिद्रोही, दुराचारी, कपटी आदि होता है;

उद्दीपन (विभाव)—उनके किए हुए अपराध, उनकी चेष्टाएँ, गर्वोक्तियाँ, चालबाजियाँ आदि होते हैं;

अनुभाव — नेत्रों का लाल होना, भौंहों का टेढ़ी होना, दाँत और ओठों का चबाना, कठोर भाषण, अपने पुरुषार्थ का वर्णन, शस्त्रों का उठाना, उनका प्रहार, क्रूर-दृष्टि, गर्जन, तर्जन, रोमांच, स्वेद, कंप, आवेग, मद आदि हैं;

संचारी—अमर्ष, मोह, मद, उग्रता, स्मृति, क्रूरता, आवेग, गर्व, चपलता आदि हैं।

द्रष्टव्य—नेत्र, मुख आदि का लाल होना इसी रस में होता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वीर रस में नहीं। इसमें क्रोध ही उमड़ता है, और उस (वीर) में उत्साह। यही दोनों का अन्तर ध्यान में रखना चाहिए।

नीचे रौद्र रस का एक उदाहरण दिया जाता है:—

एक दिन जोधपुर-नरेश विजयसिंह ने अपने सरदार देवीसिंह से भरे दरबार में पूछा कि यदि मुझ पर कोई बिगड़ जाय तो तुम क्या करो? उसने उत्तर दिया कि वह मेरे हाथ से मारा जाय। तदनन्तर राजा ने पूछा यदि तुम्हीं मुझ पर बिगड़ जाओ तो क्या हो? देवीसिंह ने बहुतेरा कहा कि ऐसा नहीं हो सकता; परन्तु—

सुनकर बार-बार बात वही उसकी
वृद्ध वीर ठाकुर को क्रोध कुछ आ गया,
लाली दौड़ आई सौम्य, शांत गौर-गात्र में
बदन गंभीर हुआ, किन्तु रहे मौन वे।
बोले फिर भूप, "देवीसिंहजी, कहा नहीं
यदि तुम रूठ जाओ मुझ से तो क्या करो?"
"पृथ्वीनाथ मैं जो रूठ जाऊँ" कहा वीर ने
"जोधपुर की तो फिर बात ही क्या? वह तो
रहता है मेरी कटारी की पर्तली में ही
मैं यों नवकोटी मारवाड़ को उलट दूँ"—
कहते हुए यों ढाल सामने जो रखी थी
बायें हाथ से उन्होंने उलटी पटक दी

—मैथिलीशरण गुप्त (विकट भट)

यहाँ भूप आलंबन विभाव है और उसकी यह बातें कि देवीसिंहजी,, कहा नहीं, यदि तुम रूठ जाओ मुझसे तो क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करो'—उद्दीपन विभाव। देवीसिंह के चेहरे में लाली दौड़ना यह सात्विक अनुभाव है और उसका गंभीर होना, मौन रहना, बायें हाथ से ढाल का उलट देना, राजा को दिया हुआ उत्तर—ये अनुभाव हैं। राजा की बातों से देवीसिंह ने यह समझा कि वे अपने को मुझसे बड़ा समझ रहे हैं, तभी बार-बार पूछते हैं कि तुम मुझसे रूठ जाओ तो क्या करो? इस बात का असह्य होना—यह अमर्ष संचारी है। अतः विभाव, अनुभाव और संचारी से युक्त 'क्रोध' स्थायी में रौद्ररस की सिद्धि हुई है।

वीर रस

शत्रु का उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनों की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी पात्र के हृदय में उनको मिटाने के लिए जो 'उत्साह' उत्पन्न होता और क्रियाशील हो जाता है उसी के वर्णन से वीररस का स्रोत पाठक या श्रोता में उमड़ता है।

वीर चार प्रकार के माने जाते हैं, (१) युद्धवीर, दयावीर, दानवीर, और धर्मवीर। (इनके अतिरिक्त कुछ लोग सत्यवीर और कर्मवीर की भी कल्पना अलग करते हैं) अतः इनके वर्णन से वीर रस के भी चार प्रकार हो जाते हैं।

इस रस के चारों प्रकारों में
स्थायी भाव—'उत्साह' है

युद्धवीर में शत्रु-नाश का, दयावीर में दयापात्र के कष्ट-नाश या सहायता का, दानवीर में त्याग का, और धर्मवीर में अधर्म नाश एवं धर्म-संस्थापन का उत्साह होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(१) युद्धवीर में

आलंबन (विभाव)—शत्रु या जिसे जीतना हो वह होता है।

उद्दीपन (विभाव)—उसकी चेष्टाएँ, सेना, रण-वाद्य, सेना का कोलाहल, शत्रु या विपक्षी के प्रताप, उत्कर्ष आदि का श्रवण आदि हैं।

अनुभाव—बाँह फड़कना, अस्त्र-शस्त्र का प्रहार करना, अपने पराक्रम का कथन, युद्ध के विविध व्यापार—आक्रमण, भिड़न्त आदि हैं।

संचारी—वितर्क, स्मृति, धृति, रोमांच, हर्ष, गर्व, औत्सुक्य, उग्रता आदि हैं।

(२) दयावीर में

आलंबन (विभाव)—दीन, आर्त्त, दुःख से व्याकुल व्यक्ति होता है।

उद्दीपन (विभाव)—उसका कराहना, रोना-चिल्लाना, दुःख-कथन, प्रार्थना, दुष्टों का उसके साथ दुर्व्यवहार आदि हैं।

अनुभाव—मीठे शब्द, आश्वासन, दुःख दूर करने की चेष्टाएँ आदि हैं।

संचारी—पुलक, चंचलता, धृति, उत्कंठा आदि हैं।

(३) दानवीर में

आलंबन (विभाव)—दानपात्र, याचक आदि हैं।

उद्दीपन (विभाव)—दानपात्र की सत्पात्रता, अपने कर्त्तव्य का ज्ञान, यश या नाम की इच्छा, तीर्थ-स्थान, साधुसमागम आदि हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अनुभाव—दानपात्र और याचक का सम्मान, चेहरे पर मुस्कराहट, अपनी शक्ति के अनुसार जी खोलकर दान देना, उदारता-प्रदर्शन आदि हैं।

संचारी—हर्ष, धैर्य, स्मरण आदि हैं।

(४) धर्मवीर में

आलंबन (विभाव)—वेद-शास्त्र के वचनों पर विश्वास, धर्म के प्रति निष्ठा आदि हैं।

उद्दीपन (विभाव)—धर्म-ग्रंथों का पठन या श्रवण, गुरु के उपदेश, धर्म-कार्य से उपलब्ध साधुवाद, धर्म-कार्य का फल आदि हैं।

अनुभाव—धर्मानुकूल आचरण, धर्म-रक्षा और अधर्म-नाश के उपाय आदि हैं।

संचारी—हर्ष, धैर्य, क्षमा आदि हैं।

इन चारों प्रकार के वीरों में, साहित्य में, युद्धवीर की ही प्रधानता है। अतः यहाँ स्थल-संकोच के कारण केवल उसी का उदाहरण दिया जाता है।

सौमित्रि को घननाद का रव अल्प भी न सहा गया,
निज शत्रु को देखे बिना उनसे तनिक न रहा गया,
रघुवीर से आदेश ले युद्धार्थ वे सजने लगे,
रणवाद्य भी निर्घोष करके धूम से बजने लगे,
सानन्द लड़ने के लिए तैयार जल्दी हो गये,
उठने लगे उनके हृदय में युद्ध-भाव नये नये।

—रूपनारायण पाण्डेय (त्रेता के दो वीर)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसमें घननाद—आलंबन है, उसका 'रव' (गर्जन), रणवाद्य का धूम-धाम से निर्घोष—उद्दीपन हैं; सौमित्रि (लक्ष्मण) का युद्ध के लिए तैयार होना, (युद्धार्थ सजना) अनुभाव है; 'घननाद का रव अल्प भी न सहना'—में अमर्ष, 'युद्धार्थ सजना और जल्दी तैयार होना'—में औत्सुक्य तथा 'सानन्द लड़ने के लिए तैयार होना'—में हर्ष संचारी है। इन विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से स्थायी 'उत्साह' वीर-रस का संचार करने में समर्थ हुआ।

भयानक-रस

किसी भय-प्रद वस्तु का वर्णन, उससे भयभीत व्यक्ति की चेष्टा, वाणी आदि का उल्लेख, जिससे भय की स्थिरता होती है, भयानक रस को उत्पन्न करता है।

इस रस का

स्थायी भाव—'भय' है।

आलंबन(विभाव)—कोई भयानक वस्तु(जैसे सिंहादि जन्तु, बढ़ी हुई नदी,किसी जंगल या गाँव में लगी हुई आग,सुनसान जंगल आदि), चोर, डाकू, बलवान शत्रु आदि हैं।

उद्दीपन (विभाव)—भयंकर दृश्य,जीव आदि की चेष्टाएँ,उनके कार्य,उनकी आहट,चर्चा आदि, ऊँची उठने वाली लहरें, भयप्रद लपटें, नीरवता, जन- शून्यता, आदि हैं।

अनुभाव—कंप, स्वेद, रोमांच, वैवर्ण्य, स्वर-भंग, पलायन, मूर्च्छा, इधर उधर ताकना, भौचक्का हो जाना आदि हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संचारी—संभ्रम, आवेग, भास, शंका, दैन्य, चिन्ता, मृत्यु आदि हैं।

नीचे भयानक रस का उदाहरण दिया जाता है:—

एक दिन श्रीकृष्ण गायें चराते समय दोपहर में जंगल में विश्राम कर रहे थे कि वे अचानक भयंकर चीख सुनकर चौंक पड़े और सामने देखा कि—

प्रवाहिता उद्धत तीव्र वायु से,
विघूर्णिता हो लपटें समुत्थिता।
नितान्त ही थीं बनती भयंकरी,
प्रचंड दावा प्रलयंकरी समा॥
अपार पक्षी पशु त्रस्त हो महा,
स-व्यग्रता थे सब ओर भागते।
नितान्त हो भीत सरीसृपादि भी,
बने महाव्याकुल हो पला रहे॥
पला रहे थे उसको विलोक के,
असंख्य प्राणी वन में इतस्ततः।
गिरे हुए थे महि में अचेत हो,
समीप के गोप स-धेनु-मण्डली॥

—हरिऔध (प्रिय-प्रवास)

यहाँ वन, और दावाग्नि आलंबन विभाव हैं; विघूर्णिता (चक्कर खाती हुई) ऊँची उठती हुई (समुत्थिता) लपटें—उद्दीपन विभाव हैं। पशु, पक्षी, सरीसृपादि, असंख्य प्राणी आदि का इतस्ततः भागना, गिरना—ये अनुभाव हैं। 'व्यग्रता से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भागना'—में आवेग, 'अचेत होकर गिरना'—में मूर्च्छा, 'महात्रस्त होना'—में त्रास-संचारी हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी की सहायता से 'स्थायी भय' पुष्ट होकर 'भयानक रस' हुआ।

वीभत्स रस

घृणा उत्पन्न करने वाली वस्तुओं जैसे, पीव, हड्डी, चर्बी, मांस, इन सब के सड़ने से उत्पन्न दुर्गन्ध आदि के वर्णन से हृदय में जो ग्लानि होती है उसी से वीभत्स रस का जन्म होता है।

इस रस में भी केवल आलंबनों का वर्णन यथेष्ट हुआ करता है; नाक सिकोड़ना, थूकना आदि आश्रय के अनुभावों का या संचारियों का वर्णन आवश्यक नहीं होता।

वीभत्स रस का—

स्थायी भाव—जुगुप्सा वा घृणा है; जैसे अघोरी, दुर्गन्ध-युक्त मुर्दा आदि।

आलंबन (विभाव)—घृणास्पद सभी व्यक्ति या वस्तुएँ हैं।

उद्दीपन (विभाव)—उनकी दुर्गन्धि, चेष्टाएँ, उनमें कीड़ों का पड़ना, उन पर मक्खियों का भिनभिनाना आदि हैं।

अनुभाव—नाक सिकोड़ना, थूकना, मुँह फेर लेना, आँख मींचना, रोमांच आदि हैं।

संचारी—मूर्च्छा, मोह, आवेग, अपस्मार, व्याधि आदि हैं।

नीचे वीभत्स रस का एक उद्धरण दिया जाता है:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहुँ सुलगत कोउ चिता, कहूँ कोउ जाति बुझाई।
एक लगाई जाति, एक की राख बहाई॥
बिबिध रंग की उठति ज्वाल, दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरबी सौं चटचटाति, कहुँ दह दह दहकति॥
कहुँ सृगाल कोउ मृतक-अंग पर घात लगावत।
कहुँ कोउ सव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत॥
जहँ तहँ मज्जा, माँस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे॥
लखत भूप[१] यह साज मनहिं मन करत गुनावन।
'पर्यो हाय! आजन्म करन यह कर्म घिनावन'॥

—रत्नाकर (हरिश्चन्द्र)

यहाँ स्मशान की भूमि आलंबन विभाव है, चिता का जलना, बुझना, दुर्गन्ध से युक्त लपट, चरबी से चटचटाना, मुर्दा की ओर सियार का ताकना, उस पर गिद्ध का चोंच मारना, फैली हुई मज्जा, मांस, रक्त आदि—ये सब उद्दीपन विभाव हैं। 'पर्यो हाय! आजन्म करन यह कर्म घिनावन'—राजा (हरिश्चन्द्र) का यह कथन—अनुभाव है। इस कथन से जो विषाद सूचित होता है वही (विषाद) संचारी है। इस तरह विभाव, अनुभाव और संचारी से स्थायी 'जुगुप्सा' (घृणा) की पुष्टि हुई और यहाँ 'वीभत्स रस' हुआ।

१—राजा हरिश्चन्द्र से आशय हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अद्भुत रस

किसी असाधारण वस्तु को देखकर हमारे हृदय में एक विशेष प्रकार का कुतूहल होता है, हम निर्माता के विषय में सोचते-सोचते मुग्ध हो जाते हैं। यही 'आश्चर्य' का भाव किसी वर्णन में होने से उसमें 'अद्भुत रस' का संचार होता है।

प्रायः इस रस में भी आलंबन का ही वर्णन पर्याप्त होता है, आश्रय के अनुभाव आदि के वर्णन की आवश्यकता नहीं होती।

अद्भुत रस का

स्थायी भाव—विस्मय या आश्चर्य होता है।

आलंबन (विभाव)—अलौकिक वस्तु, असंभावित व्यापार, असाधारण या लोकोत्तर कार्य-कलाप, विचित्र दृश्य, आश्चर्यजनक व्यक्ति आदि होते हैं।

उद्दीपन (विभाव)—इनका देखना या वर्णन सुनना, इनकी महिमा का निरूपण आदि होते हैं।

अनुभाव—मुँह खोलकर रह जाना, दाँतों तले उँगली दबाना, दाँतों तले जीभ दबाना, रोंगटे खड़े होना, आँखें फाड़ कर देखते रह जाना, स्वर-भंग, स्वेद, स्तंभ आदि होते हैं।

संचारी—वितर्क, भ्रांति, हर्ष, आवेग आदि होते हैं।

नीचे अद्भुत रस के उदाहरण दिये जाते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(क) नटवर, है अनुपम तव माया !
सकल चराचर एक सूत्र में तूने बाँध नचाया
षट् ऋतु, सरस, सूर्य, शशि, तारे, भू, गिरि, विपिन बनाया
नीले-नीले रुचिर गगन में कैसा रास रचाया
कुसुमित वलित ललित लतिकाएँ, सुफल कलित द्रुम छाया
रंग-रंग के देख विहंगम, अंग-अंग हरषाया
जलचर, थलचर, नभचर नाना किसने रूप दिखाया
तेरी माया, तू ही जाने मुनि-जन-मन अकुलाया

—गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि'

इस कविता में ईश्वर की रची हुई सृष्टि—आलंबन विभाव है, उसके विविध पदार्थ—ऋतु, सूर्य, चंद्र, तारे, लताएँ, पेड़, पक्षी आदि—उद्दीपन हैं। इन्हीं सब को देखकर कवि के मन में आश्चर्य का भाव उद्दीप्त होता है। (जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है) आलंबन और उद्दीपन का यह वर्णन मात्र अद्भुत रस का संचार करने में समर्थ हुआ।

(ख) एक बार जननी[1] अन्हवाए, करि सिंगार पलना पौढ़ाए।
निज कुल इष्ट देव भगवाना, पूजा-हेतु कीन्ह असनाना।
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा, आपु गई जहँ पाक बनावा।
बहुरि मातु[1] तहँवा चलि आई, भोजन करत देखि सुत जाई।
गइ जननी सिसु पहँ भयभीता, देखा बाल तहाँ पुनि सूता।
बहुरि आइ देखा सुत सोई, हृदय कंप मन धीर न होई।
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा, मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा।

१. कौशल्या से अभिप्राय है। (कौशल्या ने बालक राम को स्नान कराया)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देखि राम जननी अकुलानी, प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।
देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड
रोम-रोम प्रति लागे, कोटि-कोटि ब्रह्मंड
+ + + +
तन पुलकित मुख वचन न आवा, नयन मूँदि चरनहि सिरनावा।
—तुलसी (रामचरित मानस)

यहाँ बालक राम आलंबन है, उनका पालने पर सोते हुए, और पूजा-गृह में नैवेद्य खाते हुए—दिखाई पड़ना, उनके मुख में करोड़ों ब्रह्माण्डों का दिखाई पड़ना—ये उद्दीपन विभाव हैं। कौशल्या का भयभीत होना, तन पुलकित (शरीर का रोमांचित) होना, मुख से वचन न निकलना, आँखों का मूँदना, चरणों में सिर झुकाना—ये सब अनुभाव हैं। 'भयभीता'—में 'भय', 'हृदय कंप'—में 'कंप', 'मतिभ्रम मोर कि'—में भ्रान्ति, 'अकुलानी'—में 'त्रास', 'मुख वचन न आवा' में 'जड़ता'—संचारी-भाव हैं। इस प्रकार यहाँ विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से स्थायी आश्चर्य पुष्ट हुआ और इसमें 'अद्भुत रस' सिद्ध हुआ।

शान्त रस

संसार की असारता, दुनियाँ की चीज़ों की नश्वरता तथा परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होने से चित्त को ऐसी शांति मिलती है जो संसार के विविध सुख के विषयों के सेवन से कभी नहीं मिला करती। इसी प्रकार की शांति का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पाठक या श्रोता के हृदय में 'शान्त रस' की उद्भावना करता है।

शान्त रस का--

स्थायी भाव--निर्वेद या संसार के विषयों से जी का हटना या उदासीन होना, होता है, ।

आलंबन (विभाव)--परमार्थ होता है।

उद्दीपन (विभाव)--ऋषियों के आश्रम, तीर्थ-स्थान, महात्माओं का सत्संग, उनके उपदेश, रमणीय एकान्त स्थान, शास्त्रानुशीलन, शास्त्रों का श्रवण आदि होते हैं।

अनुभाव--रोमांच, पुलक, अश्रु-विसर्जन आदि होते हैं।

संचारी--धृति, मति, हर्ष, निर्वेद, स्मरण, विबोध आदि होते हैं।

नीचे शान्त रस का उदाहरण दिया जाता है:--

मन पछितैहै अवसर बीते
दुर्लभ देह पाइ हरि-पद भजु, करम बचन अरु ही ते।
सहस बाहु[1] दस-बदन[2] आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते[3]।
सुत-बनितादि जान स्वारथ-रत, न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर, तू न तजै अब ही ते।

---

१. सहस्रार्जुन; इसके हज़ार भुजाएँ थीं। इसने अपनी शक्ति के अभिमानवश यमदग्नि ऋषि को मार डाला; इस पर उनके पुत्र परशुराम ने इसका वध किया। २. दशमुख, रावण। ३. खाली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते ।
बुझै न काम-अगिनि[1] 'तुलसी' कहुँ विषय-भोग बहु घी ते ।
—तुलसी (विनय पत्रिका)

यहाँ सहस्त्रार्जुन, रावण आदि (बड़े प्रतापी) राजाओं तक के काल से न बचने, स्त्री पुत्र आदि के स्वार्थ-रत होने आदि का ज्ञान आलंबन विभाव है; दुर्लभ नर-देह पाकर भी उसे भगवद्‌भजन में न लगाना—उद्दीपन है; आश्रय (यहाँ कवि स्वयं है) का अपने मन को समझाना—अनुभाव है । 'सांसारिक संबंधी तुझे अंत में त्याग देंगे ही, इससे तुम उन्हें अभी से क्यों नहीं त्याग 'देते'—में 'मति' और 'जागु जड़' में 'विबोध' संचारी है। अतः यहाँ विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से स्थायी 'निर्वेद' के पुष्ट होने पर 'शान्त रस' हुआ ।

वात्सल्य रस

ऊपर जिन नौ रसों का परिचय दिया जा चुका है वे साहित्य के सभी आचार्यों को मान्य हैं। कुछ लोग उनके अतिरिक्त एक और रस वात्सल्य, भी मानते हैं। छोटे-छोटे बच्चों का सौन्दर्य, उनकी तोतली बोली, चेष्टाएँ, उनके कार्य-कलाप आदि को देखकर बरबस मन उनकी ओर खिंच जाता है । फलतः हृदय में उनके प्रति जो स्नेह उत्पन्न होता है उसी से 'वात्सल्य रस' की निष्पत्ति होती है ।

१. कामनाओं वासनाओं की आग ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वात्सल्य के दो पक्ष होते हैं; (१) संयोग और (२) वियोग। जब बालकों की ऐसी बातों का वर्णन होता है जो उनके पिता, माता आदि के पास उपस्थित रहने के काल से संबंध रखती हैं, तब संयोग वात्सल्य होता है; इसके विपरीत, जब बालकों के माता पिता आदि से अलग हो जाने पर उनकी या उनके कारण माँ-बाप की दशा का वर्णन होता है तब वियोग वात्सल्य होता है।

वात्सल्य रस का

स्थायी भाव—अपत्य (सन्तान) स्नेह होता है।

आलंबन (विभाव)—बालक या शिशु होता है।

उद्दीपन (विभाव)—उसकी चेष्टाएँ—जैसे तोतली बोली, गिरते-पड़ते चलना, हठ करना आदि—उसकी शूरता, विद्या, उसकी चीजें, उसके कार्य इत्यादि होते हैं।

अनुभाव—हँसना; पुलकित होना, तिनके तोड़ना, एकटक देखना, चूमना, गोद में लेना, पालने में झुलाना, बातें कराना, खेलना, रोना, विलाप करना, आह भरना आदि हैं।

संचारी—हर्ष आवेग, जड़ता, मोह, शंका, चिन्ता, विषाद, गर्व, उन्माद, स्मृति, औत्सुक्य आदि हैं।

नीचे वात्सल्य के क्रमशः संयोग और वियोग दोनों प्रकारों के उदाहरण दिये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(१) नेकु[१] विलोकि धौं रघुबरनि
बाल-भूषन-बसन, तन सुंदर रुचिर रज भरनि
परसपर खेलनि अजिर,[१] उठि चलनि, गिरि गिरि परनि
झुकनि, झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि
तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मन हरनि
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे[२] ढरनि
भरति प्रमुदित अँक* सैंतति पैंत[३] जनु दुहुँ करनि

यहाँ पर रघुबर (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये चारों भाई) आलंबन विभाव हैं; उनके भूषण, वस्त्र, धूल से धूसरित सुंदर शरीर तथा उनका आपस में खेलना, उठकर चलना, परन्तु बार-बार गिर पड़ना, झुककर झाँकना, अपनी परछाईं को देखकर (उसे दूसरा बालक समझकर उससे) किलकारी मारना, नाचना, लड़ना, तोतले वचन बोलना, मोहिनी दृष्टि से देखना—ये सब उद्दीपन विभाव हैं। आश्रय (कौशल्या का) उन्हें अंक में भर लेना (गोद में उठा लेना)—अनुभाव है। प्रमुदित—में हर्ष संचारी है। इस तरह विभाव, अनुभाव और संचारी से पुष्ट स्थायी 'अपत्य प्रेम' वात्सल्य रस की सिद्धि करने में समर्थ हुआ।

१. आँगन। २. चौसर के खेल के लिए हाथीदाँत या हड्डी के बने हुए चौ-पहल टुकड़े। सुढर पासे ढरनि—अर्थात् भाग्य अनुकूल होना। ३. दाँव में रखा हुआ द्रव्य। *मूल पाठ यों है—"लेति भरि भरि अंक........" इसमें 'संचारी' न होने से यह परिवर्तन करके इसे 'रस' के सभी अंगों से युक्त किया गया है। पूरे पद में रस के अन्य अंगों का अच्छा और स्पष्ट निदर्शन था; इसी से उसे यहाँ ग्रहण किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(श्रीकृष्ण के गोकुल से मथुरा चले जाने पर उनके वियोग से व्याकुल यशोदा की उक्ति)

(२) प्रिय पति, वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है ?
दुख-जलनिधि-डूबी का सहारा कहाँ है ?
पल-पल जिसके मैं पंथ को देखती हूँ,
निश-दिन जिसके ही ध्यान में हूँ बिताती।
मुखरित करता जो सद्म को था शुकों-सा,
कलरव करता था जो खगों-सा वनों में,
सु-ध्वनित पिक-लौं जो वाटिका था बनाता,
वह बहु विध कंठों का विधाता कहाँ है ?
बन बन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों,
शुक भर भर आँखें गेह को देखता है,
सुधि कर जिसकी है सारिका नित्य रोती,
वह निधि मृदुता का मंजु मोती कहाँ है ?
गृह-गृह अकुलाती गोप की पत्नियाँ हैं,
पथ पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो,
जिस कुँवर बिना मैं हो रही हूँ अधीरा,
वह खनि सुषमा का स्वच्छ हीरा कहाँ है ?
हा शोभा के सदन सम ! हा रूप लावण्य वाले !
हा बेटा ! हा हृदय-धन ! हा नैन तारे हमारे !
हा जीऊँगी न अब, पर है वेदना एक होती—
तेरा प्यारा बदन मरती बार मैंने न देखा।

यहाँ बेटा, प्राण-प्यारा (अर्थात् श्रीकृष्ण)—आलंबन है; श्रीकृष्ण के मधुर-शब्दों से रहित, सुनसान मकान, जंगल में खिन्न गायें, आँखों में आँसू भरे हुए तोते का घर को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देखना, सारिका (मैना) का रोना, व्याकुल गोपियों का घर-घर फिरना, उन्मना (उदास) गोपों का मार्ग में चलना--ये सब उद्दीपन विभाव हैं। ('मैं' सर्वनाम से अभिप्रेत) यशोदा का कृष्ण के आगमन का मार्ग देखना, 'हा शोभा के सदन·······'इत्यादि शब्दों के द्वारा अपनी व्यथा को प्रकट करना---ये अनुभाव हैं। 'ध्यान में बिताना'---में चिन्ता, शून्य, कृष्ण के शब्द विहीन घर, व्याकुल पक्षी, गाय, गोप, गोपी, आदि को व्याकुल देखकर श्रीकृष्ण का स्मरण आने--में 'स्मृति', 'हा जीऊँगी न अब'---में 'शंका'---ये संचारी भाव हैं। इस तरह, विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से स्थायीभाव 'वियोग वात्सल्य' पुष्ट हुआ और इसमें वात्सल्य रस हुआ।

रसों का पारस्परिक सम्बन्ध

रसों का विरोध तीन तरह से माना जाता है (१) कोई रस तो ऐसे हैं जो एक ही 'आलंबन' में होने से विरुद्ध होते हैं। (२) कोई ऐसे होते हैं जो एक ही 'आश्रय' में होने से विरुद्ध होते हैं। और (३) कोई एक-दूसरे के पीछे बिना व्यवधान के आने से विरुद्ध होते हैं। वीर और शृंगार एक आलंबन होने पर विरुद्ध होते हैं। इसी तरह एक आलंबन में हास्य, रौद्र और वीभत्स रस के साथ संभोग शृंगार का तथा वीर, करुण, रौद्र और भयानक के साथ विप्रलंभ शृंगार का विरोध होता है।

वीर और भयानक रसों का एक आश्रय में समावेश करना निषिद्ध है। कारण, निर्भय और निडर उत्साही महापुरुष वीर होता है। यदि उसमें भय आ जाय तो वह वीर कैसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रह सकता है ? शांत और श्रृंगार रस नैरंतर्य से, एक के बाद ही दूसरे के आने से, विरोधी हैं; अर्थात् शांत और श्रृंगार का एक ही सिलसिले में वर्णन होना ठीक नहीं, उनके बीच में किसी अन्य रस का समावेश हो जाने से दोष नहीं रह जाता।

कुछ रस ऐसे भी हैं जो एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। (१) वीर रस का अद्भुत और रौद्र के साथ उक्त तीनों प्रकार (आलंबन, आश्रय और नैरंतर्य) में किसी तरह से भी विरोध नहीं है।

(२) श्रृंगार का अद्भुत के साथ, (३) भयानक का वीभत्स के साथ और (४) श्रृंगार का हास्य के साथ भी किसी तरह का विरोध नहीं है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विरोधी रसों के असाधारण अंगों के वर्णन में ही दोष होता है, उभय साधारण अंगों के वर्णन में नहीं।

नीचे लिखे अनुसार रस एक साथ नहीं रखे जा सकते:—

(१) श्रृंगार का करुण, वीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक रसों से विरोध है।
(२) हास्य का भयानक और करुण से विरोध है।
(३) करुण का हास्य और श्रृंगार से विरोध है।
(४) रौद्र का हास्य, श्रृंगार और भयानक से विरोध है।
(५) वीर का भयानक और शान्त से विरोध है।
(६) भयानक का श्रृंगार, वीर, रौद्र, हास्य, और शांत के साथ विरोध है।
(७) वीभत्स का श्रृंगार के साथ विरोध है।
(८) शांत का वीर, श्रृंगार, रौद्र, हास्य और भयानक के साथ विरोध है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रसात्मक उक्ति के और भेद

भाव और पूर्ण रस के अतिरिक्त, जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, रसात्मक उक्ति के ये और भी भेद होते हैं:— **रसाभास, भावाभास, भाव-शान्ति, भावोदय, भाव-संधि और भाव-शबलता।**

रसाभास

रसों के संबंध में यह जान लेना आवश्यक है कि आलंबन उद्दीपन आदि के विचार से उनके स्थायी भाव अनुचित न हों। किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति जो भाव रखना या प्रकट करना धर्म, सामाजिक-व्यवस्था या लोक-मर्यादा की दृष्टि से ठीक नहीं माना जाता उसका वर्णन अनुचित कहा जाता है। जैसे, पिता, गुरु या बड़ों पर क्रोध; गुरु-पत्नी, विमाता आदि पूज्य-भाव-सम्पन्न स्त्रियों पर प्रेम; बड़ों या सम्मानितों का हास्य आदि। इस प्रकार के अनौचित्य से पूर्ण किसी कविता में रस के विभाव, अनुभाव और संचारी भाव—इन तीनों अवयवों से युक्त व्यंजना होने पर भी 'रस' न मान कर 'रसाभास' समझा जायगा।

रस के तीनों अवयवों से युक्त रचना में भी कब 'रसाभास' माना जाता है—इसके कुछ प्रसंग नीचे लिखे जाते हैं—

(१) अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष या पुरुषों वा प्रति-नायक के प्रति नायिका का अनुराग होने पर; पुरुष का गुरु-पत्नी या अन्य सम्मान्य नारी से प्रेम होने पर, अथवा नायक या नायिका में से दोनों का पारस्परिक अनुराग न होकर किसी एक के ही दूसरे पर अनुरक्त होने पर अथवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नायक या नायिका में से किसी एक की अपने अनुरूप पात्र के बजाय नीच पात्र में रति होने पर—शृंगार-रसाभास होगा।

(२) गुरु, पिता, अग्रज आदि वृद्धजनों पर क्रोध होने पर रौद्र रसाभास होगा।

(३) नीच पुरुष में शान्ति की स्थिति होने पर शान्त रसाभास होगा।

(४) गुरु, या अन्य बड़ों के आलंबन होने पर हास्य रसाभास होगा।

(५) विरक्त में करुणा होने पर करुण रसाभास होगा।

(६) नीचपात्रस्थ उत्साह होने पर वीर रसाभास होगा।

(७) उत्तमपात्रस्थ भय होने पर भयानक रसाभास होगा।

(८) यज्ञ के पशु आदि में ग्लानि होने पर वीभत्स रसाभास होगा।

(९) जादूगर, ऐंद्रजालिक आदि में स्थित विस्मय होने पर अद्भुत रसाभास होगा।

भावाभास

जहाँ जो भाव प्रदर्शित न होना चाहिए, अर्थात् जहाँ भाव का वर्णन अनौचित्य पूर्ण हो या जहाँ भाव-प्रदर्शन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो, वहाँ भावाभास होता है। जैसे साधु में क्रोध, जगद्विजेता वीर में कायरता आदि।

यदि रस के सब अवयवों (विभाव, अनुभाव और संचारी) में से किसी एक के भी न होने के कारण पूर्ण रस न होकर 'भाव' ही रह गया हो और वह अनुचित भी हो तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसमें भी भावाभास होगा। शुद्ध रूप में रस या भाव न होने और उनके किसी विकार या दोष से युक्त होने के कारण उन्हें 'आभास' कहा जाता है।

भाव शान्ति

जब कुछ दिनों से चले आते हुए भाव का किसी कारण से एकबारगी दूर हो जाने का वर्णन किया जाय तब उसमें भाव-शान्ति होती है।

जैसे, जब गंगा को ब्रह्मा ने कमंडलु से छोड़ा तब

गंग कह्यो उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं,
निज तरंग बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं,
लै स-बेग-बिक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ,
ब्रह्म-लोक कौं बहुरि कंदुक इव आऊँ।

× × × ×

बिपुल बेग बल बिक्रम कैं ओजनि उमगाई,
हरहराति हरषाति संभु-सनमुख जब आई,
भई थकित छबि-थकित हेरि हर-रूप मनोहर,
भयो कोप कौ लोप ....

यहाँ गंगा के हृदय में पहले से स्थित क्रोध नामक भाव उनके शंकर को देखते ही एक दम लुप्त होने का वर्णन है। अतः यह भावशांति का उदाहरण है।

भावोदय

जहाँ किसी भाव के शान्त होते ही सहसा किसी दूसरे भाव के उदय होने का वर्णन होता है वहाँ भावोदय होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जैसे, ऊपर के वर्णन में ही—गंगा के कोप का लोप हो जाने पर;

(भयो कोप कौ लोप) चोप औरै उमगाई
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई

यहाँ गंगा के क्रोध का अन्त होते ही उनमें सहसा रति या प्रेम नामक भाव के उदय होने का वर्णन है। अतः यह भावोदय का उदाहरण है।

एक दूसरे उदाहरण द्वारा ये दोनों (भावशांति और भावोदय) और स्पष्ट किये जाते हैं:—

जब हल्दीघाटी के युद्ध में दो मुगल सैनिकों को एकाकी, घायल, राणा प्रताप का पीछा करते हुए उनके भाई शक्तसिंह ने देखा तब उसके हृदय से राणा प्रताप के प्रति जो चिरन्तन वैर-भाव था, और जिसके कारण वह अकबर से मिल गया था तथा अपने भाई प्रताप के विपक्षी, मुगल-दल में सम्मिलित होकर उन्हीं के विरुद्ध लड़ रहा था, वह एक दम दूर हो गया।.........

यहाँ भाव-शांति हुई।

.........शक्तसिंह से यह देखा न गया। उसके हृदय में भ्रातृ-प्रेम उमड़ आया और उसने मुगल सैनिकों का पीछा किया।

यहाँ भावोदय हुआ।

भाव-सन्धि

जहाँ दो भावों का संचार एक ही साथ वर्णन किया गया हो वहाँ भाव-सन्धि होती है। जैसे, जब अशोक वाटिका में सीता विरहाकुल थीं तब अशोक के पेड़ पर बैठे हुए हनुमान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ने राम की मुँदरी ऊपर से गिरायी, जो सीता के सामने गिरी।

तब देखी मुद्रिका मनोहर, राम नाम अंकित अति सुंदर।
चकित चितव मुँदरी पहिचानी, हरष विषाद हृदय अकुलानी॥

यहाँ सीता के हृदय में मुँदरी को देखते और उसके पहचानते ही (अपने प्रियतम की होने से) हर्ष; और (उनसे कैसे अलग हुई, क्या वे मारे गये—इस विचार से) विषाद एक साथ उत्पन्न हुए। अतः इस वर्णन में **भाव-संधि** है।

भाव-शवलता

जहाँ दो से अधिक भावों का एक साथ ही उदय होने का वर्णन किया गया हो वहाँ भावशवलता* होती है। जैसे,

जब ते कुँवर कान्ह रावरी कला-निधान
कान परी वाके कहूँ सु-जस-कहानी-सी;
तब हीं ते 'देव' देखी देवता-सी, हँसति-सी;
खीझति-सी, रीझति-सी, रूसति, रिसानी-सी;
छोही-सी, छली-सी, छोरि लीनी-सी, छकी-सी छीन
जकी-सी, टकी-सी, लागी थकी, थहरानी-सी;
बीधी-सी, बधी-सी, विष-बूड़ी-सी, विमोहित-सी,
बैठी वह बकति बिलोकति बिकरनी-सी।

इस वर्णन में श्रीकृष्ण की किसी प्रेमिका गोपी में जड़ता, मोह, चिन्ता, व्याधि, त्रास, उन्माद आदि अनेक भावों का एक साथ उत्पन्न होने का उल्लेख है। अतः इसमें भाव-शवलता है।

---

* शवल=चितकबरा; अतः भावशवलता = रंग बिरंगे, कई तरह के, भावों का सम्मिलन।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

५—गुण

गुण और उसके भेद

रस के बिना काव्य उच्च कोटि का नहीं माना जाता यह रस के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा। इसी से रस को काव्य की आत्मा कहा जाता है। और जिस प्रकार वीरता, उदारता, त्याग आदि गुणों से मनुष्य की आत्मा का उत्कर्ष प्रकट होता है उसी प्रकार माधुर्य ओज आदि गुणों से काव्य की आत्मा रस का। इसी से गुण को रस का धर्म माना जाता है। यहाँ धर्म से तात्पर्य 'धारण-कर्त्ता' से है। गुणों की व्यंजना वर्णों या अक्षरों से होती है, इससे यह न समझ बैठना चाहिए कि गुण वर्णों में होते हैं। जैसे वीरता, दया आदि गुण चेतन आत्मा के हैं, शरीर के नहीं, वैसे ही गुण रस में रहते हैं, वर्णों में नहीं। ये गुण सरस काव्य में ही माने जाते हैं, नीरस में नहीं। कारण, नीरस को तो काव्य ही नहीं मानते। अस्तु, गुण से युक्त काव्य सरस होगा ही। जिस भाँति किसी पुरुष के शरीर की गठन, उसकी चाल आदि को देखते ही उसकी वीरता की झलक मिलने लगती है, ठीक उसी भाँति कठोर या मधुर शब्द से युक्त रचना को सुनते ही ओज, माधुर्य आदि की प्रतीति होने लगती है। ऐसे गुण ओज, माधुर्य और प्रसाद—ये तीन माने गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किसी रचना में टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण) की अधिकता, अन्य वर्गों (क, च, त, प वर्गों) के पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे वर्णों के योग से बने संयुक्त शब्दों (जैसे रिच्छ, क्रुद्ध, आदि) की प्रचुरता; 'र' के संयोग (यथा, क्रुद्ध, वक्र, अर्थ आदि) से बने शब्दों और लंबे-लंबे समास वाले शब्दों के प्रयोग से ओज उत्पन्न होता है। वीर और रौद्ररस में इसका होना अनिवार्य है। वीभत्स और भयानक रस भी इस गुण से उत्कर्ष प्राप्त करते हैं। नीचे एक ऐसा छंद दिया जाता है जिसमें ओज गुण पाया जाता है:—

ओज

आयौ जुद्ध-भूमि में संनद्ध बरबीर क्रुद्ध,
रुद्ध-बुद्धि[1] ह्वै ह्वै रहे विरुद्ध दल वारे हैं।
कहै 'रत्नाकर' प्रभाकर-कराकर-से[2]
अविरल[3] धाये बिसिखाकर[4] करारे हैं॥
धीर भए ध्वस्त हस्त-लाघव[5] बिलोकि सबै,
भागे जात अस्त-व्यस्त बीरता बिसारे हैं।
बान लेत मंडत उमंडत न पेखि परै,
देखि परैं रुंड मुंड खंडित बगारे[6] हैं॥

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (जयद्रथवध)

१—किंकर्तव्य विमूढ़। २—सूर्य की किरणों के समूह के से। ३—लगातार। ४—वाणों का समूह। ५—वाण चलाने में हाथ की फुर्ती। ६— फैले हुए (रणस्थल में व्याप्त)।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ओज गुण के लिए आवश्यक उपर्युक्त प्रायः सब बातें इस छंद में पाई जाती हैं—संयुक्ताक्षर, टवर्ग के 'ड' की आवृत्ति और समास युक्त पद आदि।

माधुर्य

जिस गुण के कारण किसी रचना को पढ़ या सुनकर चित्त आनन्द में द्रवित हो जाय, पिघल-सा जाय; उसमें कठोरता, जोश अथवा विरक्ति न पैदा हो उसे माधुर्य कहते हैं। इस गुण के लिए आवश्यक है कि रचना में टवर्ग के सभी वर्ण 'र' के संयोग से बने शब्द और समास वाले वाक्यांश न हों, पाँचों वर्गों के अंतिम वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) भी न हों। दूसरे शब्दों में, ओज गुण के लिए जो बातें आवश्यक हैं वे सभी इस गुण के लिए अनावश्यक हैं। शृंगार, करुण और शांत रस में यह गुण होता है। नीचे लिखे हुए छंद में यह गुण पाया जाता है।

रहता था कबूतर मुग्ध सदा अनुराग के राग में मस्त हुआ
करती थी कपोती कभी यदि मान मनाता था पास जा व्यस्त हुआ
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने उतना वह वैसे समस्त हुआ
इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ

—रूपनारायण पाण्डेय (पराग)

प्रसाद

जिस गुण के कारण किसी रचना का अर्थ तुरंत समझ में आ जाय, उसका पूरा प्रभाव चित्त पर पड़ जाय उसे प्रसाद कहते हैं। इस गुण से युक्त रचना में सरल और आसानी से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समझे जा सकने वाले शब्द और वाक्य होने चाहिएँ। यह गुण वास्तव में सभी रसों में होना चाहिए। निम्नांकित कविता में प्रसाद गुण का होना स्पष्ट है:—

जो मैं नया ग्रंथ विलोकता हूँ, भाता मुझे सो नव मित्र-सा है
देखूँ उसे मैं नित बार-बार, मानों मिला मित्र मुझे पुराना
इच्छा न मेरी कुछ भी बनूँ मैं, कुबेर का भी जग में कुबेर
इच्छा मुझे एक यही सदा है, नये नये उत्तम ग्रंथ देखूँ

—गिरधरशर्मा 'नवरत्न' (पुस्तक प्रेम से)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

६. अलंकार-प्रकाश

अलंकार और काव्य में उसका स्थान

सुन्दरता को पसन्द करना मनुष्य का स्वभाव है। जिस तरह रहन सहन, खान-पान, वेशभूषा आदि में सुन्दरता लाना हमें प्रिय है उसी तरह किसी बात को भी सुन्दर शब्दों में सुन्दर ढंग से कहना रुचिकर है। इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे बीच कुरूपता पाई नहीं जाती, और न यह कि हम केवल सुन्दरता को ही सदैव आश्रय दिया करते हैं। परन्तु यदि कोई सुन्दर वस्तु (और बहुधा कुरूप भी) सजा दी जाय तो उसमें पहले से अधिक आकर्षण हो जाता है, पहले से अधिक वह नेत्रों को या जी को प्यारी लगने लगती है। इसीलिए गहनों या अन्य सजावट की वस्तुओं की आवश्यकता हुई। गहने या आभूषण के लिए संस्कृत में 'अलंकार' शब्द का प्रयोग होता है। अपने विचार अलंकृत या सजे हुए सुन्दर प्रकार से व्यक्त करने की रुचि, पढ़े लिखे लोगों में तो होती ही है, नित्य प्रति अपढ़ अथवा अशिक्षित लोगों तक में देखी जाती है। ऐसा करने से अभिव्यक्त विचार सुनने में अच्छे मालूम होते हैं और साथ ही अधिक प्रभावशाली भी होते हैं। दूसरे शब्दों में, अलंकारों से कथन की शोभा बढ़ जाती है। इसी दृष्टि से 'काव्य की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शोभा करने वाले धर्मों को अलंकार'[1] कहा जाता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि जब अलंकृत शब्द या अर्थ से पूर्ण ही कथन हो तभी किसी रचना को काव्य कहा जा सके। जो लोग समझते हैं कि ऐसा होने पर ही कवित्वपूर्ण रचना हो सकती है वे शरीर के बाहरी ठाटबाट को ही प्राण समझ बैठने के भ्रम में फँस जाते हैं। जिस प्रकार गहना या कपड़ा न पहनने पर भी शरीर की प्राकृतिक सुन्दरता तब तक बनी रहती है जब तक उसमें प्राण रहते हैं, उसी प्रकार अलंकार-विहीन कथन भी अपने प्राण—रस—से युक्त होने पर काव्य कहा जायगा। इसीलिए अलंकारों को 'काव्य का अस्थिर-धर्म'[2] कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि अलंकार से युक्त होना कविता के लिए अनिवार्य नहीं। यह बात नहीं कि चाहे कितनी ही सरल, भावपूर्ण और कल्पना-मयी उक्ति हो, यदि उसमें अलंकार नहीं तो वह 'कविता' नहीं कही जा सकती। इसके विपरीत अलंकारों को ही कविता के लिए सब कुछ मान लेने पर उसी तरह का अनर्थ होने की आशंका हो सकती है जिस तरह किसी काली कलूटी, बेढ़ंगी स्त्री को बढ़िया-बढ़िया रेशमी कपड़े और कीमती गहने पहना देने पर उसे 'सुन्दरी' समझ बैठने पर हो सकता है। अलंकारों के संबंध में इतना और जान लेना आवश्यक है

१. 'काव्य शोभाकरान् धर्मानलंकार प्रचक्षते' (काव्यादर्श २। १)

२. 'शोभा को बढ़ाने वाले रस भाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, वे बाजूबंद आदि (गहनों) की तरह अलंकार कहलाते हैं।' (साहित्य-दर्पण, १०।१)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि कुछ अलंकार तो ऐसे हैं जिनमें मुख के एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले शब्दों के जमघट से या अन्य ऐसे ही उपायों से एक विशेष प्रकार का क्षणिक कुतूहल उत्पन्न किया जाता है। ऐसे अलंकार अपेक्षाकृत महत्त्वहीन हैं। परन्तु जो अलंकार अर्थ को अधिक रोचक और सुन्दर ढंग से प्रकट करने में सहायता पहुँचाते हैं उनका संयोग पाकर कविता वैसे ही खिल उठती है जैसे फूले हुए सुन्दर फूलों को पाकर बगीचे की क्यारी। ऐसे ही अलंकारों का होना कविता के लिए आवश्यक है। अस्तु, अलंकारों को काव्य का सर्वस्व न मानकर उसके शब्द या अर्थ का अस्थिर धर्म अथवा उनका उत्कर्ष साधन करने वाला मानना अधिक उचित प्रतीत होता है।

इस प्रकार शब्द और अर्थ का अस्थिर धर्म मानने पर अलंकारों के दो मुख्य भेद हो जाते हैं।

अलंकार के भेद

(१) शब्द सम्बन्धी चमत्कार से युक्त, जिन्हें शब्दालंकार कहते हैं, और (२) अर्थ संबंधी विशेषता उत्पन्न करने वाले, जिन्हें अर्थालंकार कहते हैं। परन्तु (३) जहाँ शब्द और अर्थ दोनों में विशेषता हो वहाँ उभयालंकार* माना जाता है। इनके उदाहरण आगे यथा स्थल दिए जायँगे। अलंकारों की पूरी संख्या अभी तक न तो निश्चित हुई है और न हो सकती है, क्योंकि मनुष्य की बुद्धि का विकास कभी बंद नहीं हो सकता, और इसी से उसके द्वारा

* उभय = दोनों, अर्थात् शब्द और अर्थ (दोनों)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहे हुए वाक्यों के रूपों तथा नयी नयी कल्पनाओं की वृद्धि भी नहीं रुक सकती। साहित्य शास्त्रियों द्वारा अब तक जितने अलंकार माने जा चुके हैं उन सब का विवरण देना इस समय इष्ट नहीं; केवल मुख्य-मुख्य अलंकारों का समझाना ही ध्येय है।

शब्दालंकार

शब्दालंकार के मुख्य भेद

शब्दालंकारों में केवल विशेष शब्दों के कारण काव्य में सुन्दरता आती है; यदि उसके स्थान पर उनके ही अर्थ वाले दूसरे शब्द रख दिये जायँ तो वह सौंदर्य जाता रहता है। कहीं कुछ अक्षरों के कारण अलंकार हो सकता है और कहीं कुछ शब्दों या वाक्यों के कारण। इस दृष्टि से देखने पर शब्दालंकारों में प्रधान ये हैं—

अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तिवदाभास, पुनरुक्ति-प्रकाश, वीप्सा, श्लेष और वक्रोक्ति। इनमें से श्लेष और वक्रोक्ति की अलंकारता शब्द तथा अर्थ दोनों के कारण है। इससे, इनका विवेचन दोनों स्थानों पर ही होगा। इन सब का परिचय नीचे दिया जाता है:—

अनुप्रास

जब एक ही अक्षर या कई व्यंजन वर्ण एक वाक्य में एक से अधिक बार आवें तब अनुप्रास होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि व्यंजनों के बार-बार आने से ही यह अलंकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होता है, यह आवश्यक नहीं कि उनमें एक ही 'स्वर' का संयोग हो।[1] जैसे—कल-कल कोमल कुसुम कुंज पर मधु बरसाने वाला कौन ?" में 'क्' व्यंजन की आवृत्ति 'अ' 'ओ' 'उ' और 'औ' से युक्त होकर क्रमशः कल, कोमल, कुसुम, कुंज और कौन में हुई है। भिन्न स्वर होते हुए भी व्यंजन एक ही है, इसलिए इस उक्ति में अनुप्रास[2] अलंकार है। केवल स्वरों की समानता में विचित्रता नहीं होती। उसमें व्यंजनों की समता की भाँति चमत्कार नहीं होता। इससे केवल स्वरों की समता में व्यंजनों की समता की भाँति, अनुप्रास नहीं माना जाता।

अनुप्रास के संबंध में ध्यान में रखने की दूसरी बात यह है कि जिनकी आवृत्ति हो उन वर्णों का स्थान शब्दों में एक-ही होने से यह अलंकार होता है, अर्थात् एक-ही वर्ण भिन्न-भिन्न शब्दों का पहला, दूसरा, तीसरा अथवा अन्य अक्षर हो, तभी अनुप्रास होगा। जैसे, 'सर' [तालाब] और 'रस' में दोनों वर्ण 'र' और 'स' एक-से ही हैं, परन्तु पहले शब्द

---

१ व्यंजन सम वरु स्वर असम अनुप्रासऽलंकार (अलंकार मंजूषा)

२—अनुप्रास शब्द का अर्थ है : अनु (अनुगत) प्र (प्रकृष्ट, चमत्कार युक्त) आस (रखना) अर्थात् रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना का नाम अनुप्रास है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि रस के प्रतिकूल वर्णों की समता को अलंकार नहीं माना जाता। (सा० दर्पण परिच्छेद १४)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में 'स' और 'र' क्रमशः पहले और दूसरे स्थान पर हैं, किन्तु दूसरे शब्द में यही वर्ण क्रमशः दूसरे और पहले स्थान पर हैं। इसी प्रकार तम, मत ; हर, रह ; और राम, मरा ; में वर्ण साम्य होने पर भी अनुप्रास नहीं है। इस प्रकार एक-ही क्रम से शब्दों में इनका स्थान न होने से इन शब्दों में प्रयुक्त एक-ही-से वर्णों के होने पर भी अनुप्रास अलंकार नहीं है। उपर्युक्त 'कल-कल कोमल कुसुम कुंज पर मधु बरसाने वाला कौन' में 'क्' सभी शब्दों में 'प्रथम' वर्ण है, इससे इसमें अनुप्रास है।

अनुप्रास के भेद

अनुप्रास अलंकार के पाँच प्रकार[1] होते हैं; छेक, वृत्ति, श्रुति, अन्त्य और लाट। इनमें से पहले चार में शब्दों में वर्णों का बार-बार आना होता है और अन्तिम में वाक्य में शब्द बार-बार आते हैं। मुख के एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की आवृत्ति से श्रुत्यनुप्रास होता है और पद्य में, चरणान्त में समान वर्ण आने से अन्त्यानुप्रास। परन्तु अनुप्रासों में मुख्य छेक, वृत्ति और लाट होते हैं। इन्हीं का विशेष वर्णन यहाँ किया जायगा।

१—छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट, अरु अन्त्य—पाँच विस्तार (अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

छेकानुप्रास में एक वा अनेक वर्णों का दो वार प्रयोग होता है।

छेकानुप्रास[1]

जैसे—बनती है मुसकान तुम्हारी शीतल शशि की लेखा। इसमें शीतल और शशि में श का प्रयोग दो वार हुआ है। इन दोनों शब्दों में 'श' पहला अक्षर है। अपने ऊपर स्वयं डालकर तम की छाया। इसमें ऊपर और डालकर में 'र' दो बार आया है; यह दोनों शब्दों का अन्तिम अक्षर है। सुर और सुरभी के लिए ईश ने इस जग में अवतार लिया। इसमें सुर और सुरभी में 'सु' और 'र' दो वर्णों की आवृत्ति हुई है। ये वर्ण दोनों शब्दों के पहले और दूसरे अक्षर हैं। यहाँ भी छेकानुप्रास है। ज्योतिर्मयी विकसिता हसिता लता के। इसमें विकसिता और हसिता में सि और ता का प्रयोग दोनों शब्दों के अंत में दो बार हुआ है। इस कारण यहाँ भी छेकानुप्रास है।

छेकानुप्रास के कुछ और उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

१. क्यों सहे संसार हाहाकार
२. स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अंबर तल में
३. मीठे मनोरम स्वरों सँग वेणु नाना
४. भोगों को औ भुवि विभव को लोक की लालसा को
५. गिर गई मेरी छोटी कुटी
६. उतर तार गये बहु बीन के, मधुरता न रही मुरजादि में

१—छेक शब्द का अर्थ 'चतुर' होता है। इसके द्वारा चतुर लोग अपनी चतुरता दिखाते हैं, इससे यह नाम पड़ा।

वर्ण अनेक कि एक की, आवृत्ति एकै बार।
सो छेकानुप्रास है आदि अंत निरधार॥ (अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

७. भगवान के विभव की भव में विभूति भारत

८. श्यामल नीरधि कीर-मनोहर नीरद नीरज श्याम ललाम है

वृत्तियों[1] के अनुसार शब्दों में एक अथवा अनेक वर्णों की समता कई बार होने से वृत्ति-अनुप्रास (वृत्त्यनुप्रास) होता है। नीचे दिये हुए उदाहरणों से इस कथन के समझने में सहायता मिलेगी। 'चारु चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थल में' इसमें 'च' वर्ण की आवृत्ति तीन बार हुई है। इसमें वृत्त्यनुप्रास है। "लहरत लहर लहरिया[3] अजब वहार" इसमें ल, ह और र तीन वर्णों की आवृत्ति तीन बार हुई है। इसी प्रकार, "विवशता-वश वादक-वृन्द की गिर गया कर से करताल भी" इसमें 'व' की आवृत्ति चार बार हुई है।

वृत्त्यनुप्रास[2]

वृत्त्यनुप्रास के कुछ और उदाहरण नीचे दिये अवतरणों में मिल जायँगे:—

१—वर्णों की योजना को वृत्ति कहते हैं। वृत्तियाँ तीन मानी गई हैं; उपनागरिका (वैदर्भी) परुषा (गौरी) और कोमला (पांचाली) क्रमशः इन्हीं तीनों के द्वारा माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों की उत्पत्ति होती है। किस गुण के लिए किस प्रकार के अक्षरों शब्दों आदि, की आवश्यकता होती है—इसका विवेचन गुण वाले पिछले अध्याय में हो चुका है। अतः यहाँ फिर से उसका दोहराना उचित नहीं।

२—वर्ण अनेक कि एक की जहँ सरि कैयो बार।
सो है वृत्यनुप्रास जो, परै वृत्ति अनुसार ॥

३—एक प्रकार का बहुरंगी कपड़ा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१. बज रहे मृदु मंद मृदंग थे

२. विपिन बीच विहंगम वृन्द का कलनिनाद विवर्धित था हुआ

३. मान में न गान में न सुधा-रस पान में है
जल में न थल में न गिरि में गगन में

४. कंज-कलिका में नहीं सुषमा मयंक की है
कोमलता कंज की मयंक ने न पाई है।
चम्पक कली में न सुवर्ण की सुवर्णता है
चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है॥
रत्न की रुचिरता में मणि की मनोज्ञता में
एक दूसरे की प्रभा देती न दिखाई है।
सब की निकाई सुघराई मोददाई महा,
ललित लुनाई उस छवि में समाई है॥

५. यह शून्यता बन की बनी बेजोड़ पूरी शान्ति से
करुणा-कलित कैसी कला कमनीय कोमल कान्ति से

६. भूपाल पील्ह पलुये पलाए (पील्ह = फील, हाथी)

७. लला लुनाई ललना सलोली, विलोकती लोल विलोचनों से।

८. विहरति विविध विलास भरी जोबन के मद सनि
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनि ठनि
मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिरकति बन-कुंजन
चितवति रिझवति हँसति उसति मुसिक्याति हरति मन
(काश्मीर सुषमा)

९. कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में, कलिन कलीन किलकंत है ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहै पदमाकर परागन में पानहू में
पानन में पीक में पलासन पगंत है
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखो दीप दीपन में दीपत दिगंत है ।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगरो बसंत है ॥

१०. सास ससुर गुरु सजन सहाई, सुत सुंदर सुसील सुखदाई ।

उपर्युक्त छेक और वृत्ति अनुप्रास में जिन 'वर्णों' की आवृत्ति होती है, उनमें समता होती है,

लाटानुप्रास[1]

इससे वे सुनने में सुखद होते हैं । परन्तु ये वर्ण निरर्थक होते हैं । इसके विपरीत, लाट-अनुप्रास में ऐसे शब्द या वाक्य दुबारा आते हैं जिनका अर्थ तो एक ही होता है किन्तु अन्वय करने से तात्पर्य या अर्थ भिन्न हो जाता है । जैसे—

पराधीन जो जन, नहीं स्वर्ग, नरक ता हेतु
पराधीन जो जन नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु

इस दोहे में पहले और दूसरे चरण से तीसरे और चौथे चरण में शब्दों में कुछ भी भिन्नता नहीं है । उनके अर्थ भी एक-से ही हैं । परन्तु अन्वय करने से, जो अर्ध-विरामों के द्वारा ऊपर स्पष्ट किया गया है, दोनों पंक्तियों का अर्थ भिन्न होता है ।

पहली पंक्ति का अर्थ है—जो जन पराधीन है, ता हेतु

१ शब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहिं भेद (अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(उसके लिए) स्वर्ग नहीं, नरक (बना) है। दूसरी पंक्ति का अर्थ है—जो जन पराधीन नहीं है ता हेतु (उसके लिए) नरक (भी) स्वर्ग है, अर्थात् उसे नरक का वास भी (स्वतंत्र होने के कारण) स्वर्ग के सदृश (सुखद) है।

इसी तरह

औरन को जाँचे कहा जो जाँचे सिवराज :
औरन को जाँचे कहा, जो न जाँचे सिवराज

में दूसरी पंक्ति में 'जो' के बाद 'न' के आ जाने से और अन्वय के द्वारा पहली पंक्ति से भिन्न अर्थ होता है। इस दोहे का अर्थ यह है:—यदि शिवाजी से माँगा तो दूसरों से माँगने से क्या लाभ ? (कारण, शिवाजी इतना दे देंगे कि फिर दूसरों के सामने हाथ फैलाने की आवश्यकता ही न रह जायगी) और यदि शिवाजी से न माँगा तो दूसरों से माँगने से क्या लाभ ? (क्योंकि, शिवाजी के अतिरिक्त दूसरों से माँगने पर सदैव अपर्याप्त मिलने के कारण इच्छा पूरी होगी ही नहीं, इसी से उनसे माँगने से कोई लाभ नहीं।)

पूत सपूत तो का धन संचय ?
पूत कपूत तो का धन संचय ?

इसमें भी 'सपूत' और 'कपूत' के मेल से अन्वय द्वारा एक ही प्रकार के शब्दों के भिन्न अर्थ की प्राप्ति होती है। यदि पुत्र सपूत है तो धन संचय करने से कोई लाभ नहीं (वह अपने लिए खुद ही कमा लेगा) और यदि पुत्र कपूत है तो (भी) उसके लिए धन संचय करने से कोई लाभ नहीं (वह उसे नष्ट कर देगा ही)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नीचे लिखे उद्धरणों में भी लाटानुप्रास है। इनमें से हरेक उद्धरण में जो शब्द जरा मोटे आकार के हैं उन का अर्थ एक ही है; परन्तु भिन्न भिन्न शब्दों के साथ अन्वय होने से उनके अर्थ भिन्न हो जाते हैं।

१. वही **मनुष्य** है जो कि **मनुष्य** के लिए मरे
२. **लाल** विलोचन **लाल** पल, **लाल** हि जावक[1] भाल
रस-रंजित चित **लाल** अब बने बिहारी **लाल**
३. तीरथ व्रत साधन कहा, जो निसि दिन हरि नाम
तीरथ व्रत साधन कहा, जो न निसि दिन हरि नाम
४. नंद-चख-**चंद**, चंद-बंस-नभ-**चंद**, ब्रज-चंद-मुख-**चंद** पै अनेक **चंद** वारौं मैं
५. कह चुकी **प्रिय साधन** ईश का, कुँवर का **प्रिय साधन** है यही।

यमक[2]

लाटानुप्रास के वर्णन में बतलाया गया है कि उसमें शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति होती है, परन्तु उनका शब्दार्थ एक ही होता है अन्वय से पूरी उक्ति का अर्थ दूसरा हो जाता है। इसी से मिलता जुलता-सा, किन्तु वास्तव में भिन्न एक दूसरा अलंकार है, जिसमें शब्दों या वाक्यांशों की आवृत्ति एक से अधिक बार होती है, लेकिन उनके अर्थ सर्वत्र भिन्न होते हैं।[1]

१—महावर आल्ता।

२—"भिन्न अरथ फिरि फिरि जहाँ, कोई अच्छर वृन्द
आवत हैं—सो जमक की बरनत बुद्धि-बलन्द।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसे 'यमक' अलंकार कहते हैं। जहाँ एक ही रूप वाले दो या अधिक शब्द सार्थक होते हैं वहाँ 'यमक' में सुन्दरता रहती है। किन्तु जहाँ ऐसे शब्दों की आवृत्ति होती है जिनमें से कुछ दूसरे शब्दों के अंश मात्र होते हैं, स्वयं पूरे शब्द नहीं होते वहाँ वे केवल श्रवण-सुखद कुतूहल उत्पन्न करते हैं। ऐसे स्थलों में भी यमक होता है, पर वह निरर्थक होता है। उसमें उतनी सुन्दरता नहीं होती। उदाहरणार्थ—'कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय'[1] में 'कनक' शब्द के क्रमशः 'सोना' और 'धतूरा' इन दो अर्थों के होने के कारण यमक अलंकार का सौंदर्य देखा जाता है। इसके विपरीत 'सीतल चंदन चंद नहिं' में 'चंद' और 'नहि' के 'न' के मेल से 'चंदन' के लिए 'यमक' लाने के अभिप्राय से बनाया हुआ 'चंदन' शब्द निरर्थक है। इससे इस उक्ति में यमक अलंकार भले ही आ जाय, पर काव्य की सुन्दरता की वृद्धि नहीं होती। ('यमक' शब्द का अर्थ 'दो' होता है। इस अलंकार का यह नाम 'दो' शब्दों के एक आकार परन्तु 'दो' अर्थों के कारण पड़ा है।)

निम्नांकित पंक्तियों में 'यमक' के सार्थक, और निरर्थक अथवा अभंग और भंग[2] दोनों प्रकार देखे जायँगे।

जीवन-दायक हैं घन के सम, जीवन-जीवन में घनश्याम हैं

१—अर्थ—धतूरे में सोने से सौ गुना अधिक नशा होता है

२—भंग = टूटे हुए (शब्द) और अभंग = मिले हुए (शब्द)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ पहले 'जीवन' शब्द का अर्थ है 'जल[1]' और दूसरे एवं तीसरे का 'प्राण-प्राण' अर्थात् हरेक प्राण में। अतः इस पंक्ति का अर्थ होता है—घन (बादल) के समान जल (रूपी प्राण) देने वाले हैं और हरेक प्राण में—हरेक प्राणधारी में घनश्याम (श्रीकृष्ण) हैं। यमक के लिए 'जीवन' शब्द के दूसरे शब्द को तोड़ने की अवश्यकता न पड़ने से इस पंक्ति में 'अभंग पद यमक' है। साथ ही यह 'सार्थक यमक' भी है

भीषम भयानक पुकारयो रन-भूमि आनि
छाई छिति छत्रिन की गीति उठि जायगी।
कहैं 'रत्नाकर' रुधिर सों रुँधैगी धरा,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठि जायगी॥
जीत उठि जायगी अजीत पांडु-पूतन की
भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी।
कै तौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जायगी, कै
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जायगी[2]॥

१—यहाँ जीवन में 'श्लेष' से (जिसका विवेचन आगे किया जायगा) 'प्राण' भी अर्थ लिया जासकता है। तब इसमें दोहरा चमत्कार आ जायगा।

२—इस छंद का अर्थ यह है—भयंकर भीष्म ने रणस्थली पर आकर घोषित किया कि आज पृथ्वी मंडल पर व्याप्त क्षत्रियों की (वीर) गाथा नष्ट हो जायगी, पृथ्वी रक्त से सन जायगी और लोथों पर लोथों की दीवाल खड़ी हो जायगी (लोथों का ढेर जमा हो जायगा), अजेय पांडवों की विजय न रह जायगी और राजा दुर्योधन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस छंद में दूसरे और तीसरे चरणों में 'भीति उठि जायगी' इस वाक्यांश की आवृत्ति हुई है। इनके अर्थ क्रमशः "दीवाल (भित्ति) खड़ी हो (उठ) जायगी" और "भय दूर हो (उठ) जायगा" हैं। यह अभंग-पद यमक का अच्छा उदाहरण है। साथ ही तीसरे चरण में 'जीत' और 'अजीत'के 'जीत' में भंगपद तथा निरर्थक यमक भी है।

इसी प्रकार

पंचनि के देखत प्रपंच करि दूरि सबै
पंचनि कौ स्वत्व[2] पंचतत्त्व[3] मैं मिलैहौं मैं[1]

में दोनों 'पंचनि' का अर्थ क्रमशः 'पंचों,' (सब के) और पाँचों (पांडव) है। इस कारण इन शब्दों में अभंगपद तथा सार्थक यमक है। साथ ही 'प्रपंच' और 'पंचतत्व' 'पंच' की आवृत्ति से भंग पद या निरर्थक यमक भी है। 'मैं' में भी यमक है। पहला 'मैं' 'में' विभक्ति का व्रजभाषा के अनुसार रूप है और दूसरा 'मैं' उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम।

का भय भी दूर हो जायगा। आज या तो प्रेम मार्ग की मर्यादा (भक्ति की नीति) न रहेगी या हरि (श्रीकृष्ण की शस्त्र धारण न करने) की प्रतिज्ञा का विश्वास न रहेगा।

१—अर्थ–सब के देखते देखते (सब के सामने) मैं सब प्रपंच हटाकर पांडवों का अधिकार नष्ट कर दूँगा। २—अधिकार। ३—पंचतत्व—पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँचतत्व हैं। इनमें मिलाने का तात्पर्य नाश करना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यमक के कुछ और उदाहरण नीचे संकलित हैं:--

१. भारी-भीर[1]-भंजन प्रभंजन कौ पूत

(भंजन=नष्ट करने वाला । प्रभंजन = पवन, इस शब्द का अंश 'भंजन'—निरर्थक यमक का साधक है) ।

२. पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने बीर
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के

३. जब जब वै सुधि कीजियै तब तब सब सुधि जाहिं
आँखिनु आँखि लगी रहै, आँखैं लागति नाहिं

(सुधि = स्मरण; सुधि = होश, चेतनता । आँखिनु आँखि लगी रहै = आँख से आँख लगी रहती है, देखती रहती है, आँखैं लागति नाहिं = नींद नहीं आती) ।

४ वाके सीस हीतें ऐसी गंगधार बही जामें,
बही बही फिरी बही चित्र और गुपित्र की

(बही=बहती हुई । बही=वह पुस्तक जिसमें लेखा लिखा जाता है)

आँख लगती है तब आँख लगती ही नहीं,
प्यास रहती है लगी सजल नयन में ।

(आँख लगना—(१) किसी से प्रेम होना, (२) नींद आना)

६. एक दिन जाके जाये[2] सारो देस फूलि[3] उठ्यो
फूले राज-बंसी थाह फूल को लहै नहीं ॥
एक दिन फूल[4] धारे, फूलन की सेज सोए
फूल सम गात भार फूल को लहै नहीं ॥

---

१. विपत्ति । २. पैदा होने पर । ३. प्रसन्न हो उठा । ४. पुष्प ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक दिन मीठी मुसकान में झरत फूल[1]
फूलन के झूलन घरीक निबहे नहीं ।
जाके नेक ताके[2] मुरझाए फूल फूलि जाते
एक दिन वाके अहो फूल[3] हू रहे नहीं ॥

इस छन्द में चारों चरणों में 'फूल' का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है ।

७. हरिनी के नैनानि तें हरि नीके ये नैन

(हरिनी के = मृगी के; हरि नीके = हे हरि (कृष्ण), अच्छे हैं। यहाँ भंगपद यमक है ।

८. हौंतो पंच भूत तजिबे को तक्यो तोहि, पर
तै तो करयो मोंहि भल्यो भूतन को पति है ।

....

एक भव शूल आयो मेटिबे को तेरे कूल,
तो हि तौ त्रिशूल देत बार ना लगात है ।

(भूत = तत्व । भूत = प्रेत । शूल = कष्ट । शूल = नोक, काँटा)

९. निबल के बल केवल राम हैं

('बल के' का यमक, दोनों 'बल के' निरर्थक हैं ।)

१०. वह नित कलपाता[4] है मुझे कान्त होके
जिस बिन कल पाता[5] है न ही प्राण मेरा

---

१. फूल झड़ना(मुहावरा) = बड़ी मीठी बात मुँह से निकालना । २. देखने पर । ३. मृत शरीर के जलाने के बाद जलने से बची हुई हड्डियाँ । ४. व्याकुल करता । ५. चैन पाता ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

११. मचलते चलते ये जीव हैं दिबस में बस में रहते नहीं
विमलता मल तार हटा रही बिचरते चरते सुख से सभी

१२. परिणय समय मंडप तले संबंध-दृढ़ता हित अहा !
ध्रुव[1] देखने को वचन मुझसे नाथ, तुमने था कहा
पर विपुल व्रीड़ा-वंश[2] न उसका देखना मैं कह सकी
संगति हमारी क्या इसी से ध्रुव[3] न हा ! हा ! रह सकी ?

१३. जानकी देहु तो जान की खैर
न तो यह जानकी जानकी गाहक

१४. बचन-पालक बालक बाप के
सुन परे न परे जग आपके

१५. क्यों करहिं बिनय बिदेह
कियो बिदेह मूरति साँवरी

(बिदेह = जनक । बिदेह = जिसे अपनी देह के होने का ज्ञान न हो । मूरति साँवरी—इससे यहाँ राम से तात्पर्य है ।)

सूचना—

ऊपर छेक अनुप्रास, लाटानुप्रास और यमक का परिचय दिया जा चुका है। ये तीनों प्रायः मिलते-जुलते से हैं। इस लिए इनका भेद समझने के लिए स्मरण रखना चाहिए कि छेक अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति होती है, लाटानुप्रास में शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति होती है और उनका अर्थ एक ही होता है, तथा यमक में भी शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति होती है, पर उनका अर्थ भिन्न होता है।

---

१. ध्रुव तारा। २. अत्यन्त लज्जावश। ३. अटल, स्थिर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पुनरुक्तवदाभास[1]

यमक में एक ही रूप वाले कई शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों में आते हैं; परन्तु जब भिन्न-भिन्न रूप (जिनके स्वर और व्यंजन समान न हों) और साथ ही एक ही अर्थ वाले कई शब्द एक साथ आवें, तथा यह आभास होने लगे—जान पड़ने लगे—कि वे एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु वास्तव में ऐसे ढंग से प्रयुक्त न हुए हों तब पुनरुक्तवदाभास (पुनरुक्तिवत् [की तरह] आभास [असल में जो चीज हो न पर जान पड़े कि वही है] होना) अलंकार होता है।

तल मध्य अनल-स्फोट से भूकम्प होता है जहाँ,
होता विकम्पित-से नहीं क्या अचल भूधर भी वहाँ ?

साधारण तौर से देखने पर 'अचल' और 'भूधर' दोनों 'पहाड़' के पर्यायवाचक होने से इस छन्द में पुनरुक्ति[2]-सी मालूम पड़ती है। परन्तु विचार करने पर विदित होता है कि यहाँ 'अचल' का अर्थ 'जो चल न हो' अर्थात् 'स्थिर' है और 'भूधर' का पर्वत। अतः यहाँ पुनरुक्तवदाभास है।

अली भौंर गूँजन लगे होन लगे दल पात,
जहँ तहँ फूले रूख तरु, प्रिय प्रीतम किमि जात ?

इस दोहा में 'अली' (अलि) और 'भौंर' (भौंरा), 'दल' और 'पात', 'रूख' और 'तरु' एवं 'प्रिय' और 'प्रीतम' सरसरी

१—भासति है पुनरुक्ति सी, नहिं निदान पुनरुक्ति।
वदाभास पुनरुक्ति सो, भूषन बरनत जुक्ति ॥ (शिवराज भूषण)

२—पुनः (फिर) (कही हुई) उक्ति; दोहराई हुई बात।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निगाह से देखने पर एक ही अर्थ वाले शब्द जान पड़ते हैं। इससे पुनरुक्ति-सी जान पड़ने लगती है। परन्तु विचार करने पर विदित होता है कि इनका अर्थ भिन्न है। अस्तु इसमें पुनरुक्ति न होकर पुनरुक्तवदाभास है।

[अली = आली, सखी, पात = गिरना (पतन); रूख = रुक्ष, सूखा, प्रिय (विशेषण) और अलि = भौंरा, दल = पत्ते, तरु = पेड़, प्रीतम = प्रियतम, पति।]

नीचे दिये हुए अवतरणों में पुनरुक्तवदाभास के कुछ और उदाहरण मिलेंगे।

१. पुनि फिरि राम निकट सो गई
(पुनि = पुनः, फिर से। फिरि = लौट कर)

२. वंदनीय केहि के नहीं ते कविंद मतिमान
सरग गये हू काव्य-जस जिनको जगत जहान
(जगत = प्रकाशित होता है, जगमगाता है। जहान = संसार)

३. रक्त पुष्प मँगवाइए लाल, सुमन से अत्र अविलंब
(रक्त पुष्प = लाल फूल। लाल = प्रियतम, प्यारे; सुमन = अच्छे मन से, प्रसन्न चित्त से)

पुनरुक्ति प्रकाश[1]

उपर्युक्त 'पुनरुक्तवदाभास' में ऐसे शब्द आते हैं जिनका अर्थ समान-सा जान पड़ता है, परन्तु वास्तव में होता भिन्न है। किन्तु जहाँ एक ही शब्द दो या इससे अधिक बार आता है,

---

१—"एक शब्द बहु बार जहँ परै रुचिरता-अर्थ" (अलं० मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और ऐसा होने से ही अर्थ की रुचिरता बढ़ जाती है वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश होता है।

जो शस्त्र शत शत शत्रुओं के सहन करते थे कड़े
वे पार्थ ही इस शोक के आघात से तब गिर पड़े

उपर्युक्त अवतरण में 'शत' शब्द के दो बार आने से अर्थ की सुन्दरता बढ़ गई है। इसलिए यहाँ पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार है।

थीं ठौर ठौर विहार करती सुन्दरी सुर-नारियाँ

इसमें भी 'ठौर' की आवृत्ति से पुनरुक्ति प्रकाश है।

इस अलंकार के कुछ और उदाहरण नीचे उद्धृत पंक्तियों में मिलेंगे।

१. धीरे धीरे वहन करके तू उन्हीं को उड़ा ला
२. भीनी भीनी सुरभि सिगरे पुष्प की पोषिका-सी
३. सीधे सीधे वचन उनके सिक्त पीयूष, होंगे
४. छोटी छोटी सुलहर उठा क्रीड़ितों को नचाना
५. ऊँचे ऊँचे धवल गृह की पंक्तियों से प्रशोभी
६. घनश्याम-प्रभा लखिकै सजनी अँखियाँ सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं
७. बनि बनि बनि बनिता चलीं, गनि गनि गनि [illegible] देत पग।
धनि धनि धनि अँखियाँ सुछबि सनि सनि सनि सुख लेत

वीप्सा[1]

'पुनरुक्ति प्रकाश' के सदृश ही एक दूसरा अलंकार होता

१. "एक शब्द बहु बार जहँ हरषादिक तें होइ
ता कहँ विप्सा कहत हैं कवि कोविद सब कोई" (काव्य निर्णय)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। उसमें भी शब्द बार-बार आते हैं किन्तु वे आदर, उत्साह, आश्चर्य, शोक, घृणा आदि मन के विकारों को सूचित करने के लिए आते हैं। इनका प्रयोजन मनोभावों की तीव्रता प्रकट करना है, केवल भावों की सुन्दरता बढ़ाना नहीं। इसे वीप्सा अलंकार कहते हैं।

हा ! हा ! मैं हूँ मृतक बनती प्राण मेरा बचा दे

इसमें 'हा ! हा' शोक को प्रकट करने के लिए आए हैं। इससे यहाँ वीप्सा है।

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई

यहाँ 'राम कहत चलु' की आवृत्ति भक्ति का आवेग प्रकट करने के लिए हुई है। इस अलंकार के कुछ उदाहरण ये हैं:—

१. छिः ! छिः ! ऐसा न कहो।

२. राम ! राम ! ऐसा क्यों कहते हो ? क्या हम और तुम कोई शत्रु हैं !

३. हाय ! हाय ! उसे शत्रुओं ने बेतरह मारा है !

४. हे भगवन्, त्राहि माम्, त्राहि माम्।

५. अरे, मुझे बचाओ, बचाओ ! मैं मरा, मैं मरा।

६. हे जीवितेश, उठो, उठो, यह नींद कैसी घोर है !

७. हा ! हा ! न यों मनुजत्व को भी स्मरण रक्खा नीच ने

८. अब क्या रहा ! सर्वस्व ही हा ! हा ! हमारा गत हुआ

९. बिरमौ, बिरमौ, ताप कहो जनि, सुनन हेत बल नाहीं !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्लेष[1]

'यमक' के विषय में बतलाया जा चुका है कि उसमें एक ही शब्द कई बार प्रयुक्त होता है, परन्तु भिन्न-भिन्न अर्थों में। किन्तु जब एक शब्द एक ही बार प्रयुक्त हो और उसके दो या अधिक अर्थ निकलते हों तब श्लेष अलंकार होता है।

श्लेष शब्द का अर्थ 'चिपका हुआ' होता है। इस अलंकार के लिए प्रयोग किए गए शब्द में एक से अधिक अर्थ चिपके रहते हैं।

श्लेष अलंकार दो प्रकार का होता है:—(१) शब्दश्लेष, (२) अर्थश्लेष। शब्दश्लेष में एक शब्द के कई अर्थ होते हैं। यदि उसके स्थान पर उसका पर्याय-वाचक दूसरा शब्द रख दिया जाय तो श्लेष नहीं रहता; परन्तु अर्थश्लेष में शब्दों का एक ही अर्थ होता है जो दो या अधिक पक्षों में लागू होता है। और उनके पर्यायवाचक शब्दों के प्रयुक्त होने पर भी ये अर्थ बने रहते हैं। जैसे—

रावन सिर-सरोज-वनचारी
चलि रघुबीर सिलीमुख धारी[2]

[सिलीमुख = (१) बाण, (२) भौंरा]

इस छंद में सिलीमुख (शिलीमुख) शब्द के उपर्युक्त दो अर्थ होने के कारण ही चमत्कार है, यदि इसके बजाय 'वाण'

१. "श्लेष अलंकृति अर्थ बहु एक शब्द में होत" (भाषा-भूषण)

२. रावण के शिर रूपी कमलों के वन पर विचरण करनेवाली रामचन्द्रजी के वाणरूपी भौंरों की सेना चली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

या इसका अन्य पर्याय दिया जाय तो इस छंद का अर्थ सौंदर्य नष्ट हो जायगा।

भूषण सदृश उड़गन हुए, मुख-चंद्र-शोभा छा रही
विमलाम्बरा रजनी-वधू अभिसारिका-सी जा रही[1]

में बिमलाम्बरा [विमल+अम्बरा = वस्त्रवाली, आकाश वाली] शब्द के 'अम्बरा' अंश के दो अर्थ हैं, इसी कारण इस छंद में सुन्दरता आ सकी है। यदि 'अम्बरा' के स्थान पर 'वस्त्रा' या इसी अर्थ का अन्य दूसरा शब्द रख दें तो यह सुन्दरता न रहेगी।

नीचे लिखे अवतरण में 'बारे' (लड़कपन में; जलाने पर) और 'बढ़े' (बड़ा होने पर, बुझ जाने पर) के कारण सुन्दर शब्द-श्लेष है:—

जो रहीम गति दीप कै, कुल कपूत कै सोई ।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरे होई ॥

जैसा व्यंजना के प्रकरण में शाब्दी व्यंजना के संबंध में बतलाया जा चुका है, श्लेष अलंकार तभी होगा जब किसी शब्द के दोनों अर्थों पर समान दृष्टि रखकर ही कवि ने उनका प्रयोग किया हो।

ऊपर दिये हुए उदाहरणों में रावण के सिरों को सरोज

1—जिसके तारागण ही गहनों के समान हैं, और जिसके चन्द्रमा-रूपी मुख की शोभा फैल रही है, ऐसी निर्मल आकाश वाली (आकाश रूपी निर्मल वस्त्र धारण किए हुए) रात रूपी रमणी अभिसारिका के सदृश जा रही थी। (इसमें 'रूपक अलंकार' भी है)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहना या रजनी को वधू कहना सार्थक होगा जब 'शिलीमुख' और अंबरा ये श्लिष्ट शब्द आगे प्रयुक्त हों।

शब्द-श्लेष के कुछ और उदाहरण अधोलिखित अवतरणों में मिलेंगे:—

१. विपुल धन अनेकों रत्न हो साथ लाये,
प्रियतम, बतला दो लाल मेरा कहाँ है?

लाल = पुत्र [कृष्ण से तात्पर्य है], लाल-मणि

२. साधु चरित सुभ सरिस कपासू,
निरस बिसद गुनमय फल जासू

३. सेवा-अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पियासे जाते पथ के

(गुन = रस्सी, गुण)

४. रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून
पानी गये न ऊबरैं मोती मानुस चून

'पानी' = मोती के प्रसंग में 'आब', कान्ति, चमक; मानुस के प्रसंग में आत्म-गौरव; चून (चूना) के प्रसंग में जल)

वक्रोक्ति

जहाँ किसी उक्ति में, वक्ता के अभिप्राय से दूसरे अर्थ की कल्पना की जाय वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। (१) कभी कभी एक शब्द के, श्लेष से कई अर्थ होने के कारण श्रोता दूसरा अर्थ निकालता है और (२) कभी कंठ की ध्वनि या अन्य किसी प्रकार से कहे हुए वाक्य का दूसरा अर्थ निकलता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पहले प्रकार को श्लेष वक्रोक्ति कहते हैं और दूसरे प्रकार को काकुवक्रोक्ति [काकु = व्यंग्य या टेढ़ा वचन]

एक दिन लक्ष्मी पार्वती के यहाँ गईं। उन्होंने द्वार पर से ही पूछा:—

कहाँ भिखारी गयो यहाँ ते, करै जो तुव प्रतिपालो ?

[‘भिखारी’ से लक्ष्मी का तात्पर्य शंकर से था, क्योंकि तुलसीदास के शब्दों में, ‘भीख माँगि भव खाहिं’ (भव = शंकर), परन्तु पार्वती ने भिखारी का साधारण अर्थ भिक्षुक लिया, और लक्ष्मी के पति विष्णु के जीवन की भिक्षा माँगने से संबंध रखनेवाली एक अत्यन्त प्रसिद्ध घटना को लक्ष्य करके बोलीं—]

“होगो वहाँ जाय किन देखो बलि पै परो कसालो।”[१]

यहाँ वक्ता (लक्ष्मी) का भिखारी से जो अभिप्राय था श्रोता (पार्वती) ने श्लेष से उससे भिन्न दूसरा अर्थ लिया। इससे श्लेष वक्रोक्ति है।

इसी गिरिजा-सिन्धुजा सम्वाद की इन पंक्तियों में भी शब्द श्लेष से वक्रोक्ति है:—

(लक्ष्मी) कहाँ भिखारी गयो यहाँ ते करै जो तुव प्रतिपालो ?
(गिरिजा) होगी वहाँ जाय किन देखो बलि पै परो कसालो
(लक्ष्मी) गरल-अहारी कहाँ बताओ लेहु आप सों लेखो ?
(गिरिजा) बार-बार पूछति का मोसों जाय पूतना देखो !

१. कष्ट (माँगने के कारण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(लक्ष्मी) बहुरि पियारी मोहि बताओ भुजंग-नाह पर कीनो ?
(गिरिजा) देखहु जाय शेष-शय्या पर जहाँ शयन तिन कीनो।
(लक्ष्मी) कहाँ पशुपति मोहिं दिखाओ ?
(गिरिजा) गोकुल डगर पधारो !
(लक्ष्मी) शैलपती कहँ ?
(गिरिजा) कर में धारे गोबरधनहिं निहारो ।

श्री रामचन्द्र सीता को अपने साथ वन यह कह कर नहीं लिवा जाना चाहते थे कि वे सुकुमारी थीं, इससे बनवास के योग्य नहीं थीं। इस पर सीता जो कहती हैं—

मैं सुकुमारि ! नाथ बन जोगू !

(अर्थात् में सुकुमारी हूँ और आप मानों सुकुमार नहीं, कठोर हैं और इससे वनवास के योग्य हैं ! यह ठीक नहीं, आप भी तो मेरी ही भाँति सुकुमार हैं, यदि आप वनवास कर सकते हैं, तो मैं भी कर सकती हूँ।) यहाँ ध्वनि से 'सुकुमारि' और 'बनजोगू' के दूसरे अर्थ हैं, इससे इस कथन में काकुवक्रोक्ति है।

नीचे लिखे अवतरणों में क्रमशः श्लेष और काकु-वक्रोक्ति के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं:—

श्लेष—(१) गौरवशालिनी प्यारी हमारी सदा तुम ही इक इष्ट रहो

इसके गौरवशालिनी के समास को तोड़कर गौः (गाय) अवशा और अलिनि (भ्रमरी) के द्वारा इसे श्लेषयुक्त पद मानकर इसका उत्तर यों दिया गया।

हौं न गऊ, नहिं हौं अवशा, अलिनी हूँ नहीं, अस काहे कहो ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२. (श्रीकृष्ण राधा के यहाँ गये। उनसे उन्होंने द्वार खोलने को कहा। राधा ने पूछा)

को तुम हो इत आये कहाँ ?

(श्रीकृष्ण ने कहा) घनश्याम

(राधा ने श्लेष से घनश्याम का अर्थ 'बादल' लगाकर कहा)

हो तो कितहूँ बरसो

(अर्थात् बादल का यहाँ क्या काम ? यदि बादल हो तो जाकर कहीं जल बरसाओ)

काकु—१. (किसी दुष्ट को देखकर कोई बोला)

जानते नहीं आप पूरे महात्मा हैं !

(महात्मा से आशय दुरात्मा से है)

२. आप कलियुगी हरिश्चन्द्र हैं !

(कलियुगी हरिश्चन्द्र पूरे झूठे)

३. (रावण ने अंगद से अपनी भुजाओं की शक्ति की डींग मारी, इस पर वह बोला)

सो भुज बल राख्यो उर घाली

जीतेउ सहसबाहु, बलि, बाली

[जीतेउ = (काकु से) हारेउ, अर्थात् हारे थे]

४. राम लखन सिय कहुँ बन दीन्हा पठै अमरपुर पति हित कीन्हा
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू, दीन्हेहु प्रजहि सोक संतापू
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू, कीन्ह कैकई सब कर काजू

[यहाँ हित से तात्पर्य है अहित; सुख से दुख, सुजसु से अयश, सुराजू से कुराज्य एवं काजू से अकाज-हानि]

५. मोरि बात विधि हि बनाई, प्रजा पाँच कत करहुँ सहाई

[यहाँ बनाई से 'बिगाड़ी का आशय है]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थालंकार

अर्थालंकारों का श्रेणी विभाग

शब्दालंकारों के विषय में यह समझाया जा चुका है कि यदि उन शब्दों को जिनके कारण किसी कथन में शब्द-चमत्कार के द्वारा अलंकृति होती है हटाकर उनके स्थान पर उनके पर्याय-वाचक दूसरे शब्द रख दिये जायँ तो उस उक्ति का शाब्दिक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। परन्तु हम इस प्रकार की ऊपरी तड़क-भड़क से सदैव तृप्त नहीं होते। इसीलिए हमें ऐसे अलंकारों की भी आवश्यकता पड़ी जिनका चमत्कार किसी वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के ऊपर निर्भर न रहे, प्रत्युत उनके हट जाने पर भी बना रहे। अर्थात् उसमें आये हुए शब्दों के अर्थ में रमणीयता या मनोहरता हो। अर्थालंकारों के द्वारा हमारी बुद्धि पर असर पड़ता है। हम अपने किसी मित्र को बहुत दिन से नहीं देखते और फल यह होता है कि उसे प्रायः भूल जाते हैं। एक दिन बाजार में घूमते समय अकस्मात् हमें एक ऐसा आदमी सामने से आता दिखाई पड़ता है जिसका चेहरा और चलने का ढंग ठीक हमारे उसी मित्र का-सा होता है। उसे देखते ही हमें झट अपने उस मित्र की याद आ जाती है। इसी तरह हम किसी नौजवान को ऐंठते हुए मस्तानी चाल से जाते हुए देखते हैं, हमारे मुँह से निकल पड़ता है—"यह तो साँड की तरह चल रहा है।" इन उदाहरणों में, बाजार में मिले हुए आदमी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में हमारे पहले के परिचित मित्र से कुछ बातों में समता है, और नौजवान की चाल में साँड की चाल से। अस्तु, इस समता या सादृश्य की भावना से इन अवसरों पर हम प्रभावित होते हैं।

इसी प्रकार किसी समय किसी स्थान पर हम एक क्षत्रिय को देखते हैं,उसे कुछ लोग घेरे खड़े , और वह उनकी खुशामद कर रहा है, कह रहा है, "मुझे अब की बार क्षमा करो, अब मैं तुमसे नहीं ऐंठूँगा।" उसकी यह दशा देखकर हमें यह सोचकर दुःख होता है कि 'यह उन्हीं लोगों का वंशज है, जिनके भय से, पुराने जमाने में, लोग थर-थर काँपते थे। उफ़ ! शेर का पुत्र सियार हुआ !' ऐसे ही, हमारे पड़ोस में एक सदाचारी, विद्वान् महाशय रहते हैं। हम सब उनका बहुत आदर करते हैं। परन्तु जब देखते हैं कि उनका बेटा 'काला अक्षर भैंस बराबर' समझता है, दुराचारी है, बुरे लोगों की संगति में दिन-रात रहता है, तब उसमें उसके पिता से ज़मीन-आसमान का अन्तर देखकर अफसोस होता है, और यही कहते बनता है कि 'हंस के वंश में कौआ पैदा हुआ !' इन दोनों दृष्टान्तों में हम क्षत्रिय और विद्वान् दोनों की संतति में अपने पूर्वजों के गुणों से विपरीत दुर्गुणों को देखकर प्रभावित हुए। यहाँ विरोध की भावना ने हमारे हृदय पर असर डाला। ऐसे ही हम अपने एक मित्र को एक विशेष प्रकार की छड़ी लेकर नित्य प्रातःकाल घूमने जाते देखते हैं। कुछ दिनों के पश्चात् दूर से उसका चेहरा देखते ही हमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ध्यान आ जाता है कि उसके हाथ में वह छड़ी होगी। इसी प्रकार, हम देखते हैं कि दो मित्र सदैव नियमित रूप से स्कूल में पहला घंटा बजते ही आगे-पीछे अपनी कक्षा के कमरे में घुसा करते हैं। वे बड़े नियमित हैं। कुछ समय के बाद हम उन्हें इस तरह आते देखने में अभ्यस्त से हो जाते हैं, और तब किसी समय एक को कमरे में घुसता देखते ही तुरन्त समझ लेते हैं कि उसके पीछे उसका दूसरा साथी आ रहा है। इन दोनों उदाहरणों में हमें अपने मित्र की सूरत देखते ही उनकी छड़ी की अथवा उन दो मित्रों में से एक को देखते ही दूसरे की याद आ जाती है। यहाँ सान्निध्य (पास-पास रहने) की भावना हमें प्रभावित करती है। इसी तरह के मास्तिष्किक संसर्गों से उत्पन्न भाव हमारे हृदय में विचारों को पैदा करते हैं।

यह सत्य है कि उक्तियों के व्यक्त होने के प्रकारों का अन्त नहीं हो सकता। यह नहीं कहा जा सकता है कि अलंकार संयुक्त वाक्यों की अभिव्यक्ति जितने ढंगों से अब-तक हो चुकी है, और जो साहित्यग्रन्थों में संरक्षित है, उसके अलावा अब नये प्रकार से चमत्कार-पूर्ण वाक्यों की अव-तारणा हो ही नहीं सकती। ज्ञान-वृद्धि और बुद्धि-विकास के फल-स्वरूप ऐसे नवीन सौन्दर्य से समन्वित कथन हो सकते हैं, और होते हैं जिनको ऐसे अलंकारों के अन्तर्गत नहीं मान सकते जिनका नामकरण अबतक के अलंकार-ग्रन्थों में हुआ है। फिर भी संस्कृत के साहित्य-शास्त्रियों ने कुछ मनो-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैज्ञानिक सादृश्यों के आधार पर अलंकारों की अगणित संख्या को श्रेणीबद्ध करने की चेष्टा की है। जिन जिन अलंकारों में मूलतः एक-सी बातें पायी जाती हैं उनको एक वर्ग के अन्तर्गत माना है।

ऊपर कुछ उदाहरणों के द्वारा इस प्रकार के बौद्धिक संसर्गों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। उनके अतिरिक्त भी कई प्रकार के मास्तिष्किक संयोग हैं जिनसे हमारे विचार उत्पन्न होते हैं। इन सबको संक्षेप में बतलाते हुए इनमें से प्रत्येक से संबंध रखने वाले अलंकारों का नाम निर्देश करना अनुपयुक्त न होगा।

१. **साम्यक मूलक** में दो वस्तुओं में समता की भावना को सामने रखकर किसी उक्ति में चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। इसे सादृश्य या साधर्म्य मूलक भी कहते हैं।

अधिकांश अलंकार इस वर्ग के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस लिए इसके कुछ उपभेद भी समझते चलना चाहिए।

(अ) **अभेद प्रधान** में दो समान वस्तुएँ किसी प्रकार के भेद से रहित पूर्णतया एक-सी वर्णित होती हैं। रूपक, उल्लेख, संदेह, भ्रान्ति, अपन्हुति और परिणाम ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

(ब) **भेद-प्रधान** में दो वस्तुओं में समता स्थापित करते हुए भी भिन्नता रखी जाती है। प्रतीप, तुल्ययोगिता दृष्टान्त, निदर्शना, प्रतिवस्तूपमा, दीपक, दीपकावृत्ति, सहोक्ति, विनोक्ति और व्यतिरेक, ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(स) **भेदाभेद-प्रधान** में दो वस्तुओं में समता पूर्ण होने पर भी यह प्रकट किया जाता है कि वे एक दूसरे से भिन्न हैं। उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा और स्मरण—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

(द) **प्रतीति-प्रधान** में समता की प्रतीति (जानकारी) मात्र होती है (वास्तव में वह होती नहीं।) उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं। [इस भेद को अभेद-प्रधान का अंग ही समझना चाहिए]।

(व) **गम्य-प्रधान** में समता के भाव के साथ कुछ बातों की ध्वनि व्यंग्य के द्वारा होती है। अप्रस्तुत प्रशंसा व्याजस्तुति, व्याज निंदा, आक्षेप, पर्यायोक्ति और प्रस्तुतांकुर—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

(र) **अर्थ-वैचित्र्य-प्रधान**—में समता के भाव के साथ ही शब्द या वाक्य के अर्थ में कुछ विचित्रता होती है। समासोक्ति, परिकर; परिकरांकुर, और श्लेष—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

२. **विरोध-मूलक** में दो वस्तुओं का कार्य और कारण में विच्छेद होने से आपस में विरोध प्रकट होता है। विरोधाभास, विभावना, असंगति, विषम, विचित्र, व्याघात, अत्यन्तातिशयोक्ति, अन्योन्य, और विशेषोक्ति—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

३. **शृंखला-मूलक** में दो या उससे अधिक पदार्थों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

क्रम से वर्णन होता है। और वे एक दूसरे से शृंखला (जंजीर) के समान बँधे होते हैं। कारणमाला, एकावली, मालादीपक और सार—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

४. **न्यायमूलक** में तर्क, लोक-प्रमाण या दृष्टान्त से युक्त वाक्य के द्वारा रोचकता उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार इस वर्ग के अन्तर्गत अलंकारों के तीन वर्ग हो जाते हैं।

(क) **तर्क-न्यायमूलक** में कारण, प्रमाण आदि देकर तर्क से (Logically) कुछ विशेषता प्रतिपादित की जाती है। काव्यलिंग, विकस्वर, प्रौढ़ोक्ति, छेकोक्ति, प्रतिषेध, विधि, हेतु, निरुक्ति, और अनुमान—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

(ख) **लोक-न्यायमूलक** में प्रचलित लोक-व्यवहार के प्रयोग से विशेषता उत्पन्न की जाती है। समाधि, प्रत्यनीक, सम, तद्गुण, पूर्वरूप, अनुगुण, अतद्गुण, मीलित, उन्मीलित, सामान्य, विशेषक—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

(ग) **वाक्य-न्यायमूलक** में वाक्यों के विशेष क्रम से रखने अथवा दो वाक्यों के विशेष प्रकार से स्थापित संबंध के कारण सुन्दरता आती है। यथासंख्य, पर्याय; परिसंख्या, समुच्चय, विकल्प, संभावना, काव्यर्थापत्ति, कारकदीपक, ललित, चित्र, और मिथ्याध्यवसिति—ये अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

५. **गूढ़ार्थ-प्रतीतिमूलक** या **वस्तुमूलक** में व्यंग्य से छिपाकर या उलटी बातें कही जाती हैं। मुद्रा, गूढ़ोत्तर, सूक्ष्म, विहित, व्याजोक्ति, गूढ़ोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, उदात्त, अत्युक्ति आदि अलंकार इसके अन्तर्गत हैं।

वर्णन एवं अवधारणा की सुगमता के लिए उपर्युक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत साम्य तथा विरोध सिद्धान्त के मुख्य-मुख्य और अधिक प्रचलित अलंकारों पर नीचे प्रकाश डाला जायगा। साथ ही अवशिष्ट वर्गों के भीतर आने वाले प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुछेक अलंकारों का भी 'अन्य संसर्ग मूलक' शीर्षक के अन्तर्गत परिचय दिया जायगा। पुस्तक का आकार न बढ़ने देने के उद्देश्य से ऊपर के श्रेणी विभाजन में उल्लिखित अलंकारों में से केवल उन्हीं का विवरण दिया जायगा, जो अधिक प्रयुक्त होते हैं।

साम्य-मूलक अर्थालंकार

उपमा[1]

साम्य मूलक अलंकारों में उपमा सब से प्रधान है। जब हम किसी वस्तु का वर्णन कर के किसी उससे अधिक प्रसिद्ध वस्तु से उसकी समानता करते हैं तब उपमा अलंकार होता है। 'राधा रति के समान सुन्दरी है'—इस उक्ति में हमें 'राधा' की किसी विशेषता का उल्लेख करना है। हमें उसकी सुन्दरता के

१—"रूप रंग गुण काहु को काहू के अनुसार
ताको 'उपमा' कहत हैं जे सुबुद्धि आगार" (अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विषय में कहना चाहते हैं। हम इसको बढ़ाकर कहने के लिए, अपनी सुन्दरता के लिए संसार या कम से कम साहित्य-संसार में प्रसिद्ध रति को चुनते हैं और राधा और उसके सौंदर्य को समान बतलाकर राधा की सुन्दरता की श्रेष्ठता प्रकट करते हैं। यह सुन्दरता 'राधा बहुत सुन्दरी है'—ऐसा कहने से वह उत्कर्ष न पाती जो हमारे उक्त कथन से पा सकी है। इस प्रकार की समता दो वस्तुओं के (१) रूप (२) रंग और (३) गुण[1] में की जाती है। इनमें से कम-से-कम एक में तो समता की जाती ही है, जब दो या तीनों बातों में समता हो जाती है तब वह बहुत अच्छी होती है।

('उपमा' शब्द का अर्थ है उप (समीप)+मा (मापना, तोलना) =समीप रखकर (दो पदार्थों का) मिलान करना। इसमें दो वस्तुएँ समानता द्वारा मिलाई जाती हैं।)

ऊपर 'राधा रति के समान सुन्दरी है'। यह वाक्य उपमा के उदाहरण की भाँति पेश किया जा चुका है। इसका विश्लेषण करने पर जाना जाता है कि इस वाक्य के चार अंग हैं—

उपमा के अंग

(१) राधा—मुख्य विषय, जिससे वर्ण्य-विषय की समता करनी है, (३) सुन्दरी—वह गुण जिसमें राधा और रति

१—रूप की समता का उदाहरण दिया जा चुका है। रंग की समता 'राधा के शरीर की कांति चाँदनी की तरह प्रकाशमान है'—इस वाक्य में है, और गुण की इसमें—'राधा सीता के समान पति-परायणा है'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

की बराबरी करनी है, और (४) समान—वह शब्द जिसके द्वारा उक्त समता प्रकट होती है।

इन चारों में से (१) जिसकी तुलना की जाय उसे उपमेय, (२) जिससे तुलना की जाय उसे उपमान, (३) जिस बात में तुलना की जाय उसे साधारण धर्म और (४) जिस शब्द के द्वारा तुलना प्रकट हो उसे वाचक कहते हैं।[1]

जब उपमा के ये चारों अंग मौजूद रहते हैं तब पूर्णोपमा होती है। और जब इनमें से कोई भी एक नहीं रहता तब लुप्तोपमा होती है। ऊपर दिया हुआ उदाहरण पूर्णोपमा का है। यदि, राधा रति के समान है—ऐसा हो तो साधारण धर्म सूचक 'सुन्दरी' की कमी के कारण यह लुप्तोपमा का उदाहरण हो जायगा।

उपमा के लिए कुछ आवश्यक बातें

केवल दो वस्तुओं की तुलना कर देने से उपमा अलंकार हो जाता हो—सो बात नहीं। इस अलंकार के लिए पहली आवश्यकता यह है कि दो भिन्न वस्तुओं में तुलना की जाय। 'राधा राधा के समान है', 'तुम सम तुम', 'भरत भरत

१—(क) जाको वर्णन कीजिए सो उपमेय प्रमान
(ख) जाकी समता दीजिए ताहि कहत उपमान (ललितललाम)
(ग) उपमेय रु उपमान में समता जेहि हित होय
सो साधारण धर्म हैं, कहत सयाने लोग
(घ) सो से सी, इव, तूल, लौं, सम, अरु सदृश समान
ज्यों, जैसे, इमि, सरिस, जिमि उपमा वाचक जान (अलंकार मंजूषा

Digitized by eGangotri

सम' आदि उदाहरणों में उपमा अलंकार इसलिए नहीं है कि इनमें उपमेय और उपमान दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति नहीं हैं। दूसरी आवश्यकता उपमा के लिए यह है कि उपमेय से उपमान उस बात में बढ़कर हो जिसमें दोनों की समता की जाय, और उसका बढ़कर होना लोक-प्रसिद्ध हो। राम की सारस के समान दो टाँगें हैं—इस वाक्य में 'सारस की टाँगें' पैरों के सुन्दर उपमान न होने से, उपमा का मानना ठीक न होगा। तीसरे उपमा के द्वारा केवल आश्चर्य उत्पन्न न किया जाय किन्तु कल्पना के द्वारा एक सुन्दर चित्र अंकित करने की चेष्टा की जाय। प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्य के लाल बिम्ब को देखकर केशवदास की भाँति, यह कहना कि 'वह ताजे खून से भरे हुए कालरूपी कापालिक के खप्पर के समान है' सूर्य-बिम्ब के सौंदर्य को नष्ट कर उसे वीभत्स बना देता है। ऐसी उपमा अनुचित होने से संगृहणीय नहीं।

नीचे पूर्णोपमा के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं:—

१. रघुवर-विशिख से सिन्धु सम सब सैन्य इससे व्यस्त है

(सैन्य—उपमेय। सिंधु—उपमान। सम—वाचक। व्यस्त-साधारण धर्म)

२. कटि के नीचे चिकुर जाल में उलझ रहा था बायाँ हाथ
खेल रहा हो ज्यों लहरों से लोल कमल भौंरों के साथ

(बायाँ हाथ—उपमेय। कमल—उपमान। ज्यों—वाचक। खेलना—साधारण धर्म)

३. परोपकारी जन-तुल्य सर्वदा, अशोक था शोक स-शोक मोचत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(अशोक–उपमेय । परोपकारी जन–उपमान । तुल्य–वाचक । शोक-मोचना–साधारण धर्म)

४. नील गगन सा शान्त हृदय था हो रहा

(हृदय–उपमेय । नील गगन–उपमान । सा–वाचक । शान्त–साधारण धर्म)

५. विदग्ध होके कण धूल-राशि का, तपे हुए लौह-कणों समान था

(धूलराशि का कण–उपमेय; लौह-कण–उपमान; विदग्ध होना–साधारण धर्म; समान—वाचक)

६. नवल सुन्दर श्याम शरीर की सजल नीरद सी कल कान्ति थी

७. मुख धर्म-विन्दु-मय ओस-भरा अंबुज-सा ।

८. कंधे ढककर कच छहर रहे थे उनके
रक्षक तक्षक से लहर रहे थे उनके

९. उसी तपस्वी से लंबे थे देवदारु दो चार खड़े

१०. बड़े बड़े नैननि तें आँसू भरि भरि ढरि,
गोरो-गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात

११. जनक-बचन छुए बिरवा लजारू के से,
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाय के

जैसा कह चुके हैं, उपमा के चारों अंगों में से किसी या किन्हीं के न होने पर लुप्तोपमा होती है ।

लुप्तोपमा **जो अंग लुप्त होता है उसको पहले रखकर लुप्तोपमा का पूरा नाम रखा जाता है । जैसे**

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपमेय लुप्त होने पर उपमेयलुप्तोपमा, वाचक लुप्त होने पर वाचक-लुप्तोपमा आदि। 'भोगी कुसुमायुध, योगी सा बना दृष्टिगत होता है'—इसमें 'कुसुमायुध'—उपमेय, 'योगी'—उपमान और 'सा'—वाचक है, किन्तु साधारण धर्म नहीं है, इससे यह धर्मलुप्तोपमा का अच्छा उदाहरण है। 'रति रमणीय मूर्ति राधा की'—इसमें 'राधा की मूर्ति'—उपमेय, 'रति'—उपमान और 'रमणीय' साधारण धर्म मौजूद हैं, किंतु 'सी' वाचक नहीं है। इससे इसमें वाचक-लुप्तोपमा है। इसी तरह 'कमल के समान सुन्दर' में 'कमल—उपमान, 'समान' वाचक, 'सुन्दर'—धर्म है, परन्तु उपमेय नहीं है, इससे यह उपमेय-लुप्तोपमा है। और 'हिरनी के से भोले नेत्र किसी के नहीं' में 'हिरनी'—उपमेय 'से'—वाचक, 'भोले नेत्र'—धर्म है, परन्तु 'किसी के नहीं' से उपमान का निषेध होने से 'उपमान' का अभाव विदित होता है। इससे यह उपमान-लुप्तोपमा मानी जाती है।

अन्तिम उदाहरण के संबंध में एक बात कहनी है। उपमान-लुप्तोपमा का यह उदाहरण अलंकार-ग्रंथों में दिये हुए इसके अन्य उदाहरणों के समान है; परन्तु यहाँ उपमा के अलंकार के आधारभूत नियम को ही धक्का पहुँचता है। इस अलंकार के लिए यह जरूरी है कि दो वस्तुओं की तुलना की जाय। यहाँ 'उपमान' का सर्वथा अभाव है, जो 'किसी के नहीं' से प्रकट होता है। हिरनी के नेत्रों के समान भी किसी के नेत्र होते—चाहे उनके सूचक शब्द इस वाक्य में उपमान की तरह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रयुक्त होते वा नहीं—तो उपमान की कल्पना की जा सकती जब उनका उपमान है ही नहीं, तब उसका लोप होना कैसा ? इसलिए उपमान लुप्तोपमा की कल्पना अनुचित जँचती है ।

लुप्तोपमाओं के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

(१) नीरवता सी शिला-चरण से टकराता फिरता पवमान (धर्म-लुप्ता)

(२) हुए हिम धवल जैसे बनकर पत्थर ठिठरे खड़े रहे (उपमेय-लुप्ता)

(३) तापस-बाला सी गंगा कल (धर्म-लुप्ता)

(४) अति दूर क्षितिज पर विटप-माल
लगती भू-रेखा-सी अराल (धर्म-लुप्ता)

(५) दो बाँह नदी के युगल के तीर,
फैले थे कोमल गाठित हीर (वाचक-लुप्ता)

(६) कलप बेलि जिमि बहुविधि लाली (उपमेय-लुप्ता)

मालोपमा

साधारणतया एक उपमेय की तुलना एक ही उपमान से की जाती है । परन्तु कभी कभी उसका उत्कर्ष और अधिक बढ़ाने के लिए उपमेय की समता के लिए एक साथ बहुत से उपमान लाये जाते हैं । ऐसा होने पर उपमाओं की माला-सी तैयार हो जाती है । इसे मालोपमा* कहते हैं । जैसे—"हिरनी से,

१. मालोपमा उपमेय इक ताको बहु उपमान
(जैसे) ऊख पियूख मयूख सो इक तुव वचन विधान (पद्माभरण)
अथवा—जहँ एक उपमेय कौ होत बहुत उपमान
तहाँ कहत—मालोपमा कवि 'मतिराम' सुजान (ललितललाम)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मीन-से, सुखंजन समान चारु अमल कमल-से विलोचन तुम्हारे हैं"—इस उदाहरण में लोचनों की समता हिरनी, मछली, खंजन और कमल—इन चार से एक साथ की गयी है। यहाँ एक उपमेय (नेत्र) के चार उपमान (हिरनी, मछली) खंजन, कमल) हैं। अस्तु, इसमें मालोपमा अलंकार है। इसी प्रकार—

बिना प्राण के जैसे गात
बिना चन्द्र के जैसे रात
बिना नीर के जैसे ताल
बिना स्वामि के वैसे बाल

इस उदाहरण में भी स्वामि-विहीना बाला (स्त्री) की समता (१) निर्जीव देह, (२) चन्द्र-विहीना (अँधेरी) रात और (३) जल-रहित (सूखे) तालाब से ही गयी है। एक उपमेय की समता तीन उपमानों से होने के कारण यहाँ भी मालोपमा है।

इन दोनों उदाहरणों में उपमेय और उपमानों का साधारण धर्म एक ही है। इससे, ऐसी मालोपमा एकधर्मा-मालोपमा कहलाती है। इसके विपरीत जब उपमेय के साधारण धर्म से उपमानों का साधारण धर्म भिन्न हो तब भिन्न-धर्मा मालोपमा होती है। जैसे—

खिली रहती है सदा वह कल कौमुदी सी
कमनीय कल्प-लतिका-सी मन भाई है।
ज्वाला-सी किसी को मणिमाला-सी किसी को
सुरबाला-सी किसी को वह देती दिखलाई है।

इसमें 'वह' (कोई 'छविमयी' स्त्री) उपमेय के 'कौमुदी'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'कल्प लतिका', 'ज्वाला', 'मणिमाला', सुरबाला'—ये उपमान हैं, इससे मालोपमा है। और इन सब उपमानों के साधारण धर्म भिन्न हैं, इससे यह भिन्न-धर्मा मालोपमा हुई।

इसी तरह नीचे लिखे अवतरणों में भिन्न-धर्मा मालोपमा है।

१.—(अ) शरत्काल के विमल जल की भाँति, दर्पण की स्वच्छता की भाँति, सती के प्रेम की भाँति उसका समस्त शरीर देदीप्यमान हो रहा था।

(ब) उत्तप्त कलेवर पर पीयूष-प्रवाह की भाँति, पश्चात्ताप-दग्ध हृदय पर करुणामय की अजस्र करुणधारा की भाँति, शाप-संतप्त हृदय पर दया की आशीर्वाद-लहरी की भाँति, सूर्यतप्त पृथ्वीमंडल पर नील नीरज-श्याम सघन घन की शीतल वारिधारा पतित होने लगी।

२. क्या कहें कि कैसी उसकी है कमनीय कान्ति
कुन्दन-सी, कुन्द-सी, या कंज की निकाई-सी
क्यों न प्राण उस पर प्रेम से निछावर हों
रहती खिली है सदा शरद-जुन्हाई-सी

३. यह सजीव सुवर्ण की प्रतिम नई
आप विधि के हाथ से ढाली गई
कनक लतिका-सी कमल-सी कोमला
धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला

४. कञ्चन-सा कान्तिमान कंज-सा सुकोमल है,
कोटि काम से भी कमनीय वह भारी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दीप्यमान दीपक-सी दिव्य-मेह की है द्युति
दामिनी की दीप्ति-जैसी जाति न निहारी है ।

... ...

५. किरन तुम क्यों बिखरी हो आज ! रँगी हो तुम किस के अनुराग ?
स्वर्ण सरसिज-किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु-पराग
धरा पर झुकी प्रार्थना-सदृश, मधुर मुरली-सी फिर भी मौन
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना-दूती-सी तुम कौन
अरुण शिशु के मुख पर सविलास सुनहली लट घुँघराली कांत
नाचती हो जैसे तुम कौन ? उषा के अँचल में श्रश्रांत ।
कोकनद मधु-धारा-सी तरल, विश्व में बहती हो किस ओर

... ...

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन, मिलाती हो उससे भूलोक ?

एक-धर्मा मालोपमा के भी निम्नांकित उदाहरण उसे स्पष्ट करने में सहायता पहुँचायेंगे:—

१. जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तन,
चँद बिनु जिमि जामिनी
तिमि अवध, तुलसीदास, प्रभु बिनु,
समुझ धौं जिय भामिनी

२. किया शत्रु का नाश उन्होंने, जैसे घन को प्रबल प्रभंजन
जैसे तम को प्रखर दिवाकर जैसे वन को विकट हुताशन

३. राम-कीर्ति चाँदनी-सी, गंगा जी की धारा-सी, सुच-
पला की चमक-सी सुशोभित अपार है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४. जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी
तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी

रसनोपमा[१] जब उपमेय और उपमानों की ऐसी माला हो कि जिसमें पहले कहा हुआ उपमेय क्रमशः उपमान होता जाय, अर्थात् पहला उपमेय दूसरे उपमेय का उपमान हो जाय और दूसरा उपमेय तीसरे का उपमान बन जाय, इसी तरह क्रम चलता जाय तब रसनोपमा अलंकार होता है । जैसे—

तुम्हारे वचनों के समान मधुर तुम्हारी मूर्ति है, मूर्ति के समान मधुर कीर्ति संसार में फैल रही है, और कीर्ति के समान ही तुम्हारी नीति जगतीतल पर व्याप्त हो रही है ।

इस उदाहरण में पहला उपमेय 'मूर्ति' आगे चल कर 'कीर्ति' का उपमान बनता है, फिर यही उपमेय 'कीर्ति', का और 'कीर्ति', 'नीति' का उपमान बन जाता है। इससे यहाँ रसनोपमा अलंकार है ।

इसके कुछ और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

१. मति-सी नति,[२] नति-सी बिनति,[३] बिनती-सी रति[४] चारु[५]
रति-सी गति, गति-सी भगति तो में पवन-कुमार

२. जैसे नमक जल में मिल जाता है, जल दूध में मिल जाता

---

१. जहाँ प्रथम उपमेय सों होत जात उपमान,
तहाँ कहत रसनोपमा कवि 'मतिराम' सुजान। (ललितललाम)

२. नम्रता। ३—विनय। ४—प्रीति। ५—सुन्दर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है, वैसे ही मेरी बुद्धि मेरे मन से मिल गई और मेरा मन मनमोहन श्रीकृष्ण से मिल गया।

२. बंस[1] सम बखत,[2] बखत सम ऊँचो मन,
मन सम कर,[3] कर सम करी[4] दान के।

उपमेयोपमा[5]

जिस उपमेय की समता जिस उपमान से की जाय, यदि वह उपमान तुरन्त ही उपमेय होकर पहले उपमेय को अपना उपमान बना ले तो उपमेयोपमा अलंकार होता है। जैसे,

"भरत राम-सम, राम भरत-सम उनके सदृश तीसरा है न" में भरत और राम परस्पर एक दूसरे के उपमेय और उपमान हैं। इस कारण इस कथन में उपमेयोपमा अलंकार है।

इसी प्रकार नीचे लिखे अवतरणों में भी उपमेयोपमा है:—

१. राम के समान शंभु, शंभु-सम राम हैं।

२. भू पर भाउ[6] भुवप्पति[7] कौ मन सो कर, औ कर सौ मन ऊँचो।

३. अंबर-गंग[8]-सो है सरजू, सरजू-सम गंग छटा नभ साजै
यों 'लछिराम' सु-देव-से सेवक, सेवक-से सुभ-देव समाजै

१—वंश, कुल। २—वक्त, समय, दिन (ऊँचा समय = अच्छे दिन) ३—(हाथ ऊँचा = दान के लिए ऊपर उठा हुआ) ४—हाथी

५—"उपमा लागै परस्पर सो उपमा-उपमेय" (अलंकार मंजूषा)

६—कविवर मतिराम के आश्रयदाता, बूँदी नरेश भाऊसिंह।

७—भूपति, राजा। ८—आकाश, गंगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोहैं सुरेस[1]-से राम-नरेस, सुरेसहु राम-नरेस-सो राजै
औध पुरी[2] अमरावती[3]-सी, अमरावती औध-पुरी-सी विराजै

४. रमणी-मुख शशि-तुल्य है, शशि रमणी-मुख-तुल्य।

५. दशरथ के सम जनक राज हैं, जनक सदृश दशरथ राजा।

अनन्वय या अनन्वयोपमा

जब तक उपमेय और उपमान दो अलग-अलग पदार्थ होंगे तब तक उनकी तुलना करने पर उपमा का ऊपर वर्णन किया हुआ कोई न कोई रूप होगा। परन्तु जब उपमेय की समता देने के लिए कोई उपमान होता ही नहीं और कहा जाता है कि 'उसके समान वही है' तब अनन्वय[4] अलंकार होता है। चूँकि अनन्वय में उपमेय की समता उसी (उपमेय से ही) की जाती है, इस लिए समता करने के कारण इसे अनन्वय-उपमा भी कहते हैं। जैसे—"तुम्हारे मुख की सुन्दरता के समान तुम्हारा ही मुख है।" इस वाक्य में 'मुख' का उपमान 'मुख' ही बतलाया गया। उसका उपमान कोई दूसरा नहीं कहा गया। इससे इसमें अनन्वय या अनन्वयोपमा अलंकार है।

इन उद्धरणों में भी अनन्वय है:—

१. भरत भरत सम जानि

२. भावसिंह कैसो भावसिंह भूमिपाल है—

३. भारत के सम भारत है

१—इन्द्र। २—अयोध्या। ३—इन्द्रपुरी।

४—"उपमेयहि उपमान जब कहत अनन्वय ताहि" (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४. आजु गरीब नेवाज मही-पर तो तो तुही सिवराज बिराजै
५. है रण रावण-राम को रावण-राम समान
६. उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहहिं
बल-बिनय-विद्या-सील-सोभा-सिंधु इन्हसे एइ अहहिं
७. उस काल दोनों में परस्पर युद्ध वह ऐसा हुआ
है योग्य बस कहना यही अद्‌भुत वही वैसा हुआ

प्रतीप

उपमा में उपमेय की समता उपमान से की जाती है। और इस प्रकार उसका उत्कर्ष दिखाया जाता है। परन्तु इस ढंग के अतिरिक्त तुलना के द्वारा ही उपमेय का उत्कर्ष बढ़ाने के और भी कई उपाय हैं। इन सब में 'प्रतीप'[१] होता है।

(१) कभी-कभी उपमान को उपमेय के समान कहा[२] जाता है। जैसे—वास्तव में उपमान के अनुसार कहना चाहिए, 'कमल के समान नेत्र', इसमें 'नेत्र' उपमेय है और 'कमल' उपमान। परन्तु इसको उलटकर 'नेत्र के समान कमल' कर देने से 'कमल' उपमेय हो गया और नेत्र 'उपमान'।

इसी प्रकार "जमुना का जल राम के शरीर की भाँति श्याम था"—इसमें भी उपमेय (राम का शरीर) और उपमान

१—'प्रतीप' शब्द का अर्थ 'उलटा' होता है। 'उपमा के अंगों के उलट फेर से अर्थात् उपमेय को उपमान के समान न कह कर, उलट कर, उपमान को उपमेय के समान कहने से इसका नाम प्रतीप पड़ा।
२ सो प्रतीप उपमेय को कीजै जब उपमान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(जमुना का जल) के विपर्यय द्वारा 'जमुना का जल' को उपमेय और 'राम का शरीर' को उपमान कर देने से प्रतीप अलंकार हुआ।

२. कभी-कभी उपमान को उपमेय बनाकर उसके द्वारा असली उपमेय की हीनता दिखाई जाती है[1]। जैसे, "हे भाव सिंह तुम अपने गुणों पर क्या अभिमान करते हो ? वे तो औरों में भी पाए जाते हैं। समुद्र में गंभीरता, सुमेरु में उच्चता और कल्पवृक्ष में दानवीरता देखी है। केवल तुम्हीं में नहीं है।" यहाँ गंभीरता, उच्चता आदि के लिए मान्य उपमानों के द्वारा वर्णनीय 'उपमेय' भावसिंह का तिरस्कार दिखाया गया है। इसी प्रकार—

गर्व करउ रघुनंदन जिन मन माँह
देखउ आपनि मूरति सिय कै छाँह[2]

में भी वर्णनीय उपमेय, रघुनंदन, का तिरस्कार यह कहकर किया गया कि सुन्दरता केवल उन्हीं में नहीं, सीता की परछाईं में जो सौंदर्य है वह उनमें है।

"हे काश्मीर, तुम्हें अपने प्राकृतिक सौंदर्य का क्या अभिमान है ? तुम्हारे समान तो नंदनवन भी है।" यहाँ भी उपमेय,

---

१. "जहाँ और उपमान लहि बर्न्य अनादर होय" (ललितलाम)
बर्न्य = वर्णनीय (उपमेय)

२—अर्थ—(जनकपुर में जनक जी की परिचारिकाएँ रामजी से कहती हैं कि अपनी सुन्दरता के लिए) हे राम, तुम अपने मन में घमंड न करो। हमारी सीता की परछाईं में अपना रूप देख लो। (जैसी सुन्दर हमारी सीता की परछाईं है, वैसे तुम हो। आशय यह है कि तुम सीता की परछाईं के समान काले रंग के हो।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काश्मीर के समान नंदनवन है—ऐसा कहकर उसकी हीनता दिखाई गई है।

३. कभी कभी उपमान को उपमेय बनाकर उसको (उपमान को) उपमेय की तुलना करने में अयोग्य ठहराया जाता है।[1] जैसे:—

अवनि, हिमाद्रि, समुद्र, जनि करहु वृथा अभिमान।
सांत, धीर, गंभीर हैं, तुम सम राम सुजान॥

यहाँ शांति, धैर्य और गम्भीरता के लिए प्रसिद्ध उपमान वर्ण्य होने के कारण उपमेय हैं। और असली उपमेय, राम को उनके समान बताकर उपमान बनाया गया है, इन गुणों में राम भी, उक्त उपमानों के सदृश हैं—ऐसा कहकर उनकी हीनता दिखाई गई है। ऐसे ही

करता है तू व्यर्थ गर्व पवि, अपने मन में
देखी तेरे सदृश कठिनता दुष्ट-वचन में

में भी कठोरता के उपमान पवि (वज्र को) उपमेय मानकर, उसके समान 'दुष्ट वचन' बतलाकर उसे उपमान बनाया गया है और ऐसा करके उपमान की हीनता प्रदर्शित की गयी है।

४. कभी-कभी उपमेय की तुलना उपमान से की जाती है, परन्तु फिर वह इस तुलना के अयोग्य ठहराया जाता है। इस तरह उपमेय उससे बढ़कर दिखाया जाता है।[2] जैसे, "नेत्र कमल के समान हैं—परन्तु यह कहना ठीक नहीं।"

१—"जहँ वरनत उपमेय तें कछु हीनो उपमान" (अलंकार मंजूषा)

२. "उपमे (य) को उपमान जब समता लायक नाहिं" (भाषाभूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसमें पहले 'नेत्र' की समता 'कमल' से की गई, परन्तु फिर उसे इस समता के अयोग्य कहा। इसी प्रकार—

इन दशनों, अधरों के आगे, क्या मुक्ता हैं, विद्रुम क्या?

में भी उपमानों—मुक्ता और विद्रुम को उपमेयों—दशन, अधर—की तुलना के योग्य न मानकर उनका तिरस्कार किया गया है।

नोट—इस उदाहरण में उपमा शब्दों द्वारा प्रकट नहीं की गई। अपनी ओर से उसकी कल्पना करनी पड़ती है।

५. कभी-कभी यह कहकर उपमान का तिरस्कार किया जाता है कि उपमेय स्वयं उसका (उपमान का) काम कर सकता है, फिर उसकी आवश्यकता ही क्या है?[१] जैसे—

मुख से विश्व प्रकाशित होता,
तब क्या काम चंद्रमा का?

इसमें उपमान—चंद्रमा—की आवश्यकता ही यह कह कर मिटा दी गई है कि (किसी सुन्दरी का) मुख ही संसार में प्रकाश फैला रहा है। इसी प्रकार—

राव भावसिंह जू के दान की बड़ाई देखि,
कहा कामधेनु है? कछू न सुरतरु है।

में भी उपमानों—कामधेनु और सुरतरु—की आवश्यकता ही मिटा दी गयी और उपमेय—राव भावसिंह की उत्कृष्टता सिद्ध की गयी।

१—"व्यर्थ होइ उपमान जब बर्ननीय लखि सार" (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उक्त पाँचों प्रकार के प्रतीप निम्नलिखित अवतरणों में क्रमशः पाए जाते हैं।

१. (क) संध्या फूली परम प्रिय की कान्ति-सी है दिखाती
पाया जाता वर-वदन सा ओप आदित्य में है
(ख) मुख के सदृश चंद्र शोभित है कमल-नेत्र सम लगता है।
(ग) पाँयन से गुललाला जपादल-पुंज बँधूक प्रभा बिथरै है।
हाथ से पल्लव नौल[1] रसाल[2] के लाल प्रभाव प्रकाश करै हैं।
लोचन की महिमा सी त्रिवेनी लखे 'लछिराम' त्रिताप[3] हरै हैं।
मैथिली[4] आनन से अरविंद[5] कलाधर[6] आरसी जानि परै है।

२. (क) का घूँघुट मुख मूँदहु अबला नारि
चंद सरग पै सोहत यहि अनुहारि
(ख) गरब करति मुख कौ कहा, चंदहि नीकै जोइ।
(ग) नैन तजहु तुम निज गरब यौं बहु खंजन गोत।

३. (क) कुलिस सोंहु कठोर अपार है
मृदु प्रसूनहुँ सो जिनको हियो
अस अलौकिक जे जन जक्त में
सकत पाइ भला तिन थाह को?
(ख) तीछन नैन कटाच्छ तें मंद काम के बान
(ग) मान महीपत के मन आगे लगैं लघु काँकर सों कनकाचल[7]

१—नवल, नवीन २—आम, ३—दैहिक, दैविक, भौतिक ये तीनों प्रकार के ताप ४—सीता, ५—कमल, ६—चन्द्रमा। ७—सुमेरु पर्वत।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४. (क) कंज बिचारो है सकत, सुघर न नैन समान

(ख) दान माँझ तरुराज[1] अरु मान माँझ कुरुराज[2]

नृप जसवंत, तो सम कहत, ते कवि निपट निकाज।

(ग) विक्रम मैं विक्रम, धरमसुत[3] धरम मैं,

धुंधमार धीरे में धनस वारौं धन मैं।

९. (क) जग प्रकास तप जस करै वृथा भानु यह देख

(ख) दृग आगे कछू मृग न ये

(ग) अमिय झरत चहुँ ओर सों नयन ताप हरि लेत

राधाजू को बदन अस, चंद उदय केहि हेत ?

व्यतिरेक.

जब उपमेय को उपमान से बढ़ाकर अथवा उपमान को उपमेय से घटाकर वर्णन किया जाता है तब व्यतिरेक अलंकार होता है।[4] जैसे,

१. सीता का मुख शरद ऋतु के कमल के समान है, परन्तु कमल तो रात में कुँमला जाता है, और यह दिन रात खिला रहता है।[5]

इसमें पहले उपेमय और उपमान (सीता का मुख और शरद-कमल) इन दोनों की समता करके 'सीता के मुख' को

१.—कल्पवृक्ष २—सुयोधन ३—युधिष्ठिर।

४—"व्यतिरेक जु उपमान तें उपमेयाधिक देखि" (भाषा भूषण)

५.—सिय-मुख सरद-कमल जिसि किमि कहि जाय ?

निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाय

(बरवै रामायण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'कमल' से इस बात में बढ़कर बतलाया है कि वह कमल की भाँति रात में कुम्हलाता नहीं, प्रत्युत दिन रात विकसित रहता है।

इसी प्रकार—

संत हृदय नवनीत समाना, कहा कविन, पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता, पर-दुख द्रवै सुसंत पुनीता॥

में भी पहले 'संत के हृदय' की समता 'नवनीत'[1] से की गई। फिर उसकी श्रेष्ठता यह कहकर बतलाई गयी कि नवनीत तो स्वयं तपाये जाने पर पिघलता है, परन्तु संत-हृदय दूसरों के ताप (वेदना, जलन) से पिघल उठता है।

३. सीता के मुख के समान बेचारा चन्द्रमा कैसे कहा जा सकता है ? कारण एक तो उसका जन्म खारे समुद्र में हुआ है, दूसरे उसका बन्धु-विष[2] है, तीसरे वह दिन में मलीन रहता है और चौथे उसमें कालिमा का कलंक है।"[3]

इसमें उपमान—चन्द्रमा में उक्त चार बातों की कमी

१—नेनू, मक्खन।

२—पुराणों में लिखा है कि एक बार समुद्र को मथने पर उन में से १४ रत्न निकले। उनमें चन्द्रमा और विष भी थे। उत्पत्ति स्थान एक होने से दोनों बन्धु ठहरे।

३—जनम सिन्धु, पुनिबन्धु विष, दिनमलीन, सकलंक
सिय-मुख समता पाव किमि, चन्दबापुरो रंक !
(रामचरित मानस)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बतला कर उसे उपमेय —सीता की —तुलना के अयोग्य ठहराया गया है । इसी प्रकार—

'मुख कमल के समान है, परन्तु कमल से मधुर वचन नहीं निकलते'

इसमें भी उपमान (कमल) में (वाक्-शक्ति की) कमी दिखाकर उसे उपमेय—मुख—से घटाया गया है ।

नीचे दिये हुए उद्धरणों से इस अलंकार के समझने में सहायता मिलेगी:—

१. नवबिधु बिमल, तात, जस तोरा, रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।
उदित सदा, अथइय कबहूँ ना, घटिहि न जग-नभ दिन-दिन दूना ।

२. सम सुबरन सुषमाकर सुखद न थोर
सीय अंग सखि कोमल, कनक कठोर

३. साधु उच्च हैं शैल सम, किन्तु प्रकृति सुकुमार ।

४. कोमल अधरों के समान हो सकते मूँगे कड़े नहीं

५. शिवाजी का पुरुषार्थ पाण्डवों से बढ़ कर था, क्योंकि वे तो रात में लाक्षागृह से निकल आये थे, और ये दिन में ही लाखों पहरेदारों के होते हुए भी औरंगजेब के महल से निकल आये थे ।

६. का सरवरि तेहि देउँ मयंकू, चाँद कलंकी वह निकलंकू
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा, वह बिनु राहु सदा परगासा

७. पर, कहाँ कण्टकित नाल सुपुलकित भुज-सा ?

रूपक

जहाँ एक वस्तु (उपमेय) को दूसरी वस्तु (उपमान) के रूप में दिखाया जावे वहाँ रूपक अलंकार होता है । 'उपमा'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में उपमेय और उपमान का भेद बना रहता है; उन दोनों का अस्तित्व अलग अलग होता है; परन्तु जब उनमें इतनी समता बढ़ जाती है कि दोनों एक-से जान पड़ने लगते हैं, तब रूपक[1] कहलाता है। इसमें सन्देह नहीं कि रूपक में उपमेय और उपमान दो पदार्थ एक नहीं हो जाते, दोनों का अस्तित्व नहीं मिट जाता; फिर भी दोनों एक ही समान मालूम होने लगते हैं। दूसरे शब्दों में, उपमा में दो पदार्थों का सादृश्य होता है, किन्तु रूपक में दोनों में एकरूपता होती है। जैसे, "मुख-चंद्र" यहाँ वाचक-धर्म-लुप्तोपमा के समान "चन्द्र-मुख" का आशय नहीं है। 'चंद्र-मुख" का वाचक और धर्म से युक्त करने पर पूरा रूप होगा—चंद्रमा के (समान सुन्दर) मुख। परन्तु इसी ढंग पर हम 'मुख-चंद्र' का 'मुख के समान (सुन्दर) चंद्रमा'—इसको पूरा रूप नहीं कह सकते। इसका (मुख-चंद्रका) अर्थ तो है 'मुख ही चंद्रमा' है[2]। इसी प्रकार—

---

१. "उपमेय रु उपमान जब एक रूप ह्वै जाहिं", (अलंकार दर्पण)

'रूपक' शब्द का अर्थ होता है रूप धारण करना। इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप धारण करता है। इससे इसका नाम रूपक है।

२—वाचक-धर्म-लुप्तोपमा और रूपक में भेद समझने के लिए यह जान लेना चाहिए कि पहले में उपमान पहले रखा जाता है और उपमेय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

"राम के नेत्र कमल ही हैं" में 'नेत्र' और 'कमल' में भेद नहीं रखा गया।

इन दोनों उदाहरणों में उपमेय और उपमान में कुछ भेद नहीं देखा जाता। ये दोनों अभेदरूपक[1] के उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त जब उपमेय और उपमान में भेद रखते हुए भी किसी गुण, कर्म आदि के कारण एकरूपता स्थापित की जाती है तब तद्रूप[2] रूपक होता है। जैसे, "अर्जुन द्वारा छोड़ा गया पाशुपत दूसरा पक्षधारी सर्प था"—इसमें 'पाशुपत' और 'सर्प' को भिन्न-भिन्न पदार्थ समझते हुए पहले का दूसरे में आरोप किया गया है। तद्रूप या ताद्रूप्य रूपक में 'दूसरा' 'अन्य', 'अपर' आदि शब्दों के द्वारा उपमेय और उपमान की भिन्नता प्रकट की जाती है।

उक्त दोनों प्रकार के—अभेद और तद्रूप—रूपकों के तीन-तीन भेद होते हैं[3]:—

सम अधिक और न्यून

१. जब उपमेय और उपमान में समता होती है, एक-दूसरे से कमी या अधिकता नहीं रहती तब उसे सम [अभेद या तद्रूप] रूपक कहते हैं, जैसे, 'मुखचंद्र है,' अथवा 'मुख दूसरा

बाद में, जैसे चन्द्रमुख; किन्तु दूसरे में उपमेय पहले रखा जाता है और उपमान बाद में, जैसे मुख-चन्द्र।

१—अभेद का अर्थ है, 'जहाँ या जिसमें भेद न हो'। २—तद्रूप का अर्थ है। उसके (उपमान के) रूप वाला।

३—है रूपक द्वै भाँति मिलि तद्रूप, अभेद
अधिक, न्यून, सम, दुहून के तीनि तीनि ये भेद (भाषा भूषण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चंद्रमा है।' इन दोनों उदाहरणों में 'मुख' और 'चंद्रमा' में समानता दिखायी गयी है।

२. जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ अधिकता दिखाई जाती है तब उसे अधिक (अभेद या तद्रूप) रूपक कहते हैं। जैसे, "मुख निष्कलंक चंद्रमा है" अथवा "मुख दूसरा निष्कलंक चंद्रमा है।" इन दोनों उदाहरणों में उपमेय (मुख) में उपमान (चंद्रमा) की अपेक्षा निष्कलंकता की अधिकता दिखायी गयी है।

३. जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ न्यूनता (कमी) दिखायी जाती है तब उसे न्यून (अभेद या तद्रूप) रूपक कहते हैं। जैसे—"उसका मुख घर को प्रकाशित करने वाला दूसरा चंद्रमा है," या "उसका मुख घर को प्रकाशित करने वाला चंद्रमा है"—इन दोनों उदाहरणों में मुख को घर का प्रकाशित करने वाला चंद्रमा कह कर, उसमें चंद्रमा से इस आशय में न्यूनता दिखायी गयी है कि चंद्रमा से घर-बाहर, पृथ्वी-आकाश सब कुछ प्रकाशित होता है, किन्तु मुख से केवल घर ही प्रकाशित होता है।

रूपक के अन्य भेद सांग, निरंग, और परंपरित

उपमेय और उपमान के विविध अंगों की पूरी या नाम-मात्र की समता स्थापित करने की दृष्टि से रूपक के अन्य तीन भेद किये जाते हैं। उनके नाम हैं; (१) सांग या सावयव; (२) निरंग या निरवयव और (३) परंपरित। सांग [स (सहित)+अंग] अथवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सावयव [स+अवयव] (अंग)] रूपक में उपमेय में उपमान का आरोप तो होता ही है; साथ ही उसके सहचर पदार्थों या अंगों का भी उपमेय के अंगों पर आरोप किया जाता है। तात्पर्य यह कि सांग रूपक में **अनेक रूपक होते हैं, जिनके उपमेय और उपमान पहले के अंग की भाँति होते हैं। जैसे—**

ऊधो, मेरा हृदयतल था एक उद्यान न्यारा
शोभा देतीं अमित उसमें कल्पना-क्यारियाँ थीं
प्यारे-प्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों
उत्साहों के विपुल विटपी मुग्धकारी महा थे
सच्चिंता की सरस लहरी संकुला वापिका थी
लोनी-लोनी नवल लतिका थीं अनेकों उमंगें
धीरे-धीरे मधुर हिलती वासना-वेलियाँ थीं
सद्वांछा के विहग उसमें मंजुभाषी बड़े थे।

इसमें 'हृदय' का 'उद्यान' से अभेद मानकर उद्यान के विभिन्न अंगों—क्यारी, कुसुम, विटप, वापिका, लता, बेलि, विहग,—का आरोप क्रमशः हृदय के विभिन्न अंगों—कल्पना, भाव, उत्साह, सच्चिंता, उमंग, वासना, वांछा पर किया गया है। इस प्रकार यहाँ सांग रूपक हुआ। इसी तरह—

टंकार ही निर्घोष था, शरवृष्टि ही जल-वृष्टि थी,
जलती हुई रोषाग्नि से उद्दीप्त विद्युद्दृष्टि थी,
गाण्डीव रोहित-रूप था, रथ ही सशक्त समीर था
उस काल अर्जुन वीरवर अद्भुत जलद गंभीर था

में अर्जुन और बादल में अभेदत्व स्थापित करके धनुष की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

टंकार को बादल की ध्वनि, उसके बाणों की वर्षा को जल की वर्षा, अर्जुन की क्रोध की ज्वाला को बिजली की चमक, गाण्डीव (अर्जुन के धनुष का नाम) को रोहित (इन्द्रधनुष), रथ की तेज चाल को प्रचंड पवन बनाकर सांग-रूपक का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

सांग रूपक का यह उदाहरण भी देखने योग्य है —

ऋतुराज के आगे महफिल लगी है, जिसमें वन मंडप हैं, निर्झर मृदंग हैं, वसंत देव उत्सवनायक है, कोयल गायक है, पक्षी उस रंगभूमि में एकत्र दर्शक हैं। वहाँ राजहंस कला के जाननेवाले हैं, मोर नर्तक हैं, पवन ताल देनेवाला है, पत्ते करताल हैं, झिल्ली (झींगुर) की झनकार तार के बाजों का स्वर है, भ्रमर नस-तरंग बजानेवाला है, तोता विधि बताने वाला है, सारस रसज्ञ है, चतुर खंजन गत लेनेवाला है। चकवा की क्रीडा विदूषक का अभिनय है।......भरे हुए वृक्षों की सघन छाया रात्रि है, पुष्पों से लदे हुए पलाश वृक्ष ही दीपकों की दीवटें हैं, मंजरित आम महफिल की पुलक हैं और खिले हुए कमल महफिल का हास्य हैं।[1]

इसी सांग रूपक के दो उदाहरण और दिये जाते हैं:—

(क) उदित उदय-गिरि-मंच पर, रघुवर-बाल-पतंग।
विकसे संत-सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।
नृपन केर आसा-निसि नासी; बचन नखत अवली न प्रकासी।
मानी-महिप कुमुद सकुचाने; कपटी भूप-उलूक लुकाने।
भये विसोक कोक-मुनिदेवा; (बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा)

(ख) जिन फन फुतकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो

१— बेलि रुक्मिणी री ख्यात' से गद्य में अनुवादित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

विष जाल ज्वालामुखी लवलीन होते जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो
कीन्हो जेहि पान पय पान सो जहान कुल
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो
खग्ग-खगराज महराज सिवराजजू को
अखिल भुजंग-मुगलद्दल निगलिगो

निरंग या **निरवयव** रूपक में उपमेय पर उपमान का आरोप तो रहता है, परन्तु उसके अंगों का आरोप नहीं होता। अर्थात् इसमें केवल उपमेय और उपमान की अभेदता दिखाई जाती है, उनके अंगों पर कुछ नहीं कहा जाता। जैसे—

सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आगई
गंभीर श्यामल मेघ में विद्युच्छटा-सी छा गई

इसमें केवल श्रीकृष्ण की हँसी में बिजली का आरोप किया गया और आगे हँसी तथा बिजली दोनों के विविध अंगों में एकरूपता नहीं स्थापित की गयी। इसी तरह—

हैं शत्रु भी यों मग्न जिसके शौर्य-पारावार में

इसमें शौर्य और पारावार (समुद्र) में निरंग रूपक है।

परंपरित रूपक (परंपरा = शृंखला) में एक रूपक के द्वारा दूसरे रूपक की पुष्टि होती है। इसमें यदि पहला रूपक न हो तो दूसरे का निर्वाह हो ही नहीं सकता। इस प्रकार एक अप्रधान रूपक पर प्रधान रूपक निर्भर रहा करता है। जैसे,

राम-कथा कलि-पन्नग[1] भरनी[2] में दो रूपक हैं। इसमें (१) कलि और पन्नग में तथा (२) राम-कथा और भरनी में एकरूपता स्थिर की गई है।

---

१. साँप। २ गारुड़ी मंत्र;वह मंत्र जिसके द्वारा साँप का विष उतरता है। इसका अर्थ 'भरणी' नक्षत्र भी होता है। इसमें बरसे हुए जलसे सर्प नष्ट होते हैं।

Digitized by eGangotri

यहाँ 'राम-कथा' को 'भरनी' तभी ठीक माना जायगा जब 'कलि' (कलियुग) को 'पन्नग' मान लिया जायगा। अर्थात् 'राम कथा-भरनी' यह रूपक 'कलि-पन्नग' पर निर्भर है। इस प्रकार एक रूपक की परंपरा पर दूसरा रूपक आश्रित होने से इस में परंपरित रूपक हुआ। ऐसे ही—

'वंश-मयंक-कलंक स्वरूपा हूँ दीना-द्विज-नारी मैं'

में 'वंश (रूपी) मयंक (चन्द्रमा)'—यह रूपक 'कलंक स्वरूपा नारी'—पर निर्भर होने से इसमें भी परंपरित रूपक है।

उपर्युक्त रूपक के विविध प्रकारों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं:—

१. एकाकी फिरि फिरि निरखि, अखिल प्रजा के काम।
तौलि तुला तें न्याय किय, राम अपर नृप राम॥

(सम तद्रूप)

२. एहो नंद-नंद प्यारी, तेरो मुख-चंद यहै
चंद ते अधिक अंक पंक को बिहीनो

(अधिक तद्रूप)

३. तेरे नैन कमल, कमल बिनु जल के (न्यून तद्रूप)

४. रामकथा सुंदर करतारी, संसय-बिहँग उड़ावन हारी

(सम अभेद)

५. रहै सदा विकसत विमल धरै वास[1] मृदु मंजु
उपज्यो नहिं पुनि पंक ते, राधे को मुख-कंजु

(अधिक अभेद)

१—सुगन्ध।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

६. सब के देखत व्योमपथ, गयो सिंधु के पार
पक्षिराज[१] बिन पक्ष को, वीर सुमीर-कुमार[२]
(हीन अभेद)

७. दिनकर-कुल-कैरव-वन-चन्दू (परंपरित)

८. चिंता रूपी मलिन निशि की कौमुदी है अनूठी
आशा मेरे हृदय-मरु की मंजु मंदाकिनी है (परंपरित)

९. खर वाण-धारा रूप जिसकी प्रज्वलित ज्वाला हुई
जो वैरियों के व्यूह को अत्यन्त विकराला हुई
श्रीकृष्ण रूपी वायु से प्रेरित धनञ्जय ने वहाँ
कौरव-चमू वन कर दिया तत्काल नष्ट जहाँ-तहाँ
(परंपरित और सांग)

१०. एक टक सब चितवहिं चहुँ ओरा, रामचंद्र-मुख चंद्र-चकोरा
(परंपरित)

११ रुनित भृंग घटावली झरत दान मधु-नीर
मंद मंद आवत चल्यो कुंजर-कुंज-समीर (सांग)

१२. सोक कनकलोचन[३], मति छोनि[४], हरी, बिमल गुनगनजग-जोनी[५]
भरत बिबेक-बराह[६] बिसाला, अनायास उधरी तेहिकाला
(परंपरित)

१३. जितने कष्ट कंटकों में है जिनका जीवन-सुमन खिला
गौरव-गंध उन्हें उतना ही अत्र तत्र सर्वत्र मिला
(सांग)

१—गरुड़, २—हनुमान। ३—हिरण्याक्ष (नामक दैत्य)।
४—क्षोणि, पृथ्वी। ५—ब्रह्मा। ६—वाराह (अवतार धारी भगवान)।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१४. लोचन चातक जिन करि राखे
रहहिं दरस जलधर अभिलाखे
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी,
रूप बिंदुजल होहिं सुखारी

(परंपरित)

१५. जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनी जीहा जासु
मुकताहल गुनगन चुनइ, राम बसहु हिय तासु

(परंपरित)

उत्प्रेक्षा[1]

जब उपमेय में उपमान से भिन्नता जानते हुए भी उसमें उपमान की संभावना की जाती है, तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। 'रूपक' में भी उपमेय और उपमान की भिन्नता के ज्ञान के साथ ही उपमेय में उपमान का आरोप किया जाता है। परन्तु वहाँ उपमेय और उपमान के एक-सा होने में दुविधा नहीं रह जाती प्रत्युत दोनों की एकात्मता मान ली जाती है; इसी प्रकार 'उपमा' में उपमेय और उपमान की समता निश्चित होती है। इसके विपरीत उत्प्रेक्षा में प्रस्तुत (उपमेय) की अप्रस्तुत (उपमान) से समानता अवश्य की जाती है, परन्तु

१—उत्प्रेक्षा [उत्(=ऊपर या प्रधानता से)+प्र(=विशेष कर या बलपूर्वक)+ईक्षन(=देखना)]में उपमान से भिन्न जानते हुए भी प्रधानता से उपमेय में उपमान की बलपूर्वक संभावना की जाती है। इसी से इस का यह नाम पड़ा है।

२—"जहँ कीजै संभावना सो उत्प्रेक्षा जानि" (ललित-ललाम)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसा करने में संशय बना रहता है। जैसे—'मुख चन्द्रमा के समान है' (उपमा) और 'मुख-चन्द्र' (रूपक) इन दो उक्तियों में 'मुख' और 'चन्द्रमा' की क्रमशः समता और एकरूपता असंदिग्ध है, परन्तु 'मुख मानों चन्द्रमा है' (उत्प्रेक्षा) इस कथन में यह निश्चय नहीं कि मुख चन्द्रमा है या उसके समान है, मुख के चन्द्रमा होने में दुविधा बनी हुई है।

मनु, मनहु, मानो, जनु, जानहु, जानो, निश्चय, मेरे जान, इव - ये अथवा इनके पर्यायवाचक अन्य शब्द उत्प्रेक्षा के वाचक शब्द हैं।

जहाँ इन शब्दों के द्वारा उत्प्रेक्षा की जाती है वहाँ वाच्या-उत्प्रेक्षा [वाचक शब्द से युक्त] होती है; किन्तु जहाँ इन वाचक शब्दों के बिना उत्प्रेक्षा हो वहाँ प्रतीयमाना [जान पड़ने वाली] या गम्य-उत्प्रेक्षा होती है।

"श्रीकृष्ण के श्याम शरीर पर पीताम्बर ऐसा जान पड़ता है मानों नीलम के पर्वत पर प्रातःकालीन सूर्य की किरणें पड़ रही हों"—यहाँ वक्ता को यह निश्चय नहीं कि श्यामसुन्दर के शरीर का पीताम्बर नीलम के पर्वत पर सूर्य की प्रातः कालीन किरणें हैं। इसी से 'मानों' कह कर वह अपना अनिश्चय प्रकट करता है। वह दोनों में भेद देखता है फिर भी उपमेय [श्यामसुन्दर के शरीर] में उपमान [नीलम के पर्वत] का आरोप बलपूर्वक करने की संभावना करता है। यहाँ एक वस्तु में दूसरी वस्तु के आरोप करने की सम्भावना की गई है—इससे इस कथन में वस्तु-उत्प्रेक्षा हुई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पाई अपूर्व थिरता मृदुवायु ने थी,
मानो अचंचल विमोहित हो बनी थी।

यहाँ वायु के अचंचल (स्थिर) होने के कारण (हेतु) की सम्भावना यह की गयी है कि वह मोहित हो गयी है। परन्तु वास्तव में निर्जीव वायु मोहित हो ही नहीं सकती। इस प्रकार अहेतु (कारण नहीं) होने पर भी (मोहित होने के) हेतु (कारण) की संभावना से इस उक्ति में हेतु-उत्प्रेक्षा हुई।

निश्चय ही पिनाक ने स्व-पाप नष्ट करने को
राम-कर-तीर्थ पा शरीर निज छोड़ा है।

इसमें पिनाक (शंकर के धनुष) के टूटने का हेतु राम का बल नहीं कहा गया, प्रत्युत उसके भंग होने में यह अभिप्राय (फल) आरोपित किया गया है कि उसने अपने पाप मिटाने के लिए अपने को भंग करवा डाला। इस प्रकार अब यहाँ एक फल (अभिप्राय) की कल्पना की गयी है। जड़ धनुष से ऐसी सम्भावना करना अफल (जो फल नहीं है) है। इस प्रकार जब जो फल (उद्देश्य) न हो किन्तु उसे फल माना जाय तब फल-उत्प्रेक्षा होती है।

इस प्रकार (१) वस्तु, (२) हेतु और (३) फल—ये तीन प्रकार[१] की उत्प्रेक्षाएँ होती हैं। नीचे इन तीनों के कुछ उदाहरण क्रमशः दिये जाते हैं।

१—उत्प्रेक्षा, संभावना वस्तु हेतु फल लेखि
(वस्तु)—नैन मनो अरबिंद हैं सरस बिसाल बिसेखि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वस्तु १. इसके अनन्तर अंक में रक्खे हुए सुस्नेह से
शोभित हुई इस भाँति वह निर्जीव पति के देह से
मानो निदाघारंभ में संतप्त आतपजाल से
छादित हुई विपिनस्थली नव-पतित किंशुक शाल से

२. उस काल मारे क्रोध के तनु काँपने उसका लगा
मानो हवा के ज़ोर से सोता हुआ सागर जगा

३. उन्नत हिमालय से धवल यह सुरसरी यों टूटती
मानो पयोधर से धरा के दुग्ध-धारा छूटती

४. परम धीर समीर प्रवाह था,
वह मनो कुछ निद्रित था हुआ।

५. मुकुतानि की झालरनि मिलि मनिमाल छज्जा छाजहीं
संध्या समै मानहु नखतगन लाल अंबर राजहीं
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं
मानो गगन तंबू तन्यो ताके सफ़ेद तनाय हैं।

६. मोर-मुकुट की चन्द्रिकन यों राजत नँद नंद
मनु ससि-सेखर की अकस किय सेखर सतचंद

७. जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े

(हेतु)—मनो चली आँगन कठिन तातें राते पाय

(राते=लाल, पाय=पैर)

(फल)—तुव पद-समता को कमल-जल सेवत इक पाय

(इक पाय = एक पैर के बल खड़े होकर)

(भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पद्मरागों से अधर मानो बने
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने

८. सतानंद-सिष सुनि पाँय परि पहराई माल
सिय पियहिय, सोहत सो भई है
मानस तें निकसि बिसाल सुतमाल पर,
मानहुँ मराल पाँति बैठी बनि गई है

९. सोनित छींटि-छटान जटे-तुलसी प्रभु सोहैं महा छबि छूटी
मानो मरक्कत-सैल बिसाल में फैलि चलीं बर बीर बहूटी

हेतु—१. पावकमय ससि स्रवत न आगी
मानहुँ मोहि जानि हत भागी

२. मुख सम नहिं याते मनो, चंदहि छाया[1] छाय[2]

३. सभीत हो दाघ निदाघ से मनो
नहीं गिरा थी तजती स्व-सद्म को

४. स्नेह से द्रवते जलद गण बरसते जल धार[3]

फल— १. नित्य ही नहाता क्षीरसिन्धु में कलाधर है
सुन्दर तवानन की समता की इच्छा से[3]

२. लंबा होता ताड़ का वृक्ष जाता
मानों नभ छूना चाहता शीघ्र ही है

३. नाना सरोवर खिले नव पंकजों को
ले अंक में बिलसते मन मोहते थे
मानो प्रसार अपने शतशः करों को
वे माँगते शरद से सु-विभूतियाँ थे

१—कालिमा, कलंक २—छाई हुई है ३—यहाँ वाचक शब्द नहीं आया, इससे यह प्रतीयमाना या गम्योत्प्रेक्षा का भी उदाहरण है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हेतु और फल-उत्प्रेक्षा में अंतर

उपर्युक्त हेतु और फल-उत्प्रेक्षा का अंतर समझने में बहुधा कठिनाई पड़ा करती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पहले क्रिया की परीक्षा करनी चाहिए। हेतु का अर्थ कारण होता है; और कारण सदैव कार्य के पहले होता है। जैसे, ऊपर (हेतु-उत्प्रेक्षा के तीसरे उदाहरण में) निदाघ (ग्रीष्म) से डरना कारण (हेतु) है और गिरा का स्व-सद्म को न छोड़ना कार्य है। यहाँ इसीसे हेतूत्प्रेक्षा है। परन्तु कार्य हो जाने पर उसके परिणाम को फल कहते हैं, जैसे, (फलोत्प्रेक्षा के पहले उदाहरण में) चंद्रमा समुद्र में नित्य स्नान करता है, क्यों? वह किसी सुन्दरी के आनन की समता करना चाहता है—यह उसके स्नान करने का फल होगा। इससे यहाँ फलोत्प्रेक्षा है। दूसरे शब्दों में, यदि क्रिया किसी कारण से हुई हो तो हेतूत्प्रेक्षा होगी और यदि किसी फल की इच्छा से हुई होगी तो फलोत्प्रेक्षा।

स्मरण

जब एक बार की देखी, सुनी या समझी हुई वस्तु से मिलती-जुलती या सम्बन्ध रखने वाली कोई वस्तु फिर कभी देखने, सुनने या चिन्तन करने पर याद आजाती है तब स्मरण[1]

१—कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास
सुमिरन ताको भाखिए, बुधवर सहित हुलास
(अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अलंकार होता है। स्मरण में तीन बातें होती हैं:—(१) पहले से हम किसी वस्तु को देख, सुन वा समझ चुके होते हैं (२) उसी तरह की या उससे संबंध रखनेवाली वस्तु फिर देखते, सुनते या समझते हैं (३) तब पहले वाली वस्तु का स्मरण आता है। जैसे,

"जमुना के किनारे पहुँचने पर उसके राम के वर्ण के जल को देखते ही भरत को राम का वियोग व्याकुल करने लगा।"[१]

यहाँ राम के शरीर के रंग से मिलते-जुलते रंगवाले जमुनाजल को देखकर भरत को राम का स्मरण हो आया।

ऐसे ही निम्नलिखित वर्णनों में कुछ वस्तुओं को देखने से पुरानी वस्तुओं का स्मरण हो आया है:—

१. जो पाती हूँ कुँवरवर के जोग मैं भोग प्यारा
तो होती हैं हृदय-तल में वेदनायें अनेकों

२. सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल मंद समीर
मनु ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर[२]

३. अयोध्यापुरी में, अपनी चित्रशाला में जमुना के तट पर स्थित 'श्यामवट' नामक बरगद के पेड़ का चित्र देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने (उत्तररामचरित नाटक में) सीता के पूछने

१—रघुबर-बरन बिलोकि बर-बारि समेत समाज
होत मगन बारिध-बिरह, चढ़े बिबेक-जहाज (तुलसी)
(इसमें विरह-वारिधि तथा विवेक-जहाज में परंपरित रूपक भी है)

२—जमुना के तट की वस्तुएँ देख कर मन में वही (कृष्ण के समयके) भाव उत्पन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर कि 'आर्यपुत्र ! क्या आपको यह देश स्मरण है ?' कहा था कि भला, यह कैसे विस्मरण हो सकता है—

जब मारग के स्रम व्यापन सों, सिथिलाइ कें आलस भोइ गई
मिसली मुरझाई मृनालिनि[1] सी, बलछीन, पसीननु मोइ गई
कछु मेरे तबै परिरंभन[2] सों सुठि अंग हराहरि[3] खोइ गई
सुख मानि प्रिया, यहँ वाही घरी हियरा लगि मेरे तू सोइ गई

इसी प्रकार

सायं प्रातः विविध स्वर से कूजते हैं पखेरू
प्यारी-प्यारी मधुर ध्वनियाँ मत्त हो हैं सुनाते
मैं पाती हूँ मधुर ध्वनि में कूजने में, खगों के
मीठी तानें परमप्रिय की मोहिनी वंशिका की

इस छंद में पक्षियों की ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि का स्मरण आजाता है।

जब अर्जुन पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिए श्रीकृष्ण के साथ कुरुक्षेत्र से कैलाश की ओर उत्तर दिशा को जा रहे थे तब अलकापुरी का दृश्य देखकर वे बोले—

गाते प्रियाओं के सहित रस-राग यक्ष जहाँ-तहाँ
प्रत्यक्ष-सी उत्तर दिशा की दीखती लक्ष्मी यहाँ
कहते हुए यों पार्थ पर सहसा उदासी छा गई
उत्तर दिशा से 'उत्तरा'[4] की याद सहसा आ गई

१—कमलनाल, २—आलिंगन ३—थकावट।

४. अभिमन्यु की स्त्री (जो अपने पति के मरने से उस समय अत्यन्त दुखी थी)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ 'उत्तर' शब्द कहते ही उससे बहुत कुछ समता रखता हुआ 'उत्तरा' शब्द याद आया, और अभिमन्यु के वियोग का शोक पुनः अर्जुन के हृदय पर छा गया।

यह सुनकर शिशुपाल आ गया पहिन ब्याह-पट
रुक्मिणि-हिय में कृष्णचन्द्र की मूर्ति खिंची झट

इसमें अपनी इच्छा के विरुद्ध शिशुपाल को आया सुनकर रुक्मिणी को अपने पूर्व चिन्तित श्रीकृष्ण का स्मरण आने का उल्लेख है।

इसी प्रकार

जब जब वै सुधि कीजिए तब तब सब सुधि जाहिं
आँखिन आँख लगी रहैं, आँखैं लागति नाहिं

में उनके (प्रियतम के) स्मरण आने पर किसी सुन्दरी के होश-हवास गुम हो जाने का वर्णन है। यहाँ चिन्ता के कारण स्मरण हुआ। (दूसरे दल में यमक भी है)

इसी प्रकार नीचे लिखे अवतरणों में भी स्मरण अलंकार है—

१. जागि परि तो न कान्ह कहूँ न कदंब की छाँह नहीं जमुनातट
[इसमें स्वप्न देख कर स्मरण होने का कथन है]

२. राम वास-थल, बिटप बिलोके
उर अनुराग रहत नहिं रोके

३. प्राची दिसि ससि उगेउ सोहावा
सिय मुख सरिस देखि सुख पावा

४. (ब्रज मंडल के) थूहर पलास देखि-देखि कै बबूर बुरे
हीय हारे हारे वे तमाल सुधि आवै हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

५. सुनि कोकिल की ध्वनि बचन की आवत है सुधि मोहि
६. छू देती है मृदु पवन जो पास आ गात मेरा
तो हो जाती परम सुधि है श्याम-प्यारे-करों की।
७. जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यों करैं
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं
'आलम' जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यों करैं
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं

(इसमें श्रीकृष्ण के गोकुल से चले जाने पर उनकी प्रेमिका किसी गोपी के उन मनोंभावों का वर्णन है जो गोकुल के क्रीड़ा स्थलों को देखने पर उसके हृदय में उठते हैं।)

८. आते जो यहाँ हैं ब्रज भूमि की छटा वे देख,
नेक न अघाते होते मोद-मन-माते हैं।
जिस ओर जाते उस ओर मन-भाते दृश्य,
लोचन लुभाते और चित्त को चुराते हैं॥
पल भर अपने को भूल वे जाते सदा,
सुखद अतीत-सुधा-सिंधु में समाते हैं।
जान पड़ता है उन्हें आज भी कन्हैया यहाँ,
मैया मैया टेरते हैं गैया को चराते हैं॥

अपह्नुति[1]

जब किसी सच्ची वस्तु या बात को छिपाकर उसके स्थान पर किसी झूठी वस्तु या बात की स्थापना की जाती है तब अप-

1. 'अपन्हव' का अर्थ होता है 'छिपाव'
आन बात आरोपिये सांची बात छिपाय (शिवराज भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ह्नुति अलंकार होता है। दूसरे शब्दों में, उपमेय का निषेध करके उसके स्थान पर उपमान का आरोप करने से अपह्नुति होती है। जैसे, 'बंधु न होय, मोर यह काला'—इस उक्ति में सुग्रीव ने राम से अपने भाई बालि के विषय में असली बात—उसका बंधुत्व—छिपाया और यह झूठ कहा कि 'यह मेरा काल' है। इसी तरह—

'दुर्गावती साधारण स्त्री नहीं साक्षात् दुर्गा थी'—इस वाक्य में दुर्गावती के असली रूप—स्त्रीत्व—को छिपाकर उसे 'दुर्गा' बनाया गया है।

छिपाने की बहुत सी वस्तुएँ या बातें हो सकती हैं और उनके छिपाने के कथन भी बहुत तरह के हो सकते हैं। परन्तु अपह्नुति के नीचे लिखे छः भेद ही प्रायः सर्वमान्य हैं।

(१) शुद्धापह्नुति में वास्तविक उपमेय को निषेधपूर्वक छिपाकर उसके सहधर्मी उपमान का स्थापन किया जाता है।

शुद्धापह्नुति[1]

जैसे—

दृग-जल-युक्त बदन-मंडल को अलकें श्याम न थीं घेरे
ओस भरे पंकज ऊपर थे मधुकर-माला के डेरे

यहाँ 'उपमेय अर्थात् अश्रुपूर्ण चेहरे को ढके हुए बालों' को ('न थीं घेरे' कहकर) निषेधपूर्वक छिपाकर उनके स्थान पर उपमान अर्थात् ओस के कण से युक्त पंकज के ऊपर बैठे हुए भौंरों को आरोपित किया गया। इसी प्रकार

१. धर्म दुरै आरोप तें शुद्ध अपह्नुति जानि (भाषाभूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'कृष्ण नहीं पीतांबर पहने, बिजली चमक रही घन में' में भी उपमेय (कृष्ण के पीतांबर) को 'नहीं' शब्द के द्वारा छिपाते हुए उसके उपमान (बिजली) का उसके स्थान पर आरोप किया गया है।

हेत्वपह्नुति[1] जब उपमेय का निषेध और उसके बजाय उपमान का स्थापन किसी हेतु (कारण) से किया जाता है तब हेत्वपह्नुति होती है जैसे—

कोहरा नहीं ह, यह धूम सलिलानल का,
भानु तापने को आग पानी में लगाते हैं।

यहाँ अगर केवल यही कहा जाता कि "यह कुहरा नहीं है, सलिलानल (जल की आग, बाडवाग्नि) का धुआँ है" तो शुद्धापह्नुति होती। परन्तु इतने से संतोष न करके, इस आग के जल में होने का कारण यह कल्पित किया जाता है—जो असत्य है—कि "सूर्य आग तापने के लिए पानी में उसे लगाते हैं," जिसका वह धुआँ उठ रहा है। इससे इसमें हेत्वपह्नुति हुई।

इसी प्रकार—

श्याम और यह श्वेत रंग हैं, इन नेत्रों का रूप नहीं
गरल और अमृत से दोनों भरे हुए हैं, सत्य यही
सहृदय जन पर जब होता है इनका देखो गाढ़ निपात
बेसुध और मुदित क्यों हों वे अगर नहीं होती यह बात

इस उक्ति में, नेत्रों में वास्तविक श्याम और श्वेतरंग का निषेध करके उनके स्थान पर काल्पनिक विष और अमृत

---

१. वस्तु दुरावै जुक्ति सों, हेतु-अपह्नुति होय (भाषाभूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का आरोप किया गया। इसका कारण अंत के दो चरणों में बतलाया गया है। इस कारण इसमें हेत्वपह्नुति हुई।

पर्यस्तापह्नुति[1] जब किसी वस्तु [उपमान] में उसके सच्चे गुणों का निषेध इस अभिप्राय से किया जाता है जिससे वे [धर्म या गुण] अन्य वस्तु [उपमेय] में स्थापित किये जायँ तब पर्यस्तापह्नुति होती है। जैसे,

है न सुधा यह, है सुधा वास्तव में सत्संग

(अमृत अमृत नहीं है, पर वास्तव में सत्संग ही अमृत है) यहाँ सुधा में सुधात्व (अमर करने का गुण) का निषेध इसलिए किया गया है कि उसका धर्म सत्संग में स्थापित करना है। इसी तरह—

'नहीं शक्र सुरपति हो सकते, सुरपति तो हैं नन्दकुमार', में भी देवराजत्व इन्द्र से इसलिए छीना गया है कि उसका आरोप नंदकुमार पर किया जाना है।

(प्रायः देखा जाता है कि इस अलंकार में जिस वस्तु के सच्चे गुण को छिपाना होता है उसका सूचक शब्द दो बार आया करता है। जैसे, ऊपर के अवतरणों में सुधा और सुरपति।)

---

१. पर्यस्त = फेंका हुआ। इसमें एक गुण दूसरे में फेंक कर आरोपित किया जाता है।

"पर्यस्त जु गुन एक को और विषै आरोप" (भाषा-भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जब किसी वस्तु में किसी दूसरी का भ्रम हो जाय, और सत्य बात कहकर वह भ्रम दूर किया जाय तब भ्रांतापह्नुति होती है। जैसे—

भ्रान्तापह्नुति[२]

हैं गर्जते घन नहीं, बजते नगाड़े
बिद्युल्लता चमकती न, कृपाल-जाल है।
धारा नहीं, बरसती यह वाण धारा
आई घटा यह नहीं, शिवराजसेना।

यहाँ, शिवराज की सेना में बादलों की घटा का भ्रम हुआ था, वह असली बात बतलाकर दूर किया गया।

इसी तरह निम्नलिखित उद्धरणों में भी भ्रांतापन्हुति है।

१. न सिर पर जटाएँ, बाल हैं किन्तु गूँथे
गरल नहिं गले में, किन्तु कस्तूरिका है
विरत-धवलिमा है, भस्म ना अंग में है
अयि मदन, मुझे क्यों मारता ईश-धोखे ?

२. [आवत मुकुट देखि कपि भागे, दिन ही लूक परन बिधि लागे।
की रावन करि कोप चलाये, कुलिस चार आवत अति धाये।।]
कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू, लूक न असनि, केतु नहिं राहू
ए किरीट दसकंधर केरे, आवत बालि-तनय के प्रेरे ।।

---

२. भ्राँति अपह्नुति—बचन सों भ्रम जब पर को जाइ

(भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपर्युक्त भ्रांतापह्नुति में सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है, किन्तु इसके विपरीत जब सत्य को छिपा

छेकापह्नुति[1]

कर असत्य कहकर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है—चाहे वह दूर हो या न हो—तब छेकापन्हुति होती है। इसमें किसी गुप्त बात को किसी प्रकार पहले कहकर फिर किसी चतुरता से उसे छिपाया जाता है। इसे 'मुकरी'[2] भी कहते हैं। जैसे—

कछु न परिच्छा लीन्ह गुसाईं
कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं

इस उक्ति द्वारा सती ने शंकर से अपने राम की जाँच करने के ढंग को नहीं बताया, प्रत्युत चालाकी से एक दूसरी बात बना दी। इसी प्रकार,

एक स्त्री ने किसी से कहा—आँखें अति सीतल भईं दीन्हों ताप निवारि, इससे यह समझ कर कि शायद उसने अपने पति के दर्शन किये हों, कोई दूसरी पूछ बैठी—

क्यों सखि, पीतम को लखे ?

इस सत्य बात को छिपाती हुई वह चालाकी से बोली—

ना, सखि, ससिहिं निहारि

१—छेक = चालाकी

"छेकापह्नुति युक्ति करि पर सों बात दुराय"। (भाषा-भूषण)

(पर = दूसरा)

२—एक सच कहकर उससे मुकर जाना होता है—इन्कार कर देना होता है—इससे यह नाम पड़ा ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपर्युक्त अपह्नुति के भेदों में नकारात्मक कोई शब्द मौजूद रहकर एक बात को छिपाने में मदद पहुँचाता है। परन्तु जब ऐसा (कोई नकारात्मक) शब्द किसी उक्ति में नहीं आता और 'बहाने से' 'मिस' 'व्याज से' आदि शब्दों के द्वारा सत्य वस्तु का (उपमेय का) निषध करके असत्य (उपमान) की स्थापना की जाती है तब कैतवापह्नुति होती है—

कैतवापह्नुति[1]

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे
मुख बाल-रवि सम लाल होकर ज्वाल सा बोधित हुआ
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ ?

यहाँ अर्जुन (उपमेय) का निषेध स्पष्ट नकारात्मक शब्दों में नहीं किया गया, वरन् 'मिस' के द्वारा हुआ है।

इसी प्रकार नीचे लिखे उद्धरणों में भी कैतवापह्नुति है।

१. उत्कर्ष देख निज अंक पेल शशी का
है वारिराशि मिस कैरव इष्ट होता

२. शरद चाँदनी के मिस विधु ने अपना जाल बिछाया था

३. रवि निज उदय व्याज रघुराया,
प्रभु प्रताप सब नृपन्ह देखाया।

४. विकलता लख के व्रज देवि की,
रजनि भी करती अनुताप थी

१—कैतव = छल, धोखा देना।

"कैतवापन्हुति एक को मिसु करि बरनै आन" (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निपट नीरव ही मिस ओस के,
नयन से गिरता बहु वारि था।

९. विपुल नीर बहाकर नैन से मिस प्रवाह कलिंद-कुमारिका
परम कातरता सँग मौनही रुदन थी करती ब्रजकी धरा

भ्रान्तिमान् (भ्रम)[1]

कभी कभी किसी वस्तु को देखकर उसमें अन्य किसी वस्तु से कुछ सादृश्य के कारण हम उसे अन्य वस्तु समझ बैठते हैं, पर वह वास्तव में अन्य वस्तु होती नहीं। ऐसी भूल को 'भ्रम' कहते हैं। जैसे अँधेरी रात में रस्सी को देख पर कोई उसे सर्प समझ बैठे, तो कहा जायगा कि उसे 'भ्रम' हो गया। इसी प्रकार जब उपमेय में उपपान का आभास[2] हो तब भ्रम या भ्रान्तिमान् अलंकार होता है। भ्रान्तिमान् में उपमान में उपमेय का आभास मिलता है, इससे उसे उपमेय समझ लिया जाता है। यथा,

बिल विचार कर नाग-शुंड[3] में घुसने लगा सर्प झट से
काली ईख समझकर उसने उठा लिया उसको चट से

इस वर्णन के अनुसार हाथी की सूँड के छिद्र में सर्प को बिल का भ्रम हुआ, और हाथी को साँप में काली ईख का।

१—"भ्रांति और की और में निश्चित जब अनुमान"

(अलंकार मंजूषा)

२—'आभास' का अर्थ है जान पड़ना, पर असल में न होना।

३—हाथी की सूँड

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दोनों का यह भ्रम निश्चय की सीमा तक पहुँच गया। इसलिए इस में भ्रान्तिमान् या भ्रम अलंकार हुआ। इसी प्रकार—

किंशुक-कुसुम जानकर झपटा भौंरा शुक की लाल चोंच पर
तोते ने निज ठोर चलाई जामुन का फल उसे सोच कर

भौंरे ने तोते की चोंच को किंशुक [पलाश] का फूल समझा और तोते ने उसे जामुन का फल। वर्ण-साम्य के कारण दोनों की यह धारणा निश्चय की सीमा तक पहुँच गई, तभी तो दोनों ने एक दूसरे पर हमला कर दिया। इसी से यहाँ भ्रम अलंकार हुआ।

नीचे लिखे अवतरणों में भी भ्रम या भ्रान्तिमान् अलंकार है—

१. कपि[1] करि हृदय विचारि, दीन्ह मुद्रिका डारि तब
जानि असोक अँगार, सीय हरिसि उठि कर गह्यो।

२. पेशी समझ माणिक्य को वह विहग देखो ले चला।

३. मणि मुख मेलि डारि कपि देहीं।

४. फूल समझकर शकुन्तला-मुख भन-भन उस पर भ्रमर करे।

५. कुहू निशा में परछांई को प्रेत समझकर हुआ अचेत

६. नाक का मोती अधर की कान्ति से—
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से
देख उसको ही हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है!

१—यहां कपि से हनुमान का अभिप्राय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

७. मद भरे ये नलिन-नयन विहीन हैं,
अल्पजल में या विकल लघुमीन हैं ?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं ?
या पथिक से लाल लोचन कह रहे,
हम तपस्वी हैं सभी दुख सह रहे।

८. सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै
वन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छबि सो बरनै किमि कै ?
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै
न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रति नायक है।

सन्देह[1]

उपर्युक्त 'भ्रम' अलंकार में उपमेय और उपमान के सादृश्य का आभास सत्य मान लिया जाता है, किन्तु जब उपमेय और उपमान में समता देखकर यह निश्चय नहीं हो पाता कि उपमान वास्तव में उपमेय है वा नहीं, दुबिधा बनी ही रहती है तब सन्देह अलंकार होता है।

बहुधा किसी वस्तु को देखकर उसके असली रूपका निश्चय नहीं होता, उसमें अनेक वस्तुओं की दुविधा बनी रहती है, कभी कुछ कहा जाता है, कभी कुछ। इस अवस्था में 'सन्देह' होता है। सन्देह में चार बातें होती हैं; (१) हम कोई पदार्थ

१—बहुविधि बरणत बर्ण्य को, नियत न तथ्य-अतथ्य
अलंकार सन्देह तहँ बरनत हैं मतिपथ्य (अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देखते हैं,(२) उसमें कई पदार्थों का-सा रूप या गुण पाया जाता है;(३) उसमें उन सभी पदार्थों के होने की सम्भावना होती है, परन्तु (४) हम निश्चय नहीं कर सकते कि वह उनमें से कौन-सा पदार्थ है। यहाँ वास्तविक सन्देह नहीं होता, केवल कल्पित समता-विषयक सन्देह होता है। धौं, किधौं, कै, कि आदि शब्दों के द्वारा यह सन्देह प्रकट किया जाता है। जैसे, दूज के चन्द्रमा को देखकर यह निश्चय नहीं हो पाता कि वह वास्तव में क्या है। अस्तु, यह कहना पड़ता है कि (यह चन्द्रमा है)—

कै सुमेरु सुचि बर्न स्वर्न, सागर को कौड़ा
कै सुर कानन कदलि मूल कौ कोमल बौंड़ा
किधौं स्वर्ग फुलवारी के माली कौ हँसिया
कै अमृत एकत्र करन की स्वेत अँकुसिया
रवि हय-खुर की छाप किधौं, कै नाल नुकीली
काल-चक्र की हाल परी खंडित, कै कीली

यहाँ अर्ध-वृत्त के आकार के नवीन 'बंक मयंक' को देखकर वक्ता निश्चय नहीं कर पाता कि वह (१) सुमेरु पर्वत का शुभ्र स्वर्ण (२) समुद्र का कौड़ा (बड़ी कौड़ी), (३) स्वर्ग के केला का बौंड़ा, (४) स्वर्ग की फुलवारी (नन्दनवन) के माली का हँसिया, (५) अमृत को एकत्रित करने का श्वेत अंकुश, (६) सूर्य के घोड़ों की टाप का चिह्न, (७) उनकी नुकीली नाल (८) काल रूपी पहिए की टूटी हुई हाल या कीली—इनमें से कौन-सा पदार्थ है। उसे दुविधा बनी ही रहती है। इसी से इस में सन्देह-अलंकार है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसे ही किसी सुन्दरी की माँग को देख कर उसके विषय में निश्चित न हो सकने से नीचे लिखो उक्ति में भी सन्देह अलंकार है—

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि,
श्याम घनमंडल में दामिनी की धारा है ?
यामिनी के अंग में कलाधर की कोर है कि,
राहु के कबंध पै कराल केतु तारा है ?
'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है कि,
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है ?
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि,
ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है ?

इसी प्रकार द्रौपदी की साड़ी खींचते-खींचते जब दुःशासन ने उसका बहुत बड़ा ढेर लगा दिया तब दर्शकों को संदेह हुआ कि—

सारी बीच नारी है, कि नारी बीच सारी है,
कि सारी ही की नारी है, कि नारी ही की सारी है।

नीचे लिखे अवतरणों में भी संदेह अलंकार है

१. की तुम तीन-देव[१] महँ कोऊ,
नर-नारायन की तुम दोऊ !

२. बालधी[२] बिसाल बिकराल ज्वाल माल मानौ
लंका लीलिबै को काल रसना पसारी है[३]

१. ब्रह्मा, विष्णु, महेश। २ पूँछ (हनुमान की। लंकादहन के समय
३. इस अंश में उत्प्रेक्षा है, आगे सन्देह है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कैधों व्योम-बीथिका[1] भरे हैं भूरि[2] धूम-केतु[3]
वीर रस बीर तरवारि-सी उधारी[4]
तुलसी सुरेश-चाप, कैधों दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तै कसानु-सरि[5] भारी हैं।

३. देख आरसी में परछाई पूर्ण चन्द्रमा की,
शिशु ने समोद निज हाथ को बढ़ाया है
उसी क्षण चन्द्र-वदनी के मुख-चन्द्र का भी,
देख पड़ा वहाँ प्रतिबिंब मन-भाया है
जान पड़ता है, उन दोनों को बिलोककर,
एक ही समान उन्हें विधि ने बनाया है
लूँ मैं किसे और किसे छोड़ूँ हीन मान कर,
इस असमंजस में वह घबड़ाया है।

४. दायाँ हाथ लिये था सुरभित चित्र विचित्र सुमनमाला
टाँगा धनुष कि काम-लता पर मनसिज ने झूला डाला

५. हिम स्रेनिन सों घिरयो अद्रिमंडल यह रूरौ
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा पूरौ
कै यह जादूभरी विश्व-बाजीगर थैली
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पर थैली—
पुरुष प्रकृति कौं किधौं जबै जोबन रस आयौ
प्रेम केलि रसरेलि करन रँग महल बनायौ

---

१. अकाश मार्ग। २. बहुत से ३. पुच्छल तारे हैं। ४. खोली, निकाली (इस पंक्ति में उपमा है।) ५. आग की नदी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खिली प्रकृति पटरानी के महलन फुलवारी
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार पिटारी
कै यह विकसित ब्रह्म वाटिका की कोउ क्यारी
योगिराज ने यहाँ योग बल ऐंचि उतारी
कामधेनु कै रविहय की खुर छाप सलोनी
कै वसुधा पै सुधाधार ब्रह्मद्रव दौनी

उल्लेख

जब एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन (उल्लेख) किया जाय तब उल्लेख अलंकार होता है। यह दो प्रकार से हो सकता है:—(१) जब एक ही व्यक्ति या पदार्थ अनेक लोगों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से देखा, समझा या वर्णन किया जाय, (२) जब एक ही पदार्थ विषय-भेद से एक ही व्यक्ति के द्वारा अनेक प्रकार से देखा जाय। जैसे—

जब श्रीकृष्ण कंस द्वारा रचित रंगभूमि में पहुँचे तब उन्हें स्त्रियों ने कामदेव, यदुवंशियों ने अपना हितैषी, नन्द ने अपना पुत्र और कंस ने यमराज समझा। यहाँ एक ही व्यक्ति, श्रीकृष्ण, अनेक लोगों के द्वारा कामदेव, हितैषी, पुत्र, यम—इन अनेक रूपों में देखे गये। इस प्रकार यह पहले प्रकार का 'उल्लेख' हुआ। ऐसे ही जनक द्वारा रचित धनुष की रंगभूमि में जब राम ने प्रवेश किया तब—

(जिनकी रही भावना जैसी, प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी)
देखहिं भूप महा रनधीरा, मनहु बीररस धरे सरीरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी, मनहु भयानक मूरति भारी
रहे असुर छल छोनिप[1] बेषा, तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा
पुरबासिन देखे दोउ भाई, नर-भूषन लोचन सुखदाई

इस प्रकार एक राम को भी अनेक व्यक्तियों ने अनेक रूपों में देखा[2]। इसी भाँति आगे दिये अवतरणों में भी पहले प्रकार का उल्लेख है:—

१. तेरा सहास मुख देख मिलिन्द आते
वे मान फुल्ल अरविन्द प्रमोद पाते
ये देख, आलि, शशि के भ्रम दौर दौर
हैं चंचु-शब्द करते फिरते चकोर

२. अर्थिन सुरतरु, तिय मदन, अरि को काल प्रतीति

३. कुछ लोग कहते हैं कि शिवाजी कल्पवृक्ष है, कुछ कहते हैं कामदेव का अवतार है, कुछ कहते हैं चंद्रमा है, कुछ कहते हैं समरक्षेत्र में नृसिंह है और कुछेक कहते हैं वह तो नृसिंह का अवतार है

४. सुषमा उसी की अवलोक के सुधाकर में,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं

---

१. क्षोणिप, राजा—वे असुर जो राजाओं के छद्म वेश में थे।

२. उल्लेख के इस पहले भेद में 'अनेक व्यक्ति' लिखने से आशय यह है कि निरवयव रूपक की माला से इसका भेद स्पष्ट हो जाय। वहाँ देखने वा सुननेवाले अनेक नहीं होते, यहाँ स्पष्ट रूप से अनेक लोगों की उपस्थिति रहती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मंजुल मयूर होते मोद मद माते हैं
फूलों में उसीकी शोभा देख के मिलिन्दवृन्द,
फूले न समाते 'गुन गुन' गुण गाते हैं
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी,
प्रेम से प्रफुल्लित पतंग जल जाते हैं।

दूसरे प्रकार के उल्लेख में एक ही वस्तु, जैसा कहा जा चुका है, भिन्न-भिन्न गुणों की दृष्टि से अनेक प्रकार से वर्णित की जाती है। **जैसे,**

तू रूप है किरन में, सौन्दर्य है सुमन में
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में

यहाँ कवि एक ही परमात्मा को किरण, सुमन, पवन और गगन के संबंध से भिन्न-भिन्न रूपों में देखता है

इसी प्रकार उसी परमात्मा को वह निम्नलिखित अवतरण में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और सज्जन के सम्पर्क में अनेक रूप में देखता है।

तू ज्ञान हिन्दुओं में ईमान मुस्लिमों में
तू प्रेम क्रिश्चियन में है सत्य तू सुजन में

एक भारतीय विधवा नारी भी विविध वस्तुओं के संयोग से विविध रूप में नीचे लिखी कविता में देखी जाती है—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की विधवा है

ऐसे ही एक माँ अपनी पुत्री को, निम्नांकित वर्णन में, विविध रूपों में देखती है :—

यह मेरी गोदी की शोभा, सुख सुहाग की है लाली
शाही-शान भिखारिन की है, मनोकामना मतवाली
दीपशिखा है अंधेरे की, घनी घटा की उजियाली
ऊषा है यह कमल-भृंग की, है पतझड़ की हरियाली
सुधा-धार यह नीरस दिल की, मस्ती मगन तपस्वी की
जीवित ज्योति नष्ट नयनों की, सच्ची लगन मनस्वी की

निम्नलिखित छंद में भी एक ही गंगा भिन्न-भिन्न रूपों में देखी गयी हैं:—

विधि बरदायक की सुकृति समृद्धि वृद्धि
संभु सुरनायक की सिद्धि की सुनाका है
कहै 'रतनाकर' त्रिलोक सोक-नासन कौं
अतुल त्रिविक्रम[१] के विक्रम की साका है
जम-भय भारी तम तोम के निवारन कौं
गंग यह रावरी तरंग तुंग राका है
सगर-कुमारनि के तारन की स्रेनी सुभ
भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है

इसी तरह नीचे लिखे अवतरणों में उल्लेख है:—

१. चिन्ता रूपी मलिन निशि की कौमुदी है अनूठी
मेरी जैसी मृतक बनती काज संजीवनी है

१—वामन भगवान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नाना पीड़ा-मथित मन के हेत है शान्ति-धारा
आशा मेरे हृदय-मरु की मंजु मन्दाकिनी है।

२. ऊधो, होता समय पर जो चारु चिन्तामणी है
खो देता है तिमिर-उर का जो स्वकीया प्रभा से
जो जी में है सरित-स्वर की स्निग्ध धारा वहाता
बेटा ही है अवनि-तल में रत्न ऐसा निराला

३. वे छाया थीं सुजन-शिर की, शासिका थीं खलों की
कंगालों की परम निधि थीं, औषधी पीड़ितों की
दीनों की थीं भगिनि, जननी थीं अनाथाश्रितों की
आराध्या थीं ब्रज-अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं

प्रतिवस्तूपमा[१]

उपमा के उन रूपों में जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है दो वस्तुओं के वाचक शब्दों में तुलना होती है। इनमें 'वाचक' एक ही शब्द होता है। परन्तु जब उपमेय और उपमान संबंधी दो अलग-अलग वाक्यों में भिन्न-भिन्न शब्दों से एक ही धर्म में तुलना की जाय तब प्रतिवस्तु-उपमा अलंकार होता है। इसके लिए तीन शर्तें हैं। (१) उपमेय और उपमान संबंधी दो वाक्य हों, (२) दोनों वाक्यों का साधारण धर्म एक ही हो और (३) उस धर्म की सूचना दो शब्दों द्वारा हो, परन्तु उनका अर्थ एक ही हो। इस अलंकार में वस्तु-प्रतिवस्तुभाव—जुदे-जुदे शब्दों द्वारा एक धर्म कहा

१—"युगवाक्यन को होत जहँ एकै धर्म बखान।" (अलं० मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाना—होता है। इसी से इसे प्रतिवस्तूपमा कहते हैं। जैसे--

तिनहिं सोहाइ न अवध-बधावा, चोरहिं चाँदनी राति न भावा।

इस उदाहरण का विश्लेषण करने पर विदित होता है कि इसमें उक्त तीनों शर्तों का पालन हुआ है। इसमें--

१. तिनहिं सोहाइ न अवध बधावा—उपमेय वाक्य है
चोरहिं चाँदनि-राति न भावा—उपमान वाक्य है
२. 'अच्छा न लगना'—दोनों का साधारण धर्म है
३. 'सोहाइ न, 'न भावा'—ये दो समानार्थक शब्द धर्म के वाचक हैं।

इसी तरह नीचे लिखे उद्धरणों में भी प्रतिवस्तु-उपमा है।

१. शोभित होता है, सूर्य अपने प्रताप से
लसता है सूर निज धनुष और बाण से
२. घटने पर भी सज्जन का है प्रेम नहीं फीका होता
फटने पर भी लौह-रँगा[1] कपड़ा न चटक अपनी खोता
३. श्यामल-घटा में है चपला की चमक जैसी
वैसी ही दमक गौर देह की नीलांबर में
४. तजत न सज्जन बाँह गहि, कियो जु अंगीकार
अंक मयंक, भुजंग भव, धरत धरनि मल-भार

१—लौह-रंग = लाल, तूली रंग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दृष्टान्त[1]

उपमेय और उपमान वाक्य तथा उनके साधारण धर्म का (धर्म-पार्थक्य होते हुए भी) जहाँ पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव (भाव-साम्य) हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

प्रतिवस्तूपमा के लिए यह आवश्यक बतलाया जा चुका है कि उसमें उपमेय और उपमान सूचक दो वाक्यों में एक ही साधारण धर्म के कारण समान अर्थ-वाले भिन्न (वाचक) शब्दों के द्वारा समता की जाती है। इसके विपरीत जब दो वाक्यों की समता दिखाई जाय, परन्तु (१) दोनों का साधारण धर्म एक न हो और (२) दोनों का समता-सूचक कोई [एक ही या सामानार्थक] शब्द न हो तब दृष्टान्त अलकार होता है। इस प्रकार दृष्टान्त में भिन्न धर्म वाले दो वाक्यों में एक दूसरे से मिलते-जुलते-से [बिम्ब-प्रतिबिम्ब-से] भाव जान पड़ते हैं। इस अलंकार में प्रकृत (उपमेय) तथ्य के प्रभाव को बढ़ाने के लिए उसके मेल में कोई दूसरा अप्रकृत उपमान तथ्य रख देते हैं। दृष्टान्त के लिए आवश्यक है कि उसमें (१) पहले वाक्य में कोई बात कही जाय, (२) दूसरे वाक्य में उससे मिलती-जुलती कोई दूसरी बात कही जाय, (३) दूसरा वाक्य पहले वाक्य के उदाहरण की भाँति हो, परन्तु किसी शब्द के द्वारा यह समानता का भाव प्रकट न किया जाय, और

१—"जहाँ बिंब प्रतिबिंब सम जुगल वाक्य का धर्म"
ताहि कहत दृष्टांत हैं—जे कवि कबिता-वर्म (पद्माभरण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(४) दोनों बातों की समता किसी साधारण धर्म की एकता के कारण (जैसा प्रतिवस्तूपमा में होता है) न हो। जैसे—

"राम की सुन्दरता के सामने किसी दूसरे की सुन्दरता अच्छी नहीं लगती। क्या गंगाजल को छोड़कर कोई तलैया का जल पसन्द करता है ?"

इसमें (१) पहले वाक्य में राम की सुन्दरता के विषय में कुछ कहा गया है, और दूसरे वाक्य में गंगाजल के विषय में (२) दोनों वाक्य मिलते-जुलते से हैं। परन्तु [३] दोनों का साधारण धर्म भिन्न है और (४) इन दोनों वाक्यों का सादृश्य-सूचक कोई वाचक शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ। इसी तरह—

निरखि रूप नँदलाल को, दृगन रुचै नहिं आन।
तजि पियूष[1] कोऊ करत, कटु ओषधि को पान ?

में भी दो भिन्न धर्मवाली, किन्तु समान-सी जान पड़ती हुई वस्तुओं की समता दो वाक्यों के द्वारा की गयी है। इसी से यहाँ दृष्टान्त अलंकार है। ऐसे ही—

पापी मनुज भी आज मुँह से राम नाम निकालते
देखो, भयंकर भेड़िये भी आज आँसू डालते

में भी दृष्टान्त-अलंकार स्पष्ट है।

नीचे लिखे दोहे दृष्टान्त के ही उदाहरण हैं:—

१. रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय-दुख प्रगट करेइ
जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देइ ?
२. भले बुरे सब एक सों, जौ लौं बोलत नाहिं
जानि परतु हैं काक पिक रितु बसंत के माहिं

१—पीयूष, अमृत।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उदाहरण

जब दो वाक्यों में, जिनका साधारण धर्म भिन्न है, वाचक शब्द के द्वारा समता दिखाई जाती है, तब उदाहरण अलंकार माना जाता है। **दृष्टांत में वाचक शब्द नहीं रहता किन्तु इस में रहता है।**

वह पाण्डुवंश-प्रदीप[1] यों शोभित हुआ उस काल में
सुन्दर-सुमन ज्यों पड़ गया हो कंकड़ों के जाल में

यहाँ भी पाण्डुवंश-प्रदीप (अभिमन्यु) और सुमन की समता की गई है। दोनों का धर्म भी एक नहीं है; **परन्तु 'यों' और 'ज्यों'—इन वाचक शब्दों के द्वारा यह साहश्य प्रकट किया गया है। इससे वाचक शब्द के मौजूद होने के कारण यहाँ दृष्टान्त अलंकार न होकर** उदाहरण **होगा। इसी प्रकार—इन उद्धारणों में भी उदाहरण है।**

१. अंभोजवन को मत्त गज करता यथा मर्दित स्वतः
मारा वृकोदर[2] ने उन्हें झट झपट झूम इतस्ततः

२. होने लगे रिपु नष्ट यों उनके प्रबल भुजदंड से
होते तृणादिक खण्ड ज्यों वातूल[3]-जाल प्रचण्ड से

३. राम सैल सोभा निरखि भरत-हृदय अति प्रेम
तापस तप फल पाइ जिमि सुखी सिराने नेम

४. बुंद अघात सहैं गिरि कैसे, खल के बचन संत सह जैसे

५. राजा में उसी प्रकार प्रताप है, जिस प्रकार सूर्य में तेज

१—अभिमन्यु से तात्पर्य है। २—भीम। ३—आंधी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

९. उदित कुमुदिनी-नाथ हुए प्राची में ऐसे
सुधा-कलश रत्नाकर से उठता हो जैसे

कुछ लोग दृष्टान्त के ही अन्तर्गत उदाहरण को भी रखते हैं; उनकी समझ में केवल एक वाचक शब्द के प्रयोग से उदाहरण में दृष्टान्त से भिन्नता नहीं मानी जानी चाहिए।

निदर्शना[१]

जब दो उपमेय और उपमान के-से वाक्यों में, अर्थ की भिन्नता के होते हुए भी, एक-दूसरे का संबंध इस प्रकार स्थापित किया जाता है कि उन दोनों में समानता जान पड़ने लगती है तब निदर्शना अलंकार होता है। इसमें कभी वाचक शब्दों का प्रयोग होता है, और कभी नहीं। प्रतिवस्तूपमा में उपमेय और उपमान वाक्य एक दूसरे पर निर्भर नहीं रहते, परन्तु निदर्शना में रहते हैं। दृष्टान्त में दो वाक्यों के धर्म अलग-अलग होते हैं, फिर भी उनमें समानता की झलक दिखाई पड़ती है। इससे उनकी एकता स्वाभाविक-सी जान पड़ती है; निदर्शना में दोनों का संबंध असंभव होता है, जो मजबूरी से मानना पड़ता है।

यथा:—

जंग जीतना जो चाहते हैं तुमसे बैर बढ़ाकर
जीवित रहने की इच्छा वे करते हैं विष खाकर

यहाँ 'बैर बढ़ाकर जंग जीतना' और 'विष खाकर जीवित रहना' इन एक-दूसरे से बिलकुल असंबद्ध और भिन्न-अर्थवाले वाक्यों में संबंध स्थापित करके दोनों को एक-सा बनाया गया है। इसी प्रकार—

१०—"सरिस वाक्य युग के अरथ करिए एक अरोप"। (अलं०मंजू०)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जे असि भगति जानि परिहरहीं, केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी, खोजत आक[1] फिरहिं पय[2] लागी

में भी 'भक्ति को छोड़ कर ज्ञान के लिए श्रम करना इस उपमेय वाक्य में, 'कामधेनु को छोड़कर आक को खोजना'—इस उपमान वाक्य का 'जे, ते' इन वाचकों के द्वारा आरोप किया गया है। इन दोनों का अर्थ भिन्न है, फिर भी पहले वाक्य से दूसरे वाक्य का जबरदस्ती संबंध जोड़ा गया है।

नीचे लिखे अवतरणों में भी निर्दशना अलंकार है:—

यह प्रेम को पंथ करार है री, तलवार की धार पै धावनो है

जब उपमान का गुण उपमेय में या उपमेय का गुण उपमान में आरोपित कर दिया जाता है तब भी निदर्शना होती है। जैसे नीचे लिखे छंद में उपमेय (अहल्याबाई) में उपमान (भारती, रमा, सीता, दमयन्ती, और शची) के गुणों का आरोप किया गया है—

भारती को देखा नहीं, कैसा है रमा का रूप
केवल कथाओं में ही सुने चले आते हैं
सीता जी का शील सत्य, वैभव शची का कहीं
किसी ने लखा ही नहीं ग्रंथ ही बताते हैं
'दीन' दमयन्ती की सहनशीलता की कथा
झूठी है कि सच्ची कौन जाने, कवि गाते हैं
इंदु-पुर[3]-वासिनी प्रकाशिनी मल्हार-वंश
मातु श्रीअहल्या में सभी के गुण पाते हैं

1—मदार। २—दूध। ३. इन्दौर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसी प्रकार नीचे लिखी पंक्तियों में उपमेय (पद्मावती की दन्तज्योति के प्रकाश) का गुण उपमान (सूर्य शशि, नक्षत्र, रतन, पदारथ, माणिक्य आदि) में किया गया है :—

जेहि दिन दसन जोति निरमई, बहुतै जोति जोति ओहि भई
रवि ससि नखत रिपहिं ओहि जोती, रतन पदारथ मानिक मोती
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी

अतिशयोक्ति[1]

जहाँ किसी की अत्यन्त प्रशंसा के लिए बहुत बड़ा चढ़ा कर लोक सीमा के बाहर की बात कही जाय वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

जैसे—छो छवि सुधा पयोनिधि होई परम रूपमय कच्छप सोई
सोभा रजु मंदर सृंगारू, मथै पानि पंकज निज मारू
यहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल

यहाँ सीताकी सुन्दरता का वर्णन अत्यन्त अधिक बढ़ा चढ़ा कर किया गया है। इसके सात भेद माने जाते हैं।

(१) रूपकातिशयोक्ति[2] जब उपमेय और उपमान में इतना अभेद स्थापित किया जाता है कि उपमेय का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है, केवल उपमान के द्वारा उसका बोध होता है तब रूपकातिशयोक्ति

---

१. "जहँ अत्यन्त सराहिबो, अतिसयोक्ति सु कहन्त
भेदक, सम्बन्धा, चपल, अक्रम, रूप, अत्यन्त।
इस दोहे में असम्बन्धातिशयोक्ति की गणना नहीं की गई। वह भी होती है।

२. "जहँ केवल उपमान कहि प्रकट करैं उपमेय।
रूपकातिशय उक्ति तहँ, बरनत सुकवि अजेय॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होती है। रूपक में उपमेय और उपमान का अस्तित्व अलग-अलग बना रहता है, और उसमें हमारा ध्यान मुख्यतया उपमेय पर ही रहता है; परन्तु रूपकातिशयोक्ति में उपमेय का उपमान में पूर्णतया अध्यवसान (विलीन हो जाना) हो जाता है; और केवल उपमान का ही कथन होता है। जैसे, किसी को बहुत दिनों के पश्चात् देखकर कोई कह उठे, 'अहा! आज गूलर का फूल दिखाई पड़ा' तो यहाँ 'गूलर के फूल' इस उपमान के द्वारा ही उपमेय का पूर्ण बोध होगा।

ऐसे ही निम्नलिखित अवतरणों में उपमेय के उपमान में पूर्णरूप से विलीन हो जाने के कारण रूपकातिशयोक्ति है:—

(क) कनक-लता पर चन्द्रमा धरे धनुष द्वै बान

(यहाँ, कनकलता = कोई स्त्री, चन्द्रमा = उसका मुख, धनुष = भौंहें, बान = नेत्र)।

(ख) अद्भुत एक अनूपम बाग

जुगल कमल पर गजवर क्रीडत, ता पर सिंह करत अनुराग
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, तेहि ऊपर अमृत फल लाग
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव, तापर सुक पिक मृग मद काग
खंजन, धनुष, चंद्रमा, ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग

(यहाँ पर अनुपम बाग से) 'राधा' के सम्पूर्ण शरीर से आशय है। उसका नखशिख वर्णन उपमानों का उल्लेख करके किया गया है। जुगल कमल = दो चरण। गज = जंघा। सिंह = कटि। सरोवर = नाभि। गिरिवर = कुच। कंज = कुच का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अग्र भाग। कपोत = ग्रीवा। अमृतफल = अधर। पुहुप = पुष्प की सुगध। पल्लव = ओष्ठ। पिक = वाणी। सुक = नासिका मृग-मद = ललाट पर कस्तूरी की बिंदी। काक = जुल्फ, अलक। खंजन = नयन। धनुष = भौंह। चंद्र = भाल। मणि = चूड़ामणि। नाग = चोटी, वेणी।

(ग) राघव बोले देख जानकी के आनन को
'स्वर्गंगा का कमल मिला कैसे कानन को?'
'नील मधुप को देख वहीं उस कंज कली ने
स्वयं आगमन किया'—कहा यह जनक लली ने

(स्वर्गंगा का कमल—जानकी का मुख। नील मधुप = राम।)

(२) जहाँ उपमेय में उपमान से यथार्थ में कुछ भेद न होने पर भी भेद का कथन किया जाता है वहाँ

भेदकातिशयोक्ति[1] भेदकातिशयोक्ति होती है। यह भेद और, और ही, दूसरा ही, न्यारा, निराला, अन्य आदि शब्दों के द्वारा बतलाया जाता है। जैसे—

वह चितवनि औरै कछू जिहि बस होत सुजान

यहाँ जिस चितवनि का उल्लेख हो रहा है, वह साधारण दृष्टि-सी होती हुई भी उससे "औरै" शब्द के द्वारा भिन्न बतलाई गई है। इससे 'भेदक' है। वह लोक से परे है। इसी कारण अतिशयोक्ति है।

१. "औरै सब्दन की जहाँ, उत्कर्षता सुबेस।
भेदक अतिसय उक्ति तहँ, मानत सुकवि-नरेस॥" (अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसे ही नीचे लिखे अवतरणों में भी भेदकातियोक्ति है—

(क) न्यारी रीति भूतल में देखी शिवराज की

(ख) अवलोकनि बोलनि हँसनि डोलनि औरै और

आवनि मृदु गावनि सबै औरै वाके तौर

(३) जहाँ उपमेय और उपमान में वास्तव में सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया जाता है, अथवा

सम्बन्धातिशयोक्ति अयोग्य में योग्यता बतलाई जाती है वहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति होती है। जैसे—

"इस पुर के भवनों के कलशों से सूर्य के घोड़ों के पैर उलझते हैं।"

यहाँ घरों की ऊँचाई से सूर्य के घोड़ों के पैर उलझने में कोई वास्तविक सम्बन्ध न होते हुए भी स्थापित किया गया है। ऐसे ही—

श्री रघुनाथ के हाथन सामुहें कल्पलता सनमान करै को? में सम्मान करने योग्य कल्पलता को सम्मान के अयोग्य ठहराया गया है।

नीचे लिखे अवतरणों में भी सम्बन्धातिशयोक्ति है—

(क) दोनों तीखे तुरग उचके औ उड़े यान को ले

(ख) गुलाब की पंखुड़ी से शरीर पर खरोच लग जायगी

(ग) सूर तुरंगन के उरझें पग तुंग पताकनि की पट साजनि

(घ) अयोध्या की महिमा के सामने अमरावती को क्या माना जाय?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(४) जब दो वस्तुओं में संबन्ध होने पर भी उसका निषेध किया जाता है, अथवा योग्य होने पर भी अयोग्य बनाया जाता है, तब असंबंधातिशयोक्ति होती है। जैसे–

असंबंधातिशयोक्ति

"जिस घोड़े पर राम चढ़े थे उसका वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं ?"[1]

यहाँ शारदा में घोड़े का वर्णन करने की शक्ति होते हुए भी उन्हें ऐसा करने में असमर्थ इसलिए कहा गया है कि घोड़े के उत्कर्ष को बहुत बढ़ाना था।

ऐसे ही—

तो कर आगे कल्पतरु क्यों पावै सनमान

में दाता के हाथ और कल्पवृक्ष में एक ही से काम का संबंध होते हुए भी उसका निषेध किया गया। और ऐसा करके हाथ की दानशीलता का उत्कर्ष सूचित किया गया है।

(५) जहाँ कारण और कार्य एक साथ हो जायँ, उनमें नियमानुसार कुछ अंतर न पड़े, वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होती है। जैसे—

अक्रमातिशयोक्ति[2]

"अजामिल के मुख से 'नारायण' निकलने के साथ इधर उसके प्राण निकले, उधर वह विमान पर बैठकर देवपुरी जा पहुँचा।"

---

१. जेहि बर बाजि राम असवारा, तेहि सारदहु न बरनै पारा। (तुलसी)

२. जहाँ हेतु अरु काज मिलि होत एक ही संग। (ललित ललाम)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ प्राण निकलने और स्वर्ग पहुँचने में कुछ अंतर न पड़ा, दोनों काम एक साथ-से हो गये। दोनों में क्रम न होने के कारण यहाँ अक्रमातिशयोक्ति है।

इसी तरह निम्नलिखित अवतरणों में भी अक्रमातिशयोक्ति है:—

(क) वह शर इधर गांडीव-गुण से भिन्न जैसे ही हुआ
धड़ से जयद्रथ का उधर सर छिन्न वैसे ही हुआ

(ख) चले तुम्हारे बाण धनुष से, रिपु-सेना के प्राण चले

(६) जब कारण का ज्ञान होते ही, उसके देखते या सुनते ही, कार्य सम्पन्न हो जाता है तब चपलातिशयोक्ति (चंचलातिशयोक्ति) होती है।

चपलातिशयोक्ति[1]

म्यान से निकलते तुम्हारी तलवार देख
शत्रु सब ढेर हो गये तुरंत ही वहाँ

यहाँ तलवार के निकलने में कुछ भी देर न हुई, और शत्रु मर गए। कारण का आविर्भाव होते ही कार्य हो गया।

ऐसे ही निम्नलिखित अवतरणों में भी चपलातिशयोक्ति:—

(क) पति-प्रस्थान श्रवण करते ही मुँदरी कंकण हो गई

(ख) तब सिव तीसर नैन उघारा, चितवत काम भयउ जरि छारा

(ग) बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा, सुनत नसाहिं काम, मद, दंभा

---

१. कारन के लखतहि सुनत ,कारज आसुहिं होय।
चपला अतिसय उक्ति यह, अलंकार है सोय॥

(अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(घ) बोधि बुधि विधि के कमंडल उठावत ही,
धाक सुरधुनि[1] की धँसी यों घट घट में
कहैं 'रतनाकर' सुरासुर ससंक सबै
बिबस बिलोकत लिखे-से चित्रपट में
लोकपाल दौरन दसौं दिसि हहरि लागे
हरि लागे हेरन सुपात बरबट में
खसन गिरीस लागे त्रसन नदीस लागे
ईस लागे कसन फनीस कटि-तट में

(७) जब कारण के होने के पहले ही कार्य हो जाय, तब अत्यतिन्तातिशयोक्ति[2] अत्यन्तातिशयोक्ति होती है। जैसे—

"हनुमान की पूँछ में आग न लग पाई थी कि सारी लंका जलकर खाक हो गई।"

यहाँ आग लगना रूपी कारण होने के पहले ही लंका का जलना—उसका यह कार्य पूरा हो गया।

ऐसे ही निम्नलिखित अवतरणों में, कार्य की सिद्धि कारण के पहले ही हो जाने से, अत्यन्तातिशयोक्ति है—

(क) बाण नहीं पहुँचे शरीर तक, शत्रु गिरे पहले भूपर
(ख) तुम न पहुँच पाये रण-थल में रिपु-सेना सब हुई बिहाल
(ग) कह कपि मुनि गुरु दछिना लेहू, पीछे हमें मन्त्र तुम देहू
(घ) आसकरि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं
गाठ हू के आस दुख दूरि बुटि बुटि गे।

---

१. गंगा।

२. "जहाँ हेतु ते प्रथम ही, प्रकट होत है काज।"
अत्यन्ताशयोक्ति तेहि कहैं सकल कविराज॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहै पदमाकर कुरोग से सँघाती तेऊ
गैल में चलत घूमि घूमि घुटि घुटि गे ॥
दगादार दोष दीह दारिद बिलाय गये
फिक्रिर के फंद बिनु छोरे छुटि छुटिगे ।
जौलों जाउँ जाउँ तेरे तीर गंगा, तौलौं
बीच ही में मेरे पापपुंज लुटि लुटिगे ॥

इस अतिशयोक्ति में वर्ण्य अवर्ण्य का साम्य नहीं रहता, उनका विरोध होता है—कार्य की सिद्धि कारण के होने से पहले ही हो जाती है। इससे इसे विरोध-मूलक अलंकारों के अन्तर्गत मानना चाहिए। परन्तु अतिशयोक्ति से संबंध रखने के कारण यहाँ इसका उल्लेख इस विचार से किया गया है कि यह आसानी से समझ में आ जाय।

द्रष्टव्य—

नीचे लिखे उदाहरणों में उपर्युक्त उपमा से मिलते-जुलते अलंकारों का भेद समझने में मदद मिलने की आशा है।

१. इसका मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है (पूर्णोपमा)
२. इसका मुख इसके ही मुख के समान है। (अनन्वय)
३. चंद्र इसके मुख के समान है। (प्रतीत)
४. चंद्र को देखते ही इसका मुख याद आ जाता है। (स्मरण)
५. इसका मुख ही चन्द्र है। (रूपक)
६. क्या यह मुख है या चन्द्र ? (संदेह)
७. मुख को चन्द्र समझकर चकोर इसकी ओर एक-टक देखते हैं। (भ्रान्तिमान्)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

८. यह चन्द्र नहीं, मुख है। (अपन्हुति)

९. मुख मानों चन्द्र है। (उत्प्रेक्षा)

१०. निष्कलंक मुख चन्द्र से बढ़कर है (व्यातिरेक)

११. देखो, यह चन्द्र निकला। (अतिशयोक्ति)

अत्युक्ति

ऊपर वर्णन की हुई अतिशयोक्ति में यद्यपि बढ़ा-चढ़ाकर कोई बात उपमेय के विषय में कही जाती है तथापि उसमें सत्य का कुछ न कुछ अंश अवश्य रहता है, इसके विपरीत जब रोचकता लाने के लिए किसी योग्य पुरुष के विषय में बढ़ी-चढ़ी हुई झूठी बात कही जाती हैं तब अत्युक्ति अलंकार होता है। यदि उक्ति संभव हो तो अतिशयोक्ति होगी और यदि असंभव हो तो अत्युक्ति। प्रायः किसी की वीरता, सुन्दरता, उदारता, वियोगावस्था, प्रेम-दशा और कीर्त्ति आदि का वर्णन अत्युक्ति-पूर्ण किया जाता है। इन्हीं सब बिषयों के अनुसार इस अलंकार के भेद किए जाते हैं। जैसे--वीरता की अत्युक्ति आदि।

वास्तव में अत्युक्ति को अतिशयोक्ति के अन्तर्गत मानना चाहिए। यह बात अवश्य है कि अत्युक्ति में अतिशयोक्ति से मिथ्या का अंश अधिक होता है; परन्तु यह तो केवल मात्रा या परिमाण का अन्तर है; एक में कम मिथ्या होती है, और दूसरे में अधिक।

जासु त्रास डर कहँ डर होई।

यहाँ डर कहीं शरीरधारियों की तरह डरता थोड़े है। फिर भी उसका आतंक बढ़ाकर कहने के लिए ऐसा कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसी प्रकार नीचे लिखे हुए अवतरणों में अत्युक्ति है !

१. जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप

२. गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असेस अपार
डगर डगर नै है रही बगर-बगर के बार

३. भूषन भार सँभारि है क्यों यह तन सुकुमार
सूधे पाँय न धर परत सोभा ही के भार

तुल्य योगिता[१]

जब कई व्यक्तियों वा पदार्थों का क्रिया अथवा गुण (विशेषण) के द्वारा एक ही धर्म (गुण) निश्चित किया जाता है तब तुल्ययोगिता (तुल्ययोग = एकता) अलंकार होता है। जैसे—

श्री दसरत्थ सों माँगिबे हेत गुनी निगुनी दोउ द्वार पै ठाढ़े।

में माँगने की क्रिया गुणी और निर्गुणी दोनों में आरोपित करके दोनों में एक ही धर्म आरोपित किया है।

कभी कभी अनेक उपमानों का एक ही धर्म कहा जाता है अर्थात् अप्रस्तुत (जिसका प्रसंग में वर्णन न हो रहा हो) का एक ही धर्म वर्णित होता है। जैसे--

कलिन्दजा के सुप्रवाह की छटा
विहंग क्रीडा कल नाद माधुरी
उन्हें बनाती न अतीव मुग्ध थी
अनूपता कुंज लता वितान की

यहाँ जमुना के प्रवाह की छटा, पक्षियों की क्रीड़ा और

१. "क्रिया और गुन करि जहां धर्म एकता होय।" (अलं० मं०)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उनकी सुन्दर बोली तथा कुंज लता-मंडप की सुन्दरता आदि अनेक उपमानों का यह एक ही धर्म कहा गया है—'उन्हें अतीव मुग्ध न बनाती।' इसी तरह—

माता के निस्वार्थ नेह में प्रेममयी की माया में
बालक के कोमल अधरों पर मधुर हास्य की छाया में
पतिव्रता नारी के बल में, वृद्धों के लोलुप मन में
होनहार युवकों के निर्मल ब्रह्मचर्यमय यौवन में
तृण की लघुता में, पर्वत की गर्वभरी गौरवता में
तेरी ही छवि का विकास है रजनी की नीरवता में

इसमें भी 'तेरी ही छवि का विकास'—यह एक धर्म अनक वस्तुओं पर आरोपित किया गया है।

कभी-कभी परस्पर विरोधियों में भी समान धर्म के कथन द्वारा तुल्य-योगिता होती है। जैसे—

"गंगा! तेरी तरंगों की महिमा कहाँ तक कहें। उनके द्वारा पापी और तपस्वी, मित्र और द्वेषी सभी मुक्त हो जाते हैं।"

यहाँ गंगा के जल का प्रभाव सब पर समान पड़ता है—यह कहा गया है।

कभी कभी कई वस्तुओं के उत्कृष्ट गुणों को एक ही वस्तु में आरोपित किया जाता है। ऐसे अवसर पर भी तुल्य-योगिता होती है। जैसे,

तू ही श्री-निधि, धर्मनिधि, तु ही इंद्र अरु चंद्र

यहाँ एक ही व्यक्ति में श्री, धर्म, इन्द्र और चन्द्र—सब के गुणों का आरोप कियाँ गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसी तरह नीचे लिखे छंद में पार्थ-पुत्र (अभिमन्यु) की कृपाण में अनेक व्यक्तियों के गुणों को आरोपित किया गया है:—

बीरन के मान औ गुमान सधीरन के,
आन के विधान भटवृंद घमसानो के।
कहै 'रतनाकर' विमोह अंध-भूपति[1] के,
द्रोह के सँदोह सूत-पूत[2] अभिमानी के॥
द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के,
आयु-औधि-दिवस जयद्रथ अठानी के।
कौरव के दाप, ताप पांडव के जात बहे,
पानी माँहि पारथ-सपूत की कृपानी के॥

दीपक[3]

उपर्युक्त तुल्ययोगिता में केवल उपमेय का अथवा केवल उपमान का एक ही धर्म कहा जाता है, परन्तु जब उपमेय और उपमान (प्रकृत और अप्रकृत) दोनों के किसी गुण (धर्म) का किसी क्रिया अथवा विशेषण द्वारा केवल एक ही बार वर्णन हो तब 'दीपक' अलंकार होता है इसमें उपमेयों और उपमानों की संख्या की सीमा नहीं होती, उनके गुण का कथन केवल एक बार होता है। जैसे--

बल-गर्वित सिसुपाल यह अजहू जगत सतात
सती नारि निश्चल प्रकृति परलोकहुँ सँग जात

१. धृतराष्ट्र। २. कर्ण।

३. "बर्न अबर्न्यं को जहां एकै धर्म कहाय" (अ० मं०)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ 'शिशुपाल की निश्चल प्रकृति'—यह प्रस्तुत (उपमेय) है और 'पतिव्रता स्त्री'—यह अप्रस्तुत (उपमान)। इन दोनों का 'परलोक एक संग जाना'—यह एक धर्म कहा गया है। ऐसे ही—

संग ते जती कुमंत्र ते राजा, मान ते ग्यान, पान ते लाजा।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी, नासहिं बेगि नीति अस सुनी

में भी 'राजा' उपमेय (प्रकृत) तथा 'जती,' 'ज्ञान', 'लाज', 'प्रीति' और 'गुणी' उपमान [अप्रकृत] हैं। इन सब का धर्म (नासहिं) एक ही कहा गया है।

अनेक क्रियाओं का संबंध जहाँ क्रमपूर्वक एक ही कारक की संज्ञा से जोड़ा जाता है वहाँ 'कारक-दीपक' कहलाता है। जैसे—

आती और जाती रहती हैं चैन पाती नहीं
मानो खोजती हैं उसे साँसें घबराई सी

में एक ही कारक-पद [संज्ञा]—साँसें—में, अनेक क्रियाओं—आना, जाना, चैन न पाना, खोजना—का संबंध जोड़ा गया है। इसी तरह—

ऋषिहिं देखि हरषै हियो, राम देखि कुँभिलाय
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित डोलाय

में एक ही कारक-पद (संज्ञा) हियो—का संबंध अनेक क्रियाओं—हर्षित होना, कुँभलाना, डरना, चिन्तित होना—से जोड़ा गया है। इस कारण ऊपर वाले उदाहरण की भाँति इसमें भी कारक-दीपक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जब वर्ण्य और अवर्ण्य की एक क्रिया या गुण अनेक पदार्थों **में इस तरह आरोपित किया जाता है कि** प्रत्येक पिछला पदार्थ प्रत्येक आगे आने वाले पदार्थ का सहायक या उत्तेजक बन जाता है **तब मालादीपक होता है । जैसे—**

रस से काव्य, काव्य से अतिशय शोभित होती है वानी
वानी से सज्जन, सज्जन से सभा विश्व लासानी

यहाँ अनेक पदार्थों के लिए 'शोभित होना' **यह क्रिया प्रयुक्त हुई है और इन पदार्थों में हरेक अपने बाद वाले का क्रमशः उत्कर्ष बढ़ाता गया है । 'रस' से काव्य का, 'काव्य' से 'वाणी' का, 'वाणी' से 'सज्जन' का और 'सज्जन' से सभा का उत्कर्ष बढ़ा है । इससे यहाँ** 'मालादीपक' **अलंकार हुआ ।**

इसी प्रकार गीतोक्त अर्जुन की इस उक्ति में भी माला-दीपक है:—

"कुल का क्षय होने से सनातन कुलधर्म नष्ट होते हैं, और कुलधर्मों के छूटने से समूचे कुल पर अधर्म की धाक जम जाती है, अधर्म के फैलने से कुल-स्त्रियाँ बिगड़ती हैं, स्त्रियों के बिगड़ने पर वर्ण-संकर होता है, वर्ण-संकर होने से यह समग्र कुल को निश्चय ही नरक में ले जाता है ।

अर्थान्तरन्यास

प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना और दृष्टान्त में किसी विशेष बात का समर्थन अन्य विशेष बात से किया जाता है, इसके विरुद्ध जब प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अन्य अर्थ (अर्थान्तर) के स्थापन करने (न्यास) से समर्थन किया जाता है तब 'अर्थान्तर-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न्यास' अलंकार होता है। (१) कभी किसी विशेष बात (जो एक ही वस्तु या व्यक्ति से सम्बन्ध रखती है) को कह कर उस का समर्थन सामान्य बात (जो साधारणतः बहुत सी वस्तुओं पर घटती हो—किसी विशेष पर नहीं) से किया जाता है। और (२) कभी सामान्य बात का विशेष से। विशेष का सामान्य से समर्थन, जैसे,

कृष्ण ने बचाया व्रज इन्द्र के प्रकोप से था,
करते महान जन काम कौन से नहीं?

यहाँ 'कृष्ण का व्रज की रक्षा करना'—एक विशेष बात है, इसका समर्थन महान जन कौन से काम नहीं करते'—यह सामान्य (साधारण) बात कहकर किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत (वर्ण्य) में अप्रस्तुत (अवर्ण्य) का स्थापन करने से अर्थान्तरन्यास हुआ।

इसी तरह निम्नलिखित अवतरण में सामान्य का विशेष से समर्थन हुआ है:—

जिसके आने से सुख मिलता
उसके जाने से दुख होता
सूर्योदय से सरसिज खिलता
उसके बिना संकुचित होता

यहाँ पहली दो पंक्तियों में एक साधारण तथ्य (जिसके संयोग से सुख मिलता है, उसके वियोग से दुःख प्राप्त होता है) कहा गया है; इसका समर्थन एक विशेष तथ्य (सूर्य के निक-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लने पर कमल खिलता है; परन्तु उसके डूबने पर कुँभला जाता है) के द्वारा किया गया है। इस प्रकार अप्रस्तुत में प्रस्तुत का स्थापन करने से अर्थान्तरन्यास हुआ।

इस अलंकार के कुछ अन्य उदाहरण अधोलिखित अवतरणों में मिलेंगे:—

१. (क) फिर व्यूह-भेदन के लिए अभिमन्यु उद्यत क्यों न हो?
क्या वीर-बालक शत्रु का अभिमान सह सकते कहो?

(ख) मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवितेश लड़ें नहीं?
तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं?

(ग) जमदडंहू सो रछत जो नित, दंड तिनि मोकों दियो

× × × ×

शंबूक तव पद नमत, माँगत भक्ति भव-भय-हारिनी
सतसंग में यदि मृत्यु हू मिलि जाय, सोऊ तारिनी

(घ) हालाहल कर पान शंभु ने अमरों को कर दिया अभय
परहित-हेतु उठा रखते कुछ नहीं महज्जन सदय-हृदय

(क) बिना गुणों के, नाम-मात्र से कोई बड़ा न हो सकता
कहलाने से कनक, धतूरा के, क्या गहना बन सकता?

(ख) बड़े जनों को चिन्ताएँ अति, दीनों की निश्चिन्त दशा
घोड़ों पर कोड़े चलते हैं, नहीं चीटियाँ खाँय कशा[1]

(ग) राम भजन बिनु मिटहिं न कामा,
थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा?

---

१. कोड़ा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(घ)......................समय फिरे रिपु होहिं पिरीते
भानु कमल कुल पोषनिहारा, बिनु जरि जारि करै तेहि छारा

(ङ) महापुरुष अपनी शरण में आये हुए को कभी नहीं छोड़ते, परन्तु आप न जाने क्यों मेरी रक्षा करने से आनाकानी कर रहे हैं!

पूर्वोक्त 'दृष्टान्त' में भी दो समान वाक्य होते हैं, परन्तु उनमें उपमेय और उपमान—ये दो वाक्य होते हैं और उनमें समानता-सूचक बिंब-प्रतिबिंब भाव से उनके साधारण धर्म मिलते-जुलते हैं। यहाँ 'अर्थान्तरन्यास' में उपमेय और उपमान वाक्य नहीं होते और न उनका भाव ही बिंब-प्रतिबिंब होता है। उसमें किसी एक बात का समर्थन दूसरी बात से किया जाता है।

अप्रस्तुत-प्रशंसा[1]

जब अप्रस्तुत का ऐसे ढंग से वर्णन किया जाता है कि उस से प्रस्तुत का ज्ञान हो जाता है, तब अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार होता है। दूसरे शब्दों में, जब जिस विषय में कुछ कहना होता है, उसे साफ़ या स्पष्ट शब्दों में न कहकर, ऐसे तरीक़े से कहा जाता है कि उससे असली तत्व जान लिया जाता है, तब अप्रस्तुत प्रशंसा होती है। जैसे अभिमन्यु ने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण से कहा—

---

१. "अप्रस्तुतै प्रशंसिये प्रस्तुत लीने बात" (ललित ललाम)

इस अलंकार के नाम के उत्तरार्ध अंश 'प्रशंसा' का अर्थ 'स्तुति' नहीं, 'वर्णन' है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अब इस समय तुम निज जनों को एक बार निहार लो

यहाँ अभिमन्यु का मुख्य अभिप्राय (प्रस्तुत विषय) था यह कहना कि—'अब तुम मेरे हाथ से मारे जाओगे'। ऐसा साफ-साफ न कहकर उसने 'तुम अपने लोगों को बस एक बार देखलो' ऐसे (अप्रस्तुत) कथन के द्वारा वह आशय प्रकट किया।

अप्रस्तुत के विविध प्रकार[1] हो सकते हैं। जैसे—

अप्रस्तुत प्रशंसा के भेद

(१) कारण, (२) कार्य, (३) सामान्य, (४) विशेष, और (५) सदृश या सारूप्य। क्रमशः इन सब के उदाहरणों से इन्हें स्पष्ट किया जाता है।

(१) कारण-निबन्धना में कहना तो होता है कार्य, पर कहा जाता है कारण। जैसे—(राम सीता को अपने साथ बन नहीं लिवा जाना चाहते, पर ऐसा न कहकर उन्हें उनके साथ वन क्यों न जाना चाहिए—इस का कारण बतलाते हैं)

कुस कंटक मग कंकर नाना, चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना[2]

---

१. कारज मिस कारण कथन, कारण के मिस काज।
कहुँ सामान्य बिसेस ह्वै, थात ऐस ही साज॥
कहूँ सरिस सिर डारि के, कहै सरिस सों बात।
अप्रस्तुत परसंस के पंच भेद अवदात॥ (अलंकार मंजूषा)

२. पदत्राण, जूता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ 'वन यात्रा न करने,' (इस कार्य) का उल्लेख न करके इस (कार्य) के बाधक, मार्ग के काँटों, कंकड़ों आदि (कारण) के द्वारा इस (कार्य) का संकेत किया गया है।

२. कार्य के कथन के बहाने कारण का लक्ष करने पर कार्य-निबन्धना होती है। जैसे—

राधे को बनाय विधि धोये हाथ, ताको रंग—
जमि भयो चन्द, हाथ झारे भये तारे हैं

यहाँ 'राधा की अत्यन्त सुन्दरता की रचना'—यह कारण है—इसका स्पष्ट कथन नहीं हुआ; यह इस सौन्दर्य रचना के कार्य—हाथ धोने के अनन्तर चंद्रमा और तारों की उत्पत्ति—के बहाने बतलाया गया है।

३. अप्रस्तुत सामान्य के कथन के द्वारा प्रस्तुत विशेष का बोध कराने पर सामान्य निबन्धना होती है। जैसे—

बलवानों से वैर ठानकर जो जन रहते नहीं सचेत
घर में आग लगा करके वे सोते हैं आनन्द समेत॥

यहाँ कोई किसी बलवान शत्रु से सचेत रहने की विशेष बात कहना चाहता है, परन्तु ऐसा न कहकर एक सामान्य सिद्धान्त द्वारा उसका बोध कराता है।

४. जहाँ अप्रस्तुत विशेष के द्वारा प्रस्तुत सामान्य का बोध कराया जाता है वहाँ विशेष निबंधना होती है। जैसे—

बढ़ई वन में सीधे सीधे वृक्षों ही को काटे है।
किन्तु वहाँ टेढ़े-मेढ़े तरुओं को कोई न छाँटे है॥

यहाँ इस विशेष तथ्य को कहकर 'संसार में सब सीधों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को कष्ट देते हैं, टेढ़ों से बोलने तक का साहस किसी को नहीं होता ' इस सामान्य बात को कहा गया है।

५. जब समान [मिलता-जुलता] अप्रस्तुत कहकर प्रस्तुत लक्ष्य होता है तब सदृश या सारूप्य निबंधना होती हैं। इसका दूसरा नाम 'अन्योक्ति' है जैसे—

चाहे सूखा पड़े विश्व में हंस न पीता गड्ढों का जल

यहाँ कहना है कि विवेकी पुरुष कभी अनुचित काम नहीं करते, परन्तु स्पष्ट शब्दों में ऐसा न कहकर हंस के ऊपर यही आशय डाला गया है।

समासोक्ति[1]

उपर्युक्त 'अन्योक्ति' में अप्रस्तुत के वर्णन के द्वारा प्रस्तुत की सूचना दी जाती है; उसमें जिसके विषय में कहना होता है, उसके विषय में स्पष्ट न कहकर दूसरे के द्वारा कहा जाता है; परन्तु; इसके विपरीत जब प्रस्तुत[2] के वर्णन में समान अर्थ सूचक विशेषण शब्दों के द्वारा अप्रस्तुत[3] का बोध कराया जाता है तब समासोक्ति अलंकार होता है। यह वर्णन कभी श्लेष के द्वारा होता है और कभी बिना श्लेष के ही साधारण शब्दों के द्वारा। ('समास' का अर्थ है 'संक्षेप'। इससे समास+उक्ति' = [प्रस्तुत और अप्रस्तुत] अर्थों का एक ही अर्थ के कथन के द्वारा वर्णन होना)। जैसे—(बिना श्लेष वाले शब्दों द्वारा)

१. "जहां प्रस्तुत में होत है अप्रस्तुत को ज्ञान" (ललित ललाम)
२. जिसका वर्णन करना हो, जो प्रधान हो।
३. जिसका वर्णन न करना हो, जो अप्रधान हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुमुदिनिहू प्रमुदित भई साँझ कलानिधि जोय

इसमें प्रस्तुत (प्रधान) अर्थ तो यह है कि 'संध्या समय चन्द्रमा को उदय हुआ देखकर कुमुदिनी खिल गई'; परन्तु यहाँ किसी ऐसी स्त्री का भी (जो अप्रस्तुत—अप्रधान—है) बोध कराया जाता है, जो अपने प्रियतम के आगमन से संध्या समय प्रसन्न हो रही हो। ऐसे ही—

सो दिल्ली अस निबहुर देसू, केहि पूँछउ को कहँ संदेसू।
जो कोइ जाइ तहाँ कर होई, जो आवै किछु जान न सोई।
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा, जो,रे, गयउ सो बहुरि न आवा।

में चित्तौड़ नरेश रतनसेन के दिल्ली में अलाउद्दीन के यहाँ कैद हो जाने पर उसके समाचार न मिलने पर, उसकी स्त्री पद्मावती की इस उक्ति में सारे वाक्य कथा-प्रसंग के भीतर प्रस्तुत प्रसंग का वर्णन करते हैं; परन्तु इसमें परलोक यात्रा का, और वहाँ से फिर वापिस न आने का भी संकेत है। यहाँ वाच्यार्थ को प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ को अप्रस्तुत माना गया है, और इस तरह दिल्ली-गमन में परलोक-गमन का आरोप किया गया है। अस्तु, यहाँ समासोक्ति अलंकार है:—

इसी प्रकार नीचे लिखे अवतरण में श्लेष के द्वारा इच्छित अर्थ के अतिरिक्त दूसरा अर्थ भी जान पड़ता है—

तू सचमुच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तुझ पर शिव ने की कृपा, यह जानता जहान॥

यहाँ द्विजराज (चंद्रमा, ब्राह्मण) और शिव (शंकर, शिवराज या शिवाजी) श्लिष्ट शब्द हैं। इसके द्वारा प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्णन, जो चन्द्रमा का है, अप्रस्तुत का (ब्राह्मण पर शिवाजी की कृपा करने का) बोध कराता है । इसी तरह—

चन्द्र बिम्ब पूरन भये कूर केतु हठ दाप
बल सों करिहै ग्रास यहि जेहि बुध रच्छत आप

में अभिप्रेत अर्थ है "पूर्णिमा के चन्द्रमा को, जिसकी रक्षा 'बुध' ग्रह कर रहा है, आज केतु ग्रसेगा" परन्तु चन्द्र, केतु और बुध के श्लेष से क्रमशः चन्द्रगुप्त मौर्य, (उसका शत्रु) मलयकेतु और (उसका रक्षक, मन्त्री) चाणक्य—इन अर्थों के कारण इसका अप्रस्तुत अर्थ यह होता है कि "चन्द्रगुप्त के पूर्ण वैभव को, जिसकी रक्षा, हे चाणक्य, आप कर रहे हैं, मलयकेतु (का मन्त्री राक्षस) नष्ट कर देगा ।

सहोक्ति[1]

जब (संग, साथ, सह आदि शब्दों या इनके पर्याय वाचक शब्दों के बल से) एक ही क्रिया-शब्द दो अर्थों का बोध कराता है

---

१. "सो सहोक्ति सब साथ ही बरने रस सरसाय ।" (भाषा भूषण) 'सह' या इसके अन्य पर्याय के होते हुए भी किसी कथन में 'सहोक्ति' होने के लिए उपमेय-उपमान-भाव का चमत्कार होना जरूरी है । 'नाइ मुनिहि सिर सहित समाजा' में 'सहित' शब्द है, परन्तु चमत्कार का अभाव है । इससे इसमें सहोक्ति नहीं मानी जायगी । इसी प्रकार 'गउन चरावत गोप सँग हरि जमुना के तीर' में भी 'संग' शब्द का प्रयोग तो हुआ है, परन्तु इसमें उपमेय-उपमान-का सा भाव नहीं है । इससे इसमें भी 'सहोक्ति' नहीं है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तब 'सहोक्ति' अलंकार होता है। **दो अर्थों में एक प्रधान होता है, दूसरा गौण या अप्रधान। जैसे—**

त्रिभुवन जय समेत वैदेही, बिनहि बिचारि बरै हठि तेही।

में 'समेत' की सहायता से 'बरै' क्रिया 'त्रिभुवन-जय' और 'वैदेही'—इन दो अर्थों का बोध कराती है। इसमें से पहला प्रधान है और दूसरा अप्रधान।

इसी प्रकार नीचे-लिखे उद्धरणों में भी सहोक्ति है:—

१. विद्या ही के साथ विनय भी उदित हुई शुचि

२. पति-प्रयाण के संग ही चला चाहते प्राण

३. गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाय लियो
नृपगन मुखनि समेत नमित कर सजि सुख सबनि दियो
आकरस्यो सिय-मन-समेत हरि, हरख्यो जनक-हियो
भंज्यो भृगुपति-गर्व-सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो

विनोक्ति[1]

जैसे 'सह' अथवा उसके पर्यायों के आश्रय से सहोक्ति होती होती है, वैसे ही 'बिना' 'रहित', 'हीन' आदि शब्दों की सहायता से जहाँ एक के बिना दूसरा पदार्थ शोभित अथवा अशोभित कहा जाता है, वहाँ 'विनोक्ति' अलंकार होता है। **जैसे,**

१. जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी

अथवा—

२. बिना कपट की प्रीति भली है

इनमें—पहले में 'बिना' की सहायता से 'देह' और 'नदी'

---

1. **"जहँ प्रस्तुत कछु बात बिन कै नीको, कै हीन"**

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का अशोभित होना और दूसरे में उसी शब्द की सहायता से 'प्रीति' का शोभित होना बतलाया गया है।

ऐसे ही नीचे लिखे उद्धरणों में विनोक्ति है:—

१. पण्डितों के बिना सभा किसी काम की नहीं
२. चन्द्रमा के बिना रात भयानक लगती है
३. आत्मसम्मान के बिना मनुष्य पशु से गया बीता है
४. गुन बिनु धनु जैसे, गुरु बिन ग्यान जैसे,
मान बिनु दान जैसे जल बिन सर है
कंठ बिन गीत जैसे, हेत बिन प्रीत जैसे,
बेस्या रसरीति जैसे फूल बिन तर है
तार बिन जंत्र जैसे, स्याने बिन मंत्र जैसे,
नर बिन नारि जैसे, पूत बिन घर है
'टोडर' सुकवि जैसे, मन में बिचारि देखो,
धर्म बिन धन जैसे, पंखी बिन पर है
५. जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी,
तैसेहिं नाथ पुरुष बिनु नारी
६. बिन घन निर्मल सरद नभ राजत है निज रूप
अरु रागादिक दोष बिन मुनि मन बिमल अनूप

परिकर[१]

जब प्रस्तुत (वर्ण्यविषय, विशेष्य) का वर्णन करने के लिए उसके साथ ऐसे विशेषण का प्रयोग किया जाता है जो साभि-

१—'है परिकर आसय लिये जहाँ विसेसन होय' (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्राय (अभिप्राय, आशय, से युक्त) होता है तब 'परिकर' अलंकार होता है। 'साभिप्राय विशेषण' से तात्पर्य यह है कि उस के संयोजित होने से विशेष्य में विशेष चमत्कार आ जाता है। जैसे—

देहु उतर अनु कहौ कि नाहीं, सत्यसंध तुम रघुकुल माँही

यहाँ कैकेयी ने तुम (दशरथ) के लिए 'सत्यसंध' विशेषण का प्रयोग विशेष उद्देश्य से किया है। वह उनसे सच-सच कहलाना चाहती थी कि उसके माँगे हुए वर वे देंगे या नहीं? यदि यहाँ 'सत्यसंध' के अलावा किसी दूसरे विशेषण का प्रयोग होता तो यह चमत्कार न आता।

ऐसे ही—

दया की जल-धारा बरसा कर भूतल पर,
घनश्याम राम ताप शान्त कर देवेंगे[२]

में 'राम' के लिए बहुत सारगर्भित विशेषण 'घनश्याम' प्रयुक्त हुआ, क्योंकि भूतल का ताप (गर्मी या वेदना) शान्त करने के लिए घन-श्याम (काले-काले बादल) की आवश्यकता होती ही है।

इसी प्रकार—

चक्रपाणि हरि को सम्मुख लेख असुर सभी भग जाते हैं

'हरि' का विशेषण 'चक्रपाणि' साभिप्राय है। क्योंकि उन के हाथ में चक्र होने के कारण असुर उनके सामने नहीं ठहर सकते।

२—इस उदाहरण में श्लेष और रूपक की संसृष्टि भी है। (संसृष्टि = कई अलंकारों का ऐसा मेल जिसमें वे अलग-अलग जान पड़ें)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परिकरांकुर

जैसे अभिप्राय-पूर्वक विशेषण के प्रयोग से परिकर होता है वैसे ही साभिप्राय विशेष्य का प्रयोग करने से 'परिकरांकुर' होता है। इसमें क्रिया का अभिप्राय विशेष्य-पद में होता है। जैसे—

हे हरि, कस न हरहु भ्रम भारी

में 'हरि' (हरण करने वाला) भगवान का यह नाम अभिप्राय-पूर्वक लिया गया है। भ्रम के हरने के लिए हरि (हरणकर्ता) की आवश्यकता ठीक ही है। इसी प्रकार—

परकारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ
घन आनँद जीवनदायक हौ कबौं मेरिऔ पीर हिये परसौ
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों अँसुवान कों लै बरसौ

में भी बादल का परजन्य (पर्जन्य) और जीवनदायक (प्राण जल दाता) नाम (विशेष्य) बहुत ठीक प्रयुक्त हुआ है; क्योंकि उससे पर-कार्य (दूसरे का काम, आँसुओं को लेकर विश्वासघातक सुजान (प्रेमिका से तात्पर्य है) के यहाँ बरसने का काम) करने का अनुरोध किया जा रहा है।

'तुलसिदास भव-व्याल-ग्रसित तब सरन उरग-रिपु-गामी

में 'उरग-रिपु-गामी' विशेष्य साभिप्राय है, क्योंकि उरग-रिपु (गरुड़) पर सवार होने वाले (विष्णु) ही भव-व्याल (संसार-रूपी सर्प) से रक्षा कर सकते हैं। पौराणिक आख्यान के अनुसार गरुड़ सर्पों का शत्रु और भक्षक है)।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अभिमन्यु के मारे जाने पर उत्तरा के इस विलाप में भी 'सहचरी' और 'अनुचरी' शब्दों में परिकरांकुर है:—

जो **सहचरी** का पद मुझे तुमने दया कर था दिया
वह था तुम्हारा इसलिए प्राणेश ! तुमने ले लिया
पर जो तुम्हारी **अनुचरी** का पुण्यपद मुझको मिला
है दूर रहना तो उसे, सकता नहीं कोई हिला

नीचे लिखे अवतरणों में भी क्रमशः 'रस' और 'जीवन' शब्दों में परिकरांकुर है :—

१. रसमयी लख वस्तु अनेक को,
सरसता अति भूतल व्यापिनी
समझ था पड़ता बरसात में,
उदक का **रस** नाम यथार्थ है।

२. मतक प्राय हुई तृणराजि भी,
सलिल से फिर जीवित हो गई
फिर सुजीवन जीवन को मिला,
बुध न **जीवन** क्यों उसको कहे ?

व्याजस्तुति[1]

जब किसी कथन में साधारणतया देखने या सुनने में निंदा-

१. "निंदा में स्तुति पाइये, स्तुति में निंदा होय।
काज स्तुति सो कहत हैं, कवि-कोविद सब कोय।"

कुछ अलंकार ग्रंथों में निंदा में स्तुति होने से 'व्याजस्तुति' और स्तुति में निंदा होने से 'व्याजनिंदा'—ये दो अलग-अलग नाम इसी अलंकार के दिये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सी जान पड़े पर वास्तव में हो प्रशंसा; अथवा प्रशंसा-सी जान पड़े पर हो असल में निन्दा तब 'व्याजस्तुति' अलंकार होता है। जैसे—(निन्दा में स्तुति)

गंगा क्यों टेढ़ी चलती हो, दुष्टों को शिव कर देती हो
क्यों यह बुरा काम करती हो, नरक रिक्त कर दिवि[1] भरती हो

यह उक्ति देखने पर गंगा की निन्दा-सी लगती है, पर वास्तव में है उनकी स्तुति। इसका आशय यह है कि गंगा में स्नान करने वाले शंकर के स्वरूप को पाकर मुक्त हो जाते हैं, और लोग नरक मे न जा कर स्वर्ग में रहते हैं।

इसी तरह इन छन्दों में भी गंगा की निंदा जान पड़ती है, पर है वास्तव में स्तुति—

१. जोग जप जागौ छाँड़ु, जाहु न परागै भैया
मेरी कहि आँखिन के आगे सुनौ आवैगी।
कहै पदमाकर न ऐहै काम सरस्वती
साँचहू कलिन्दी कान करन न पावैगी॥
लैहै छीनि अंबर दिगंबर कै जोरावरी
बैल पै चढ़ाय फेरि सैल पै चढ़ावैगी।
मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की
सुगंगा गज खाल की खिलत पहरावैगी॥
२. एक महापात की सुगात की दसा बिलोकि,
देत यों उराहनो सुआठहू पहर है।

१. स्वर्ग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मीच समय तेरे उत आय गए कंठ इत,
व्यापि गयो कंठ कालकूट सौं जहर है ॥
आय चढ़ि सीस मोहि दीन्हीं बकसीस औ,
हजार सीसवारे की लगाई अटहर है ।
मोहि करि नंगा अंग अंगन भुजंगा बाध्यो,
एरी, मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है ॥

(२) स्तुति में निन्दा—

राम साधु, तुम साधु सुजाना, राम मातु भलि, मैं पहिचाना

यहाँ कैकेयी दशरथ से कहती है कि राम, तुम, और कौशल्या कैसे हो—यह मैं जान गयी। तुम सब दुष्ट हो, छली हो; बुरे हो। किन्तु ऊपर से देखने में, कथित पंक्ति में राम, दशरथ, कौशल्या की 'साधु या भलि' से स्तुति जान पड़ती है, जो वास्तव में है नहीं।

इसी भाँति इसमें भी सेमर की वास्तव में निंदा ही है, जोकि जान पड़ती है स्तुति—

सेमर तेरो भाग्य यह कहा सराह्यो जाय ?
पक्षी करि फल आस जो तुहि सेवत नित आय

इसी प्रकार आगे दी गई सीता की लक्ष्मण के प्रति उक्ति में जान पड़ती है शूर्पणखा की स्तुति, पर है वास्तव में पर-पति से भोग करने की इच्छा रखने के कारण उसकी निन्दा।

याचक को निराश करने में हो सकती है लाचारी
किन्तु नहीं आई है आश्रय लेने को यह सुकुमारी
देने ही आई है तुमको निज सर्वस्व विना संकोच
देने में कार्पण्य तुम्हें हो, तो लेने में है क्या सोच ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निम्न लिखित अवतरणों में भी व्याजस्तुति अलंकार है—

१. कासीपुरी की कुरीति बुरी जहँ देह दिये पुनि देह न पाइये।

२. माधव आपु सदा के कोरे
दीन दुखी जो तुमको जाँचत सो दानिन के भोरे
लेत एक को देत दूसरेहि दानी बनि जग माहीं
ऐसो हेर फेर नित नूतन लागे रहत सदाहीं
भाँति भाँति के गोपिन के जो तुम प्रभु चीर चुराये
अति उदारता सों ले वेही द्रोपदि को पकराये
रतनाकर को मथत सुधा को कलस आप जो पायो
मंद मंद मुसकात मनोहर सो देवन को प्यायो
मत्त गयंद कुवलिया के जो खेल प्रान हरि लीने
बड़ी दया दरसाय दयानिधि सो गजेंद्र को दीने
ऐसी तूमा पलटी के गुन नेति नेति स्रुति गावैं
सेस महेस सुरेस गनेसहु सहसा पार न पावैं
या कारन जग में प्रसिद्ध अति 'निबटी रकम' कहाओ
'बड़े बड़े तुम मठा धुँवारे' क्यों साँची बुलवाओ

अर्थ-श्लेष

शब्द-श्लेष के विषय में यथास्थल बताया जा चुका है कि वहाँ किसी शब्द के एक से अधिक अर्थ होते हैं, परन्तु यदि उस का पर्यायवाचक शब्द उसके स्थान पर रख दिया जाता है तो श्लेष मिट जाता है। जैसे—

बहुरि सक्रसम बिनवउँ तेही, संतत सुरानीक हित जेही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में 'सुरानीक' शब्द श्लिष्ट है। इसके अर्थ हैं; देव-सेना (सुर+अनीक) और सुरा (शराब) नीक (अच्छी) लगती है—यदि 'सुर' का एक पर्याय 'देव' इसके स्थान पर रख दिया जाय तो (देव नीक से) दूसरा अर्थ (सुरा+नीक) न रहेगा। इस प्रकार यहाँ श्लेष न रह जायगा।

इस प्रकार के शब्द-श्लेष के विपरीत जहाँ वाक्य में एक या उससे अधिक स्वभाव से एकार्थवाचक शब्द हों, जिन के एक से अधिक (कई) पक्षों में अर्थ लगते हों वहाँ अर्थ-श्लेष अलंकार होता है। शब्दश्लेष में एक शब्द के दो अर्थ होते हैं, और उसके स्थान में उसका पर्याय रखने से श्लिष्टता नहीं रहती, परन्तु अर्थश्लेष में शब्दों का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है। उसका पर्याय रखने पर भी श्लेष ज्यों का बना रहता है। जैसे—

१. रंचहि सों ऊँचे चढ़ैं रंचहि सों घटि जाहिं
तुला-कोटि, खल दुहुन की सदृश रीति जग माहिं

यहाँ तुला-कोटि (तराजू की डंडी) और खल की समता 'रंचहि सों ऊँचे चढ़ैं' और 'रंचहि सों घटि जाहिं'—इन दो वाक्यों से की गयी है। इन दोनों वाक्यों के या इनके किसी शब्द के दो-दो अर्थ नहीं है। हाँ, प्रकरण से तुला पक्ष में 'डंडी चढ़ना' का आशय उसका ऊँचा होना होगा और खल-पक्ष में 'बढ़ना' या 'अभिमान'; तथा तुला-पक्ष में 'घटने' का अर्थ डंडी का नीची होना होगा और खलपक्ष में 'घटना' (अवनति करना) या 'दीन होना।' अतः इस दोहे की प्रथम पंक्ति में आए हुए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सभी शब्दों का अर्थ एक ही है, फिर भी तुला की डंडी और खल दोनों के पक्ष में घटित होते हैं, इससे यहाँ अर्थश्लेष है।

२. पर मंदिर जाय बुलाय बिना[1] मृदु बात[2] बनाय रिझायो करैं
कविता कमनीयन की पतियान पियूष-प्रवाह[3] बहायौ करैं
गुन गौरवता अपनी न गनैं[4] निगुनीनहु के गुन[5] गायौ करैं
परमारथ स्वारथ साधत यौं सम साधु असाधु कहायौ करैं

इस छन्द के पहिले तीन चरणों में प्रयुक्त सभी वाक्यों और उनके अलग-अलग शब्दों के भी एक ही अर्थ हैं, पर वे साधु और असाधु दोनों पक्षों में घटित हैं; अतः यहाँ भी अर्थश्लेष है।

इसी तरह नीचे लिखे छन्द में भी पहली तीन पंक्तियों में प्रयुक्त शब्दों का एक ही अर्थ है, फिर भी ये खल और मच्छड़ दोनों के पक्षों में लागू होते हैं:—

---

१. दोनों पक्षों में—बिना बुलाए, अपने आप। २. साधु पक्ष में आशय है—मीठी मीठी बातें; असाधु पक्ष में भी यही अर्थ है पर आशय है दिल खुश करने वाली चाटुकारी से। ३. साधु पक्ष में आशय—मनोहर कविताओं की पंक्तियाँ सुना सुनाकर अमृत का सा मधुर प्रवाह बहाते हैं। असाधु पक्ष में आशय है—जी को लुभाने वाली कविताओं के द्वारा मधुरता का संचार करने से। ४. साधुओं को अपने महत्व का अभिमान नहीं रहा करता; असाधुओं को अपनी इज्जत का ख्याल नहीं रहता—यह आशय है। ५. साधु मूर्खों की भी निन्दा नहीं करते—और असाधु मूर्खों का गुण गाते है—यह आशय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पहले पद में गिरता है फिर पृष्ठ-मांस खादन करता
फिर कानों को धीरे-धीरे सुन्दर शब्दों से भरता
छिद्र देख तब अकस्मात निर्भय प्रवेश वह है करता
दुष्टों के सब चरित मशक निर्द्वन्द नित्य ही है करता

विरोधमूलक-अर्थालंकार

विरोध और विरोधाभास

जब दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाता है, अथवा जाति,[1] द्रव्य[2], गुण और क्रिया के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोधी काम होता है, तब "विरोध"[3] अलंकार होता है। जैसे, किसी वियोगिनी स्त्री की निम्नलिखित दशा में दो परस्पर विरोधी जातियों (जल और आग) का एक साथ होना वर्णित है।

सुलगी अनुराग की आग वहाँ, जल से भरपूर तड़ाग जहाँ[2]।

---

१. जिस शब्द में एक ही तरह के बहुत से व्यक्तियों या पदार्थों का ज्ञान होता है, उसे जातिवाचक शब्द कहते हैं। जैसे—मनुष्य पुस्तक, नदी आदि।

२. जिस शब्द में एक ही व्यक्ति का ज्ञान होता है, उसे 'नाम' कहते हैं। वह शब्द जिस किसी का नाम होता है उसे 'द्रव्य' कहते हैं। जैसे राम। यह शब्द नाम है, और जिस व्यक्ति का नाम है वह द्रव्य।

१. 'द्रव्य' क्रिया, गुन मैं जहाँ, उपजत काज-विरोध
ताको कहत विरोध हैं, भूषन सुकवि सुबोध [शिवराज भूषण]

२. जल से पूर्ण नेत्रों से अभिप्राय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसे ही, "हे शिवाजी, तुम्हारे श्वेत (निर्मल) यश से शत्रुओं के मुँह काले पड़ जाते हैं।" इस में भी दो परस्पर विरोधी गुण (श्वेत और काला) एकत्रित हुए हैं। इसी प्रकार—

"जो जन करते नमन हैं उन्नत वे होते सदा"

में दो विरोधी क्रियाएँ (नवना—झुकना और उन्नत होना उठना) एक साथ आई हैं।

इस कारण उपर्युक्त सभी उदाहरणों में 'विरोध' अलंकार हुआ। परन्तु यदि यह विरोध सचमुच होता, तो इनमें अलंकारता न होती, उलटा दोष होता। देखने में यहाँ विरोध जान पड़ता है, उसका आभास भान होता है, परन्तु वह है, नहीं—यह इन शब्दों के अर्थों पर ध्यान देने से स्पष्ट विदित हो जाता है। इसलिए इसे 'विरोध' न कहकर 'विरोधाभास' कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। परन्तु महाकवि भूषण ने इन दोनों (विरोध और विरोधाभास) को भिन्न अलंकार माना है। उन्होंने 'विरोध' का जो उदाहरण दिया है उसका एक वाक्य ऊपर दूसरे उदाहरण में अनूदित करके दिया जा चुका है। भूषण के अनुसार 'विरोधाभास' वहाँ होता है जहाँ सच्चा विरोध न होने पर भी विरोध-सा जान पड़ता है। उन्होंने इसके उदाहरण में कहा है, "हे शिवाजी, तुम सूर्यवंश में उत्पन्न होकर भी कुल-चंद कहलाते हो।" यहाँ 'सूर्य' और 'चन्द्र' में विरोध सा जान पड़ता है, परन्तु वास्तव में है नहीं (कुलचंद = वंश में श्रेष्ठ) परन्तु यदि विरोधालंकार में सच्चा विरोध होता तो जैसा कह चुके हैं, उसमें सुन्दरता होती ही न। वहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भी तो विरोध जान-पड़ता है। अस्तु, विरोधाभास[1] वहाँ होता है, जहाँ असल में विरोध न होने पर भी देखने में विरोध-सा भासित होता है। इसी को कुछ लोग विरोध भी कहते हैं। यह विरोध कई प्रकार से जान पड़ सकता है। कहीं जाति का जाति से, कहीं जाति का उसके गुण अथवा क्रिया से; और कहीं क्रिया, गुण और जाति में आपस में या किन्हीं दो में विरोध-सा मालूम होता है। नीचे हरेक प्रकार के विरोध का एक-एक उदाहरण दिया जाता है। परन्तु उनके शब्दार्थ पर ध्यान देने से प्रकट हो जाता है कि उनमें वास्तव में विरोध नहीं है।

१. सूर्यवंश में मुझ-जैसा कालिमा-पूर्ण उत्पन्न हुआ

(जाति से जाति का विरोध)

२. चंदन, उसीर, चोबा दाहक वियोगिनी को हुए

(जाति का गुण से विरोध)

३. शंकर ने विष पीकर अमरों को अमर किया जगतीतल में

(जाति का क्रिया से विरोध)

४. तेरे ये कटुवचन मुझे अतिशय ही मीठे लगते हैं

(गुण का गुण से विरोध)

५. या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम-रंग त्यौं त्यौं उज्जलु होय

गुण से गुण का विरोध। श्यामरंग, और उज्ज्वल में श्लेष भी है।

---

१. "जहाँ विरोध सो लगत है होत न साँच विरोध" (ललित ललाम)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

६. रहते अयोध्या में, परन्तु रमते हैं राम, अखिल जगत के मनुष्यों के हृदय में (क्रिया का क्रिया से विरोध)

७. तृन ते कुलिस, कुलिस[1] तृन करई
(द्रव्य से द्रव्य का विरोध)

८. ब्रह्म सदन समसान भाग्यवान भिच्छुक जहाँ
मरन महा कल्यान, बिनवौं तेहि बारानसिहि

(श्मशान जाति का ब्रह्मलोक द्रव्य से विरोध। इसमें गुण और जाति तथा गुण और क्रिया का भी विरोध है)

९. मृदुल मधुर हू खल-बचन दाहक होत विशेष
यद्यपि कठिन तउ सुख करन सज्जन-वचन हमेश
(गुण और क्रिया का विरोध)

१०. श्रीपति श्री दैबो सुन्यो विप्र सुदामहिं ढेर
जाचक भे लालच लगे सुरतरु, धनद, कुबेर

(याचक गुण का सुरतरु, धनद, सुमेरु—इन द्रव्यों से विरोध)

११. 'नारायण' मुख से सुनते ही डर कर लगा काँपने काल
(क्रिया का द्रव्य से विरोध)

विषम[2]

उपर्युक्त 'विरोधाभास' अलंकार में उन पदार्थों का एक दूसरे से संबंध कहा जाता है जिनमें परस्पर भेद होता है, परन्तु

---

१. कुलिश, वज्र

२. "जहाँ न हैं अनुरूप द्वै, तिनकी घटना होय" (ललित ललाम)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जब ऐसे दो पदार्थों का संसर्ग कराया जाता है जिनका संबंध अनुचित (अयोग्य) होता है तब विषम अलंकार होता है जैसे—

"कहाँ राम के कोमल कर हैं, कहाँ कठोर शरासन शिव का!"

यहाँ 'शिव के कठोर धनुष' और 'राम के कोमल हाथ' का एक साथ होना अनुचित था, पर ऐसा हुआ है। यह विषम (असमान) संयोग है।

इसी प्रकार—

जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया
दो घड़ा तय्यार दूधों का तभी उसने किया
आपदा टाली अनेकों, बुद्धि बल, विद्या दिया
की भलाई की न जाने और भी कितनी क्रिया
तीन-पन[३] है बीतता तो भी तनिक चेते नहीं
हम पतित ऐसे हैं कि उसका नाम तक लेते नहीं

इसमें भी मनुष्य के जन्म से पहले से ही लेकर आजीवन उसके साथ अनेक उपकार करने वाले परमात्मा, और 'उन उपकारों को न मानने वाले मनुष्य' में (उपकारी और कृतघ्न में) संबंध स्थापित किया गया है। यह संबंध अयोग्य है।

इसी तरह नीचे लिखे अवतरण में भी बेमेल वस्तुओं को एक जगह लाया गया है, इसमें भी विषम अलंकार है—

काले कुत्सित कीट का कुसुम में कोई नहीं काम था
काँटे से कमनीयता कमल में क्या है न कोई कमी?
दंडों में कब ईख के विपुलता है ग्रंथियों की भली।
हा दुर्दैव प्रगल्भते, अपटुता तूने कहाँ की नहीं।

---

३. तीन-पन = तीसरापन, वृद्धावस्था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

असंगति[1]

पूर्वोक्त 'विरोधाभास' में भिन्न-भिन्न स्थलों में रहने वाले पदार्थों को एक ही स्थल में बतलाया जाता है, परन्तु जब एक स्थल में रहने वाले कारण और कार्य भिन्न भिन्न स्थलों में रखे जाते हैं अर्थात् जब कारण कहीं हो और उसका कार्य वहाँ पर न होकर कहीं अन्यत्र हो और इस प्रकार दोनों की संगति (साथ) में विरोध सा जान पड़े, परन्तु हो न, तब असंगति अलंकार होता है। दूसरे शब्दों में, जहाँ कारण और कार्य का अथवा केवल कार्य का, स्वाभाविक संबंध से उलटा वर्णन हो, परन्तु उसमें जो उलट फेर हो वह रमणीय हो, वहाँ असंगति होती है। जैसे—

कृष्ण मथुरा के कारागार में तो पैदा हुए
आनन्द मनाया गया किन्तु नन्द-धाम में

यहाँ कृष्ण की उत्पत्ति से आनन्द के मनाये जाने का कारण तो हुआ मथुरा में और आनन्द मनाया गया—उस कारण का कार्य हुआ—नंद के घर, गोकुल में। कारण और कार्य में इतनी दूरी का व्यवधान पड़ा।

ऐसे ही—

बूढ़े बाबा नेत्रों में लगाकर दन्त-मंजन औ
दाँतों में सुरमा को, चले हैं ब्याह करने

में दाँतों में लगाया जाने वाला मंजन नेत्रों में और नेत्रों का

१. "होत हेतु जहँ और थल, काज और थल होय"
(ललित ललाम)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सुरमा दाँतों में लगाने से एक स्थल का काम दूसरे स्थल पर हुआ। यहाँ भी असंगति हुई।

कुछ लोग ऐसे समय में भी असंगति मानते हैं जब किसी कार्य के करने के लिए उद्यत होने पर उसके विपरीत कार्य कर डाला जाता है। जैसे—(किसी वियोगिनी की नवीन बादल देख कर उक्ति)

प्रगट भयो है जलद तू, जग को जीवन दान
मेरो जीवन लेत है, कौन बैर मन आन

जलद का आगमन हुआ था संसार के ग्रीष्म-संतप्त प्राणियों को प्राणदान करने के लिए, परन्तु वह इसके विपरीत वियोगिनी के प्राण लेने लगा। कारण, उसके कारण उसे अपने प्रियतम की अनुपस्थिति अधिक कष्टप्रद हो गयी। यहाँ इस प्रकार जो कार्य करना था उसके विपरीत कार्य करने से कार्य की संगति नहीं बैठी।

नीचे उपर्युक्त तीनों प्रकार की असंगति के कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं:—

१. (अ) कारन कहुँ कारज कहूँ, अचरज कहते बनै न
असि तौ पीवति रकत, पै होत रकत तुव नैन

(ब) सीता-हरण किया रावण ने, बाँधा गया समुद्र निरीह

(स) कोयल तो मतवाली है, पर झूम रही हैं आम्र-बौर

२. (क) पैरों की सुध भूल, महावर को नेत्रों में लगा लिया

(ख) पलनि पीक, अंजन अधर, धरे महावर भाल
आजु मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

३. (क) बामन बलि के यहाँ गये उसका सर्वस्व हरण करने
पर बदले में चार महीने लगे द्वारपाली करने

(ख) मोह नष्ट करने के हित श्रीकृष्ण आपने जन्म लिया
मोहन रूप बनाकर लेकिन व्रजबालाएँ स्ववश किया

अत्यंतातिशयोक्ति में कारण के पहले ही कार्य होता है, परन्तु असंगति में कारण और कार्य भिन्न-भिन्न स्थलों पर होते हैं।

विशेषोक्ति[1]

जैसा कहा जा चुका है, 'असंगति' में कारण और कार्य दोनों होते हैं, परन्तु एक ही जगह नहीं, दूर-दूर; परन्तु जब कारण के मौजूद होने पर भी कार्य नहीं होता तब 'विशेषोक्ति' होती है। जैसे--

व्रजेन्द्र ने यद्यपि तीव्र शब्द में, किया समुत्तेजित सर्व गोप को
तथापि साथी उनके स्वकार्य में, न हो सके लीन यथार्थ रीति से

यहाँ स्वकार्य करने का कारण (श्रीकृष्ण का उत्तेजित करना) मौजूद है फिर भी वह न किया जा सका।

इसी तरह—

रूप सुधा-पान से न नेक भी हुई है कम,
प्रत्युत हुई है तीव्र यह कैसी प्यास है !

में प्यास के बुझाने का कारण (रूप-सुधा का पान) मौजूद है, तो भी कार्य (उसका कम होना) नहीं हुआ।

१. विद्यमान कारन बन्यो तऊ न फल जहँ होत। (अलंकार मंजूषा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसे ही नीचे लिखे अवतरणों में विशेषोक्ति है:—

१. लाग न उर उपदेश, जदपि कह्यो सिय बार बहु

२. शिवाजी की सम्मति कुबेर के सदृश बढ़ी
किन्तु उन्हें लेश अभिमान का हुआ नहीं

३. जो अंधे होते हैं बहुधा प्रज्ञाचक्षु कहाते हैं।
पर हम इस प्रेमान्ध बंधु को सब कुछ भूला पाते हैं

४. लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े, काहु न लखा रहे सब ठाढ़े

विभावना

ऊपर वर्णित विशेषोक्ति में कारण होता है; परन्तु उसका कार्य नहीं होता; परन्तु (१) जब कारण नहीं होता और उसके बिना ही कार्य होता है तब 'विभावना' होती है। बिना कारण के कार्य होने के लिए उसके संबंध में किसी विलक्षण बात की कल्पना की जाती है। इसी प्रकार (२) कभी कभी अपूर्ण कारण से ही कार्य हो जाता है (३) कभी रुकावट होते हुए भी कार्य की सिद्धि होती है, (४) कभी किसी अन्य कारण से कार्य होता है, (५) कभी विपरीत कारण से ही कार्य पूरा हो जाता है और (६) कभी (कारण से कार्य न होकर) कार्य से कारण की उत्पत्ति होती है। इस तरह छः प्रकार की विभावना होती है। नीचे इन सब के उदाहरण क्रमशः दिये जाते हैं:—

१. बिनु पद चले, सुनै बिनु काना,
कर बिनु करै करम विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी,
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ चलने, सुनने, काम करने, भोजन करने और बोलने (कार्यों) के कारण क्रमशः पैर, कान, हाथ, मुख और जिह्वा के अभाव में ही उनकी सिद्धि दिखाई गई है।

२. गुरु गृह पढ़न गये रघुराई, अल्पकाल सब विद्या आई

यहाँ थोड़े समय तक पढ़ने पर ही (पढ़ने का कारण अपूर्ण रहने पर भी) पूर्ण विद्या की प्राप्ति (कार्य) होगया।

३. ज्यों रवि निशा में त्यों ही रहता छिपा है सदा,
तो भी निज ज्योति सब कहीं दिखलाता है

यहाँ (परमात्मा) छिपा रहता है (यह रुकावट है) फिर भी वह सर्वत्र दिखाई पड़ता है (उसकी उपस्थिति का कार्य हो जाता है)

४. क्या देखूँगी न अब कढ़ता इन्दु को आलयों से?
क्या फूलेगा न अब गृह में पद्म सौंदर्यशाली?

यहाँ आलयों (घरों) में चन्द्रमा का निकलना, और कमल का खिलना—ये अन्य कारण से संभवनीय कार्य हैं। अन्य कारण से इसलिए कि घर चन्द्रमा के निकलने या कमल के विकसित होने का कारण नहीं। यहाँ अन्य कारण से कार्य हुआ।

५. कारे कारे घन आकर के अंगारे बरसाते हैं

काले बादलों से पानी बरसता है, न कि आग। आग की ज्वाला बादलों से नहीं निकलनी चाहिए। परन्तु यहाँ बादल से अंगारों की उत्पत्ति हुई है, इस प्रकार विपरीत कारण से कार्य हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

६. राम के कर-कल्पतरु से यश-सागर उत्पन्न हुआ

वास्तव में समुद्र (कारण) से कल्पतरु (कार्य) की उत्पत्ति हुई है, परन्तु यहाँ उलटकर कल्पतरु से समुद्र की उत्पत्ति वर्णित है। इस प्रकार कारण से कार्य न होकर कार्य से कारण हुआ।

नीचे उपर्युक्त विभावना के सब भेदों के कुछ और उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रथम—मुनि तापस जिनते दुख लहहीं, ते नरेस बिनु पावक दहहीं

द्वितीय—(१) महामत्त गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्व

(२) बिना प्रत्यंचा के विषम धनुषों से शर कहीं—
चलाये जाते हैं, हृदय बिंधता है तनु नहीं।

तृतीय—(१) बिपदाहू में होय कै परदुख सहत महान

(२) पान मैं न खाती कभी तो भी ये अधर मेरे
लाल लाल होते जा रहे हैं क्यों प्रवाल-से ?

चतुर्थ—भयो तात निसिचर कुल भूषन

पंचम—(१) खेल खिझाकर भी भार्या को वे सब यहाँ रिझाते हैं

(२) पौन सौं जागत आगि सुनी ही पै पानी सौं लागत आजु मैं देखी

षष्ठ—(१) लोचन-नीरज से यह देखो, अश्रु-नदी बह आई है

(२) निकसत मुख-ससि सो, वचन रस-सागर सुखदैन

इस 'विभावना' से पूर्व-कथित 'विरोध' अलंकार मिलता जुलता है। परन्तु दोनों में अन्तर यह है कि 'विरोध' में विरोधी पदार्थों का संसर्ग कहा जाता है एवं उनमें कारण कार्य का संबंध नहीं होता लेकिन 'विभावना' में कार्य और कारण का नियमित संबंध होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अन्य संसर्ग-मूलक अर्थालंकार

अन्योन्य[1]

जहाँ दो पदार्थों का आपस में, एक दूसरे से (अन्योन्य) संबंध बतलाया जाय वहाँ 'अन्योन्य' अलंकार होता है। जैसे,

कंकण से कर, कर से कंकण की शोभा सचमुच होती

यहाँ कंकण से हाथ की शोभा होती है और हाथ से कंकण की (खाली हाथ अच्छा नहीं लगता, और संदूक में या अन्यत्र रखा हुआ कंकण भी सुशोभित नहीं होता) इस तरह दोनों को एक दूसरे का उत्कर्ष साधक माना गया है। इसलिए 'अन्योन्य' हुआ।

ऐसे ही निम्नलिखित उद्धरणों में यही अलंकार है:—

१. निशि अच्छी लगती है शशि से, शशि का निशि करती शृंगार
२. कवि से सभा, सभा से कवि की सुन्दरता प्रकटित होती
३. सर की शोभा हंस है, राजहंस की ताल
४. तो कर सों छिति छाजत दान है, दान हू सों अति तो कर राजै

सार[2]

जब पहले कही हुई वस्तुओं की उत्तरोत्तर बढ़ती या घटती (उत्कर्ष या अपकर्ष) कही जाती है, तब 'सार' अलंकार होता है। जैसे—

---

१ "अन्योन्या उपकार जहँ यह बरनत ठहराय" (शिवराज भूषण)
२ "एक एक तें सरस जब अलंकार यह सार" (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"मधु से सुधा मधुर है बढ़कर, कविता मधुर सुधा से है।"

यहाँ मधु, सुधा और कविता में क्रमशः बढ़ता हुआ माधुर्य बतलाकर उत्कर्ष की क्रमिक वृद्धि प्रदर्शित की गई है।

ऐसे ही,

तृण से लघु है तूल, तूल से लघु है भिक्षा

में तृण, तूल और भिक्षा में क्रमशः घटती दिखाकर अपकर्ष का क्रमिक बढ़ाव सिद्ध किया है।

ऐसे ही निम्नलिखित अवतरणों में क्रमशः उत्कर्ष और अपकर्ष की वृद्धि हुई है।

१. (क) पर्वत ऊँचे हैं, परन्तु हरि पद उनसे भी ऊँचे हैं
लेकिन संत हृदय उनसे भी बढ़कर अतिशय ऊँचे हैं।

(ख) (गीता में भगवान् ने कहा है कि) सृष्टि के सभी जीव मुझे प्रिय हैं, उनमें मनुष्य, मनुष्यों में द्विज, द्विजों में वेदज्ञ, वेदज्ञों में वेदविधि से व्यवहार करनेवाले, उनमें भी विरक्त, विरक्तों में भी ज्ञानी और ज्ञानी से भी भक्त मुझे बहुत प्रिय हैं।

(ग) सैलनि को जग ऊँचो कहै तिन में कनकाचल को स्तुति गावै
तापर ऊँचो पुरंदर-मंदिर जो छवि-बृंदनि सों नभ धावै
तापर यों 'मतिराम' बखानत ऊँचो मनोरथ दानि कहावै
दान में भाऊ के हाथ-उचाई को सोऊ नहीं कल्पद्रुम पावै।

२. (क) अधम ते अधम, अधम अति नारि, तिन महँ मैं मति मंद गंवारी

(ख) रहिमन वे नर मर चुके जे कहूँ माँगन जाहिं
उनसे पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यथासंख्य या क्रम[1]

जब कुछ पदार्थों का उल्लेख करके उसी क्रम (सिलसिले) से उनसे संबंध रखनेवाले अन्य पदार्थ, कार्य या गुण वर्णित होते हैं तब 'क्रम' या 'यथासंख्य' (जैसी संख्या है वैसा) अलंकार होता है। जैसे—

चातक हंस सराहिय, टेक विवेक बिभूति

में चातक और हंस का क्रमशः उल्लेख करके उनके सहयोगी गुणों—टेक और विवेक—का उसी सिलसिले से वर्णन किया गया है। चातक से 'टेक' और हंस से 'विवेक का' संबंध है। यहाँ पहले चातक कहा गया है और फिर हंस। इसी प्रकार उनके गुणों में पहले चातक का गुण टेक कहा है, और फिर हंस का गुण विवेक। इस प्रकार इस उक्ति में 'क्रम' अलंकार है।

नीचे दिये हुए उद्धरणों में भी यथासंख्य वा क्रम अलंकार है

१. लखत कनखियनि चखत नीर मृग[1] बाघ[2] परस्पर
भाजत[1] झपटत[2] बनत पैन तजि नीर सुखद बर।

२. अमी[1], हलाहल[2], मद भरे[3] स्वेत[1], स्याम[2], रतनार[3]
जियत[1], मरत[2], झुकि-झुकि परत[3] जेहि चितवत इक बार

३. संगर में जब रुस्तम ने अपने विजयी पर हाथ उठाये
खड्ग[1], कटार[2], गदा[3], अरु पाश[4] के अद्भुत यों कर्तव्य दिखाये
काटि गिरावत[1], फारत[2], तोरत[3], बाँधत[4] चारि क्षणौ न लगाये
शत्रुन के सिर[1], और उरस्थल[2], पाद[3], भुजा[4], नहिं जायँ गनाये

१. "क्रम सों कहि तिनके अरथ, क्रम सों बहुरि मिलाय (शिवराज भूषण)"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४. महा बीर सत्रुसाल-नंद भावसिंह,
तेरी धाक अरिपुर जात भय-भोय से
कहै 'मतिराम' तेरे तेजपुंज लिए गुन,
मारुत औ मारतंड मंडल बिलोय-से
उड़त,[१] नवत[२], टूटि[३], फूटि[४], मिटि[५], फटिजात[६],
बिकल[७], सुखात[८], बैरी दुखनि समोय-से
तूल-से[१], तिनूका-से[२], तरोवर-से[३], तोयद-से[४],
तारा-से[५] तिमिर-से[६], तमीपति-से[७], तोय-से[८],

मारतंड=सूर्य। बिलोय=मथकर। समोय=संयुक्त। तूल=रुई। तरोवर = तरुवर, पेड़। तोयद = बादल। तमीपति = चंद्र।

23-12-60

पर्याय[१]

जब एक ही वस्तु का अनुक्रम से [पर्याय से, एक के बाद एक] अनेक स्थानों में होना दिखाया जाता है, अथवा जब एक ही स्थान में एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी—इसी क्रम से अनेक वस्तुएँ दिखाई जाती हैं तब 'पर्याय' अलंकार होता है। जैसे—

सब भूपों को छोड़, विजय औरंगजेब के पास गई
फिर उसको भी छोड़, शिवाजी के पास स-हुलास गई

---

१. द्वै पर्याय, अनेक को क्रम सों आश्रय एक
फिरि क्रम ते जब एक को आश्रय धरे अनेक (भाषा भूषण)
अथवा कै अनेक है एक में कै अनेक में एक
रहत जहां पर्याय सो, है पर्याय विवेक (ललितललाम)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ विजय का क्रमशः अन्य भूपों, औरंगजेब और शिवाजी के पास जाना दिखाया गया है।

इसी प्रकार निम्नलिखित अवतरण में विष का क्रमशः समुद्र, शिव का कंठ, और दुष्टों के मुख में रहना दिखलाया गया है।

सागर, शिव का कंठ और फिर खलजन के मुख में आया
हे विष तुझको किसने ऐसा गृह-परिवर्तन सिखलाया ?

नीचे एक ही स्थान में क्रम से अनेक वस्तुओं का संबंध दिखाया गया है।

महल बने थे जहाँ पूर्व में अब झोंपड़े दिखाते हैं
भोजन का आधिक्य जहाँ था, भूखे लोग दिखाते हैं

२. पहले था बालापन तन में, फिर तारुण्य मधुर आया
अब वार्धक्य प्रविष्ट हुआ तो भी हरि ध्यान नहीं भाया

३. पहले जहाँ लाल साड़ी थी, अब उस तन पर कवच चढ़ा
आभूषण-भूषित पहले के कर में खड्ग प्रचंड मढ़ा

४. बीत गई अब तो बसंत की बहार सखी,
मल्लिका सुखानी मुरझानी उपवन में
खिलते थे फूल जहाँ उड़ती है वहाँ धूल
अब ना दिखाते मोदयुक्त भृंग बन में
सीतल सुगंध, मंद बहती समीर जहाँ,
परम प्रफुल्लित चित होत छिन छिन में
चलती वहाँ है यह आज हाय, ग्रीषम की
लगती समीर अग्नि बान सी बदन में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रत्यनीक[१]

पूर्व-वर्णित 'अन्योन्य' में 'जो जिसके साथ जैसा करता है, वह भी उसके साथ वैसा ही करता है' यह दिखाया जाता है, परन्तु जब जो किसी से कुछ करे, और वह उसके साथ वैसा करने में असमर्थ हो, इसलिए उसके किसी संबंधी से वैसा ही व्यवहार करे तब 'प्रत्यनीक' होता है। दूसरे शब्दों में, जहाँ विरोधी के प्रबल होने पर उसके किसी संबंधी या पक्ष वाले से वैर, अथवा मित्र के पास तक पहुँचने में असमर्थ होने पर उससे संबंध रखने वाली किसी वस्तु से प्रेम प्रदर्शित किया जाता है वहाँ प्रत्यनीक होता है।

जैसे (शत्रुपक्ष के प्रति)

"पतंग (सूर्य) ने दीपक का प्रकाश मंद कर दिया, इससे उस (पतंग) का नाम-सादृश्य रखने के कारण वह पतंग (पतिंगा) को जलाया करता है।

(ख) रावन दूत हमहिं सुनि काना, कपिन बाँधि दीने दुख नाना

(ग) नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन मारहीं
धरि केस नारि निकारि बाहर तेऽति दीन पुकारहीं।

(बहुत उपाय करने पर भी जब रावण यज्ञ छोड़कर नहीं उठा तब बंदरोंने उनकी स्त्रियों को सताना आरम्भ किया।)

(घ) सोवत सीतानाथ के भृगु मुनि दीन्ही लात
भृगुकुल-पति की गति हरी मनो सुमिर यह बात

(मित्र पक्ष में)

१. "शत्रुमित्र के पक्ष सों, किये वैर अरु हेत।" (अलं० मं०)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(क) हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी
सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी

(सीता ने हनुमान को राम का जन समझा। उनके शरीर में वही चिह्न प्रकट हुए जो राम के मिलने से होते। नेत्र सजल हुए; हर्ष से रोमांच हो आया।)

(ख) चलत मोहिं चूड़ामणि दीन्ही।
रघुपति हृदय लाइ सो लीनी ॥

(हनुमान सीता का चूड़ामणि ले आए थे। वह राम को दिया। राम ने उसे सीता के शरीर का सम्बन्धी होने से हृदय से लगाया)

प्रत्यनीक अलंकार हेतूत्प्रेक्षा से बहुत मिलता जुलता है। हाँ, उसमें वाचक शब्द नहीं रहता। फिर भी प्रत्यनीक में हेतूत्प्रेक्षा से यही भिन्नता है कि उसमें शत्रु के सम्बन्धी का तिरस्कार या मित्र के सम्बन्धी का आदर रहता है। कुछ विद्वान इसे हेतूत्प्रेक्षा के अन्तर्गत ही मानते हैं।

काव्यर्थापत्ति[१]

जब एक बात के कहने में उससे निकलने वाले अर्थ में ही

---

१. जो पै जी तो यह कहा इहिं बिधि जहां बखान
कहत काव्य पद सहित तहँ अर्थापत्ति सुजान (ललित ललाम)

अथवा—काव्यर्थापत्ति को सबै हरि विधि बरनत जात (भाषा भूषण)

अर्थात्—"जब इस प्रकार हुआ तब ऐसा क्यों न होगा"—कह कर वर्णन किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दूसरा अर्थ, जो कहा नहीं जाता, दण्डयूपिका न्याय[१] से सिद्ध हो जाता है, तब 'काव्यर्थापत्ति' (= काव्य में न कहे हुए अर्थ की आपत्ति, आ पड़ना) अलंकार होता है। जैसे—

केसरी को जब पछाड़ दिया भुजदण्डों से,
गीदड़ की बात क्या चलाई तब जा सके ?

'जब सिंह को पछाड़ दिया तब गीदड़ को पछाड़ने का क्या कहना'—इस कथन से यह अभिप्राय निकलता है कि 'गीदड़ को पछाड़ना सुलभ ही है'—इसके कहने की क्या आवश्यकता है।'

इसी प्रकार नीचे लिखे अवतरणों में काव्यर्थापत्ति है:—

(१) अभी हमें ज्ञात यही नहीं हुआ,
रही किमाकारक[२] तू रसात्मिके;
स्वरूप ही का जब ज्ञान है नहीं,
विभूषणों की तब क्या कहें कथा ?

(यहाँ 'क्या कथा कहें ?' से 'विभूषणों [अलंकारों] का ज्ञान न होना'—यह अकथित अर्थ प्रकट होता है)

(२) जितेहु सुरासुर तब स्रम नाहीं,
नर बानर केहि लेखे माहीं

१. जैसे दंड के खींचने से उस पर रखे हुए माल पुए उसके साथ ही आप से आप खिंच आते हैं (यही दण्डयूपिका न्याय है) वैसे ही किसी उक्ति में एक अर्थ के साथ ही दूसरा अर्थ भी स्वतः निकल आता है।

२. किस आकार की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(३) जिसने समुद्र सारा पूर दिया पर्वतों से,
लंका का लेना कहो उसके लिए बात क्या ?

(४) जब अजामील का पुत्र के बहाने से ही 'नारायण' कहने पर यम-पाश से उद्धार हो गया, तब श्रद्धा-पूर्वक भगवन्नाम उच्चारण करने से क्या नहीं हो सकता ?

(५) मुख जीत्यो वा चंद सों कहा कमल की बात ?

(६) कहा दरपन कैसे पावत बदन जोति,
चंद जाको चेरो, अरबिन्द जाको दास है ।

तद्गुण

जहाँ कोई वस्तु अपना गुण त्याग करके अपने पास की किसी दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है, वहाँ 'तद्गुण' (=उसका गुण—ग्रहण करना) अलंकार होता है । जैसे—

अहि मुख परयो सु विष भयो, कदली भयो कपूर
सीप परयो मोती भयो, संगति को फल 'सूर'

यहाँ (स्वाती नक्षत्र का जल) सर्प, केला और सीप में पड़कर अपना स्वाभाविक गुण त्याग कर क्रमशः विष, कपूर और मोती हो गया ।

ऐसे ही निम्नलिखित अवतरणों में 'तद्गुण है ।

(१) दमक रंग भये हाथ मजीठी, मुकुता लेउँ पै घुँघुची दीठी
'हाथ की ललाई से मोती का रंग लाल (मजीठ के

---

१. 'तद्गुन'—तजि गुन आपनो, संगति को गुन लेई
(भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रंग का) हो जाता है; और उसकी ओर देखने पर उसमें आँख की पुतली की छाया पड़ने से उस पर घुँघुची (गुँजा) का-सा काला दाग दिखाई पड़ने लगता है ।'

(२) केस मुकुत सखि, मरकत मनिमय होत

बालों के संयोग से (श्वेत) मोती मरकत मणि (नीलम) का सा हो जाता है।

(३) बेसरि मोती अधर मिलि, पदुमराग छवि देत

(बेसरि = नथ, पदुमराग = लाल मणि)

(४) जाहिरै जागति सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी
त्यों 'पदमाकर' हरि के हारन गंग तरंगन-सी सुखदेनी
पाँयन के रँग सों रँगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी
पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहँ ताल में होत त्रिबेनी

काली वेणी के रंग से जमुना की-सी काली, गले में पहने हुए हीरा के हार से गंगा-की-सी स्वर्ण-कांति-सी और महावर से सरस्वती की-सी लाल जल की धारा हो जाती है ।

(५) लै मोती कर में करति तू मूँगा को मोल !

(६) हीरनि मोतिन के अवतंसनि सोने के भूषनि की छवि छावै
हार चमेली के फूलन के तिन में रुचि चंपक की सरसावै
अंग के संग ते केसरि रंग की अंबर सेत में जोति जगावै

\+ \+ \+ \+ \+

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूर्वरूप[1]

जब कोई वस्तु किसी दूसरी के संसर्ग में आकर अपना गुण छोड़ तो दे, परन्तु किसी तीसरी के संबंध में आने पर या अन्य किसी तरह अपना पहले का-सा रूप प्राप्त कर ले तब 'पूर्वरूप' अलंकार होता है। जैसे—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥

यहाँ बालों के संसर्ग से पहले मोतियों का नीलम-सा हो जाना कहा है, परन्तु फिर हाथ में लेने पर उनका असलीरूप में दिखाई पड़ना वर्णित हुआ है।

ऐसे ही निम्नांकित अवतरणों में भी पूर्व रूप है:—

(१) सेस स्याम ह्वै सित्र-गरे, जस तें उज्ज्वल होत
(२) मुकुत-हार हरि के हिये मरकत मनिमय होत
पुनि पावत निज रूप लहि राधे मुख की जोत
(३) लखत नीलमनि होत अलि, कर बिद्रुम दिखरात
मुकता को मुकता बहुरि लख्यो तोहि मुसक्यात

जब किसी वस्तु के अपने गुण नष्ट हो जाने का कारण हो जाने पर भी उनका अस्तित्व नहीं मिटता (उनका पूर्व-रूप बना रहता है) तब भी पूर्वरूप होता है। जैसे,

"दीप बढ़ाए हूँ कियो रसना मनिन उदोत"

यहाँ दीपक बुझाने से प्रकाश के नष्ट होने का कारण

---

१. "पूर्वरूप—लै संग गुन तजि फिरि अपने लेतु" (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मौजूद हुआ, फिर भी कमरबंद [रसना] के मणियों के कारण वह न मिट सका। उसका पूर्व रूप बना रहा।

इनमें भी इसी प्रकार का पूर्व रूप है:—

१. मरि सुबरन भस्मी भयो गयो रूप गुन रंग
बैद-क्रिया ते पुनि नयो भयो सहित सब अंग

२. बदन-चंद की चाँदनी, देह-दीप की जोति
रात बिते हू लाल वहि भौन राति-सी होति

अतद्गुण[१]

जब एक वस्तु दूसरी का गुण ग्रहण कर लेती है, तब तो 'तद्गुण' होता है, परन्तु इसके ठीक विपरीत, जब कोई पदार्थ अन्य समीपवर्ती पदार्थ के गुण नहीं ग्रहण करता, ज्यों का त्यों अप्रभावित बना रहता है तब 'अतद्गुण' होता है। [पूर्वरूप में समीपवर्ती वस्तु का प्रभाव पड़ता है, परन्तु फिर भी पहला रूप प्राप्त हो जाता है, अतद्गुण में उसका प्रभाव जरा भी नहीं पड़ता।] जैसे—

चंदन विष व्यापै नहीं, लपटे रहत भुजंग।

इसमें साँपों के लिपटे रहने पर भी चंदन में उनके विष का लगाव नहीं हुआ—ऐसा कहने से 'अतद्गुण' अलंकार हुआ। ऐसे ही नीचे लिखे अवतरणों में अतद्गुण है

१. क्यारी करै कपूर की, मृगमद बिरवा बंध।
सर्व सुधा सींचै तऊ, हींग न होय सुगंध॥

१. "सोइ अतद्गुन संग ते जब गुन लागत नाहिं" (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२. सिवसरजा की जगत में राजति कीरति नौल
अरि-तिय-दृग अंजन हरै तऊ धौल की धौल

३. दुष्ट मनुष्य चाहे कितना ही सज्जनों के पास बैठे, अपना स्वभाव नहीं छोड़ता ।

४. गंगाजल सित अरु असित जमुना जलहु अन्हात ।
हंस रहत तो सुभ्रता, तैसिय बढ़ न घटात ॥

५. राम-कथा पढ़कर भी मेरा मन न हुआ रघुपति का भक्त

६. पढ़ता हुआ नित्यप्रति कालेज में फिर भी,
लेशमात्र ज्ञान का हुआ नहीं संचार है ।

मीलित[1]

जब दो पदार्थों में स्वाभाविक या आगन्तुक गुण (धर्म) एक-सा होता है, और उनमें एक दूसरे में ऐसा घुल-मिल जाता है कि दोनों की भिन्नता मिट जाती है तब 'मीलित' अलंकार होता है । जैसे,

"रमणी के रक्त चरण पर बिलकुल नहीं महावर दीखता ।"

यहाँ महावर का लाल रंग स्त्री के चरणों के रंग से मिल कर विलीन हो गया—ऐसा कहने से 'मीलित' अलंकार है ।

ऐसे ही—

बेनु हरित-मनि मय सब कीन्हें, सरल सपरन परहिं नहिं चीन्हें ।
में भी पन्ना के बाँस बनाये गये हैं, जो बाँस से भिन्न पहिचाने नहीं जा सकते ।

---

१. मीलित —सो सादृश्य ते भेद न जबै लखाइ (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसे ही निम्नांकित अवतरणों में मीलित अलंकार है:—

१. पान-पीक अधरान में सखी, लखी ना जाय
कजरारी-अँखियान में कजरा, री, न लखाय

२. होति ना लखाई निसि चंद की उज्यारी,
मुख चंद की उज्यारी तन-छाहौं छिपि जात है।

३. सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत

४. अधर-धरत हार के परत ओठ डीठि पट जोति
हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष-रँग होति

उन्मीलित[1]

'मीलित' के विपरीत, जब दो पदार्थों के गुण (धर्म) एक-से हों, और एक का दूसरे में विलीन हो जाने पर भी किसी कारण से दोनों का भेद प्रकट हो जाता है तब 'उन्मीलित' अलंकार होता है। जैसे—

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाय।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाय॥

यहाँ चंपक का हार पहले तो सीता जी के शरीर के रंग से मिल गया परन्तु, बाद में, कुँभला जाने पर जान लिया गया—इस प्रकार उसने गुण ग्रहण करके भी त्याग दिया।

ऐसे ही निम्नलिखित अवतरणों में उन्मीलित अलंकार है।

१. समझो परत सुगंध तें तन केसर कौ लेप।

१. उन्मीलित—सादृश्य तें भेद फुरै तब मानि (भाषा भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२. कीरति आगे तुहिनगिरि[२] छुए परत पहिचान।
३. सरद चाँदनी में प्रगट होत न तिय के अंग।
सुनत मंजु मंजीर ध्वनि सखी न छाँडति संग॥

मुद्रा[३]

जब प्रस्तुत अर्थ के कथन करने वाले शब्दों से कोई दूसरा अर्थ निकलता है तब 'मुद्रा' अलंकार होता है। ऐसे वर्णनों में प्रयुक्त शब्दों से दूसरे पदार्थों के नाम भी निकलते हैं। जैसे—

सो नाहीं नर सुघर है जो न भजे श्रीरंग
पारावार अपार जग बूड़त भौंर कुसंग
बूड़त भौंर कुसंग ठौर तामहिं नहिं पावै
सीसहु देत डुबाय भलो हाथहि न उठावै
बरनै दीनदयाल रूप हरि को तिहि माहीं
ध्यान धरै दृढ़ नाव जानि बूड़त सो नाहीं

यहाँ प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त मुद्रा द्वारा धातुओं के नाम भी निकलते हैं। सोना। रंग = राँगा। पारा। संग = पत्थर। तामहिं = ताँबा। सीसा। लोहा। रूप = रूपा (चाँदी)। हरि = सोना।

इसी प्रकार,

सुनि मुरली सुर धुनि सखी गोमति को सविवेक
जमुनायकु को हित भयो सरसइ हिय धरि टेक

---

२. हिमालय।

३. मुद्रा —प्रस्तुत पद बिषै, औरै अर्थ प्रकास (भारती भूषण)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त कुछ अक्षरों के जोड़ से सुर धुनि (गंगा) गोमति (गोमती) जमुना और सरसइ (सरस्वती) नदियों के नाम भी सूचित होते हैं।

परिसंख्या

जब किसी वस्तु को अन्य स्थलों से हटाकर किसी एक ही स्थान पर स्थापित किया जाता है तब 'परिसंख्या' अलंकार होता है। जैसे—

नृपति राम के राज्य में है न शूल दुख मूल।
लखियत चित्रन में लिखो शंकर के कर शूल॥

यहाँ 'शूल' की प्राप्ति अन्यत्र न दिखाकर केवल शंकर के चित्र में अंकित त्रिशूल के अर्धांश 'शूल' शब्द में होती है, ऐसा कहकर उसे अन्यत्र से हटाकर एक ही जगह आरोपित किया गया है। ऐसे ही

पावस ही में धनुष अब, सरित-तीर ही तीर।
रोदन ही में लालदृग, नौरस ही में वीर॥

में भी धनुष, तीर, लाल नेत्र और वीर को सर्वत्र से हटाकर क्रमशः केवल वर्षा ऋतु में, नदी के तीर में, रोदन में और (काव्य के) नवरस में आरोपित किया गया है।

इसी तरह नीचे लिखे अवतरणों में भी परिसंख्या है:—

१. दंड जाति न कर भेद जहँ नर्तक नृत्य-समाज
जितहु मनहिं अस सुनिय जग रामचन्द्र के राज

२. मूलन ही में अधोगति पाइए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

३. लूटिबे के नाते पाप-पट्टनै तौ लूटियत
तोरिबे को मोहतरु तोरि डारियतु है
घालिबे के नाते गर्ब घालियत देवन के,
जारिबे के नाते अघओघ जारियतु है
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियत केसोदास,
मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु,
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है।

४. केसन ही में कुटिलता, संचारित में संक
लखौ राम के राज में इक ससि माहिं कलंक

(संचारिन में संक = संचारी-भावों के मध्य ही 'शंका' पाई जाती है अन्यत्र नहीं)

उभयालंकार

वाक्यों में बहुधा देखा जाता है कि एक ही स्थल पर दो या अधिक अलंकारों का सम्मिलन पाया जाता है। ऐसे अवसरों पर उभयालंकार होता है। इसके दो प्रकार माने जाते हैं:—(१) संसृष्टि और (२) संकर।

संसृष्टि

जब एक से अधिक शब्द या अर्थसंबंधी अलंकार किसी उक्ति में इस प्रकार मिले रहते हैं, जिस प्रकार तिल और चावल, अर्थात् जो एक दूसरे के आश्रय के बिना स्वतंत्र रूप में अलग-अलग आसानी से पहचाने जा सकते हैं, तब उसे संसृष्टि कहते हैं यह संसृष्टि तीन प्रकार की हो सकती है:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१. **शब्दालंकार-संसृष्टि**—जिसमें कई शब्दालंकारों का मेल होता है।

२. **अर्थालंकार-संसृष्टि**—जिसमें कई अर्थालंकारों का मेल होता है।

३. **शब्दार्थालंकार-संसृष्टि**—जिसमें शब्द एवं अर्थ दोनों प्रकार के अलंकार मिले होते हैं।

इनमें से हरेक को नीचे के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जायगा:—

(१) दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि

इसमें छेकानुप्रास और यमक (दई=दैव, दई= दिया; के कारण) इन दो शब्दालंकारों की संसृष्टि है। ये दोनों अलग-अलग स्पष्ट विदित होते हैं।

(२) कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई
औध तजी मग वास के रूख ज्यों, पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबंधु, पुनीति प्रिया, मनो धर्म, क्रिया धरि देह सुहाई
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं

इसमें उपमा और उत्प्रेक्षा इन दो अर्थालंकारों की संसृष्टि है

(३) सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर थोर
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर

इसमें अनुप्रास और व्यतिरेक—इन दो शब्द और अर्थ अलंकारों—की संसृष्टि है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संकर

जब दो या अधिक अलंकार एक-दूसरे से ऐसे मिले होते हैं कि उनकी पृथकता न मालूम पड़ती हो 'तब संकर' होता है। ये अलंकार ऐसे मिले होते हैं जैसे दूध और पानी। जब दूध में पानी मिला दिया जाता है तब उसके स्वाद में यह तो जान पड़ता है कि उसमें पानी मिला है, पर वह उस से अलग नहीं किया जा सकता। इसी तरह 'संकर' ऐसी दशा में होता है जब किसी उक्ति में कई अलंकार घुल मिल से जाते हैं, अलग-अलग नहीं जान पड़ते।

इसके तीन प्रकार होते हैं—(१) **अंगांगी भाव संकर (२) संदेह संकर और (३) एक वाचकानुप्रवेश संकर।**

(१) जहाँ एक या अधिक अलंकार दूसरे अलंकार या अलंकारों पर निर्भर हों; अर्थात् एक अलंकार की सिद्धि दूसरे पर अवलंबित हो, वहाँ अंगांगी भाव[१] संकर होता है। (दो अलंकारों में एक 'अंग' भाव से और दूसरा 'अंगी' भाव से होता है, इससे उनके संकर का यह नाम पड़ा)। जैसे—

रावन-सिर-सरोज-बन-चारी, चलि रघुबीर-सिलीमुख धारी।

यहाँ 'रावण के सिर रूपी सरोज' में रूपक अलंकार है और यह रूपक तभी सिद्ध होगा जब राम के वाण के लिए कोई ऐसा शब्द आवे जिससे सिर को 'सरोज' कहना ठीक हो। इसी से 'शिलीमुख' शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसके वाण और भ्रमर-दोनों अर्थ होते हैं। अतः 'शिलीमुख' में श्लेष है। इस उक्ति में 'रूपक' की सफलता 'श्लेष' पर ही निर्भर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है; यदि यह श्लेष न रहे तो वह रूपक निरर्थक हो जाय। इसलिए यहाँ अंगांगी भाव संकर है ।

(२) जहाँ एक ही स्थल पर एक से अधिक अंलकारों के होने का सन्देह हो वहाँ संदेह संकर होता है । जैसे,

मुख चंद्र की शोभा बढ़ाती हास्य-द्युति ज्योत्स्ना सदृश ।

यहाँ 'जैसे ज्योत्स्ना चंद्रमा की शोभा बढ़ाती है वैसे हास्य-द्युति मुख-चंद्र की शोभा बढ़ाती है'—इस तरह उपमा जान पड़ती है; और 'मुख चंद्र' में रूपक भी माना जा सकता है; अतः यह निर्णय नहीं हो सकता कि इसमें रूपक है या उपमा। इससे यहाँ सन्देह संकर है ।

(३) जहाँ एक वाक्यांश वा शब्द समूह में एक से अधिक अलंकार होते हैं वहाँ एक वाचकानुप्रवेश संकर होता है। अर्थात् एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार; या दो शब्दालंकार अथवा दो अर्थालंकार होने से एक वाचकानुप्रवेश संकर होता है ।

पूर्वोक्त संसृष्टि में एक से अधिक अलंकार अलग अलग पदों में होते हैं, पर एक वाचकानुप्रवेश संकर में वे एक ही पद में होते हैं। यही दोनों में अंतर है ।

बन्दउँ गुरु-पद-पदुम-परागा
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा

यहाँ 'पद-पदुम-परागा'—इस एक ही वाक्यांश में वृत्त्यनुप्रास और परंपरित रूपक ये दो क्रमशः शब्द और अर्थ-अलंकार हैं। अतः इसमें एक वाचकानुप्रवेश संकर है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस अर्धाली के दूसरे चरण में वृत्त्यनुप्रास है; अतः पूरे छंद में संसृष्टि भी है।

इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न अलंकारों के उदाहरण यथा स्थान दिये गये हैं, और उनमें केवल उसी अलंकार का निर्देश किया गया है, जिसके प्रकरण में वे प्रस्तुत किये गये हैं जिससे प्रकरण-गत अलंकार का भलीभाँति बोध हो जाय। उनमें बहुधा केवल वही अलंकार नहीं देखे जायँगे, जो यथा-स्थल बतलाए गये हैं, प्रत्युत कई अलंकारों का सम्मिलन देखा जायगा। अतः उनके अलंकार यदि पूछे जायँ तो जितने भी उनमें हों वे सभी बतलाए जाने चाहिए। उनमें से प्रायः अधिकांश संसृष्टि और संकर के उदाहरण हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

७. पिंगल-परिचय

हमारे देश में बहुत प्राचीनकाल से कविता पद्य में ही लिखी जाती आई है। इस बहुत दिन के और घनिष्ठ संबंध के कारण कुछ लोग भ्रम से पद्य और कविता को एक दूसरे का पर्याय समझते हैं और इसी कारण वे कविता का पद्य में होना अनिवार्य-सा मानते हैं। यद्यपि कविता के लिए आवश्यक बातें होने से गद्य में कही गई बात भी कवित्वपूर्ण कही जा सकती है, तथापि पद्यबद्ध होने से उसमें अधिक सुन्दरता आ जाती है—यह निश्चित है। इसीलिए कविता और पद्य का संबंध अविच्छिन्न-सा है। जब मात्रा, वर्ण-संख्या, विराम गति या लय तथा तुक आदि के नियमों से युक्त रचना होती है तब उसे 'पद्य' कहते हैं।

पद्य और कविता का संबंध

'पद्य' और 'छंद' समानार्थक शब्द हैं। इसीलिए जिस शास्त्र में पद्य-रचना के नियमों, पद्यों के नाम, लक्षण, भेद, आदि पर विचार किया जाता है उसे छंदःशास्त्र कहते हैं।

संस्कृत में छंदःशास्त्र के सब से पहले रचयिता भगवान् शेष के अवतार पिंगलाचार्य माने जाते हैं और उनका बनाया हुआ 'पिंगल छंदःशास्त्र' ही इस विषय का पहला ग्रंथ है; अतः इस शास्त्र के प्रवर्त्तक के नाम से इसे 'पिंगल-शास्त्र' भी कहते हैं।

पिंगल-शास्त्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पिंगलकृत छंदःशास्त्र 'सूत्र रूप में लिखा गया है, उसमें आठ अध्याय हैं। उसके आधार पर 'अग्नि-पुराण' में इस विषय पर विस्तार के साथ लिखा गया है। फिर तो आगे चलकर अनेक ग्रन्थों में इस विषय पर क्रमशः अधिक विस्तार-पूर्वक ही प्रकाश डाला गया। हमारी भाषा संस्कृत से ही विकसित हुई है, इससे अन्य अगणित वस्तुओं की भाँति, पैतृक संपत्ति के रूप में, हमें उसी से पिंगलशास्त्र का नाम, उसके अन्तर्गत छंदों के नाम, लक्षण आदि भी मिले हैं। इस प्रकार, यद्यपि संस्कृत के बहुत से छंद हिंदी में स्वीकृत हुए हैं, फिर भी हिंदी के अपने छंदों की संख्या भी कम नहीं है। यहाँ संक्षेप में, पिंगल-संबंधी कुछ मुख्य-मुख्य विषय एवं हिंदी में अधिक व्यवहृत होने वाले कुछ प्रसिद्ध छंदों का परिचय दिया जायगा।

चरण

प्रत्येक छंद में चार 'चरण' का होना आवश्यक है। इन्हें 'पद' या 'पाद' भी कहते हैं। 'चरण' की रचना वर्णों (अक्षरों) या मात्राओं की संख्या और उनके नियमित प्रयोग के अनुसार हुआ करती है। कुछ ऐसे छंद भी होते हैं जिनमें होते तो चार 'चरण' हैं, पर वे लिखे दो ही पक्तियों में जाते हैं। (जैसे, दोहा, सोरठा, बरवै आदि) ऐसे छंदों की प्रत्येक पंक्ति को 'दल' कहते हैं।

छंदों के भेद

जिस छंद के पदों में वर्णों की संख्या का नियमन रहता है उसे 'वर्णवृत्त' कहते हैं और जिसमें 'मात्राओं' का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नियमन रहता है उसे 'मात्रिक'[१]। 'मात्रिक' छंद का दूसरा नाम 'जाति' है। 'वर्णवृत्त' और 'मात्रिक' छंद की पहिचान के लिए यह दोहा स्मरण करने से सुगमता होगी:—

गुरु लघु चारों चरण में क्रम से मिलें समान
वर्णवृत्त है। अन्यथा मात्रिक छंद प्रमान

परन्तु कुछ वर्णवृत्त ऐसे भी होते हैं जिनके चरणों में वर्णों की संख्या का ही नियम होता है गुरु लघु के क्रम का नहीं, जैसे, कवित्त। इसके प्रत्येक चरण में १६, १५ के विराम से ३१ वर्ण होते हैं।

छंदों के दो नवीन भेद उभय और मुक्त या स्वच्छंद

संस्कृत में उपर्युक्त दो प्रकार के [वर्णवृत्त और मात्रिक] ही छंद ही निर्मित होते थे। हिंदी में भी उसी के अनुसरण पर अभी तक इन्हीं दो प्रकार के छंदों में कविता की जाती थी। परन्तु मानवज्ञान और बुद्धि के विकास से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन वस्तुओं का आविष्कार होना—सृष्टि का चिरंतन नियम है। अतः छंदःशास्त्र में नवीन प्रकार के और नये-नये नाम वाले छंदों का आविर्भाव होना नितान्त स्वाभाविक और वांछनीय है। जिस प्रकार [अलंकारों के विषय में बतलाया जा चुका है कि] दो अलंकारों के एकत्र होने पर 'उभयालंकार' होता है, उसी

१. इस 'मात्रिक' शब्द के वज़न पर पहले प्रकार के छन्द को 'वर्णिक' कहकर हिंदी में कुछ लोग एक अशुद्ध शब्द चला रहे हैं। इस अशुद्ध शब्द के प्रयोग को बंद करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रकार उपरि-उल्लिखित वर्णवृत्त और मात्रिक दोनों की विशेषताएँ जब एक ही पद्य में विद्यमान हों तब उसे उभय छंद [या वृत्त] कह सकते हैं। स्वर्गीय पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' ने ऐसे बहुत से छंद रचे थे जो थे तो मात्रिक, परन्तु जिनके चारों चरणों में वर्णों की संख्या भी समान होती थी। [यद्यपि यह काम अत्यन्त कठिन है, तथापि जब शंकरजी पर्याप्त संख्या में ऐसे छंद रचकर मार्ग-प्रदर्शन कर गये हैं, और आगे भी प्रतिभासम्पन्न कवि ऐसे छंद रच सकते हैं तब उभय-वृत्त की छंदःशास्त्र में गणना करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है] उन्हीं का रचा हुआ यह छंद उभय वृत्त का अच्छा उदाहरण है—

ऽ।। ऽ ।। ऽ। ऽ।।। ।। ऽऽ ऽ
ऊपर को जल सूख | सूखकर उड़ जाता है। = १७ वर्ण
सरदी से सकुचाय | जलद-पदवी पाता है। ,,
पिघलावे रवि-ताप | धरा-तल पै गिरता है। ,,
बार-बार इस भाँति | सदा हिरता फिरता है। ,,

[पावस-पंचाशिका—'अनुराग रत्न']

यह 'रोला, नामक मात्रिक छंद है। नियमानुसार इसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ हैं, ११, १३ मात्राओं पर यति है (जो खड़ी लकीर के द्वारा सूचित की गई है। यति क्या है—यह आगे यथास्थान बतलाया गया है)। यह तो हुआ मात्रिक-वृत्त के नियम का पूर्णतया पालन। इसके प्रत्येक चरण के वर्णों की संख्या भी समान है। प्रत्येक चरण में १७ वर्ण हैं। और ८,९ वर्णों पर यति है। इस प्रकार इसमें कवि ने वर्ण-वृत्त का अपना स्वतन्त्र नियम भी बनाकर उसे निभाया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुक्तवृत्त या स्वच्छंद छंद—उसके दो भेद

अँगरेजी और बंगला के प्रभाव से हिंदी में भी कुछ इस विचार के भी कवि पैदा हो गये हैं जो कविता-कामिनी के शरीर को प्राचीन परंपरा से चली आती हुई मात्राओं और वर्णों के नियमों की जंजीरों से जकड़े रहना अनुचित समझते हैं। वे इस बन्धन से उसे मुक्त कर देना चाहते हैं। इससे उनके द्वारा रचित छंदों को 'मुक्तवृत्त' या 'स्वच्छंद छंद' कहना उचित जान पड़ता है। इस प्रकार के छंदों को दो विभागों में रख सकते हैं। (१) पहले वर्ग में ऐसे मुक्त छन्द आते हैं जिनमें छंदों के लिए परंपरा से स्वीकृत चार चरणों के बजाय पाँच, छः या अधिक चरण होते हैं[१]। (२) दूसरे वर्ग में उन छंदों को रखा जा सकता है जो अँगरेजी के ब्लैंक वर्स (Blank Verse) के अनुकरण पर बनते हैं। जिनमें यह आवश्यक नहीं कि छंद के प्रत्येक चरण में मात्राओं या वर्णों की संख्या के विषय में कोई नियम हो। ऐसे छदों में यदि पहले चरण में १० अक्षर होते हैं तो दूसरे में ५; तीसरे में १५, चौथे में २, इत्यादि (यह बात दृष्टान्त के तौर पर ही कही गई है। इनमें उदाहरण के लिए ही अक्षरों की संख्या का उल्लेख हुआ है। वास्तव में ऐसा कोई नियम नहीं है। यदि

१. देखिए—श्रीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', एम. ए.-रचित कविताओं का संकलन 'सौरभ' (हिन्दी पुस्तक भंडार लहरियासराय, बिहार द्वारा प्रकाशित)। परन्तु ऐसी रचनाओं का दर्शन संभवतः इस कवि के अतिरिक्त अन्य किसी ने नहीं कराया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यही नियम होता तो ये मुक्त छंद न रहते।) नीचे दोनों प्रकार के छंदों का एक-एक उदाहरण दिया जाता है:—

(१) हाल हिन्दुआन को बेहाल बनि जातो दस
माल मूसि मूसि मुसलिम जन खावतो
टूटि जाति लाज अरु टूटि जाती टाँग, माँग
भारत की भूमि भाल और को भरावतो
फूटि जातो करम-धरम धन छूटि जातो
मरम न परम पुनीत बतरावतो—
लागतो न बानक बहादुरी को बीरन की
देस भर भरम भयानक मों छावतो—
सिक्खन जगातो दुरभिक्खन भगातो कौन
जौ न गुरु नानक अचानक मों आवतो

(यह 'कवित्त' छंद है जिस में १६, १५ वर्णों के विराम से प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। कुल छंद में ४ ही चरण होने चाहिएँ थे, पर यहाँ हैं ५)

(२) अपने अतीत का ध्यान
करता मैं गाता था गान—भूले, कुछ म्रियमाण,
एकाएक क्षोभ का अन्तर में होते संचार
उठी व्यथित उँगली से कातर एक तीव्र झनकार
विकल वीणा के टूटे तार!
मेरा आकुल क्रन्दन—
व्याकुल वह स्वर-सरित-हिलोर
वायु में भरती करुण मरोर
बढ़ती हैं तेरी ओर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मेरे ही क्रन्दन से यह उमड़ रहा तेरा सागर—
सदा अधीर।

(श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'सन्तप' शीर्षक कविता का एक अंश)

इस कविता में छंद के चरणों में मात्रा या वर्ण किसी का कोई नियम नहीं निभाया गया। अस्तु यह 'मुक्तवृत्त'[1] या 'स्वच्छंदछंद' की रचना ही कही जा सकती है।

गति

प्रत्येक छंद में मात्राओं या वर्णों की नियमित संख्या होने से ही काम नहीं चलता। उसमें एक प्रकार का प्रवाह (बहाव) भी होना चाहिए, जिससे पढ़ने में कहीं रुकावट-सी न मालूम पड़े। इस प्रवाह को 'गति' कहते हैं। जैसे—

भू में रमी शरद की कमनीयता थी
नीला अनन्त नभ निर्मल हो गया था।

इसको पढ़ते समय जिह्वा को बीच में कहीं पर रुकना नहीं पड़ता। इसी कारण इसमें गति है। इसके विपरीत यदि इसे कुछ परिवर्तित करके यों पढ़ें "भू में शरद की कमनीयता रमी थी, अनन्त नीला नभ निर्मल हो गया था"—तो इसकी गति ठीक न रहेगी। इस तरह की उक्ति को गद्य कहने में संकोच न होगा।

---

१. श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने ऐसे छन्दों का प्रयोग हिंदी में आरंभ किया था। कुछ नवयुवक कवियों ने उनका आरंभ में अनुकरण और समर्थन भी किया था। यह हवा थोड़े दिन तक ही बही। अब तो इन छन्दों की रचना शायद बन्द-सी हो गई है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यति

इसी तरह, बहुत से छंदों में बहुधा चरण के किसी स्थल पर रुकावट या विराम की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए नियमित वर्णों या मात्राओं पर बहुत थोड़ी देर के लिए रुकना पड़ता है। इस रुकने की क्रिया को 'यति' 'विराम', या 'विश्राम', कहते हैं। जैसे—

SS I S S S I I I S   S I I I S S I S
"देते हुए आनन्द सब को | तेज दिखलाते हुए"

में १६ मात्राओं (मात्रा की व्याख्या नीचे दी गयी है) पर यति पड़ती है। परन्तु यति ठीक स्थल पर पड़े—इसके लिए आवश्यक है कि जहाँ यति पड़ने का नियम हो वहाँ कोई शब्द पूरा पड़े, उसका कोई अंश नहीं। जैसे—

I I   I S I   I I S I I I   S I I S I S I
"दोउ[1] समाज निमिराज रघु | राज नहाने प्रात"

में दोहे के नियमानुसार, पहले चरण में १३ और दूसरे में ११ मात्राएँ होनी चाहिए। यहाँ पहले चरण का अन्तिम शब्द 'रघु' पूरा शब्द नहीं है, दूसरे चरण का पहला शब्द 'राज' इसका अंश है। इस कारण यहाँ यति ठीक नहीं है।

मात्रा—लघु, गुरु

किसी 'स्वर' वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी अवधि को 'मात्रा' कहते हैं। 'मत्ता', 'मत्त', 'कला', और 'कल',—ये मात्रा के पर्यायवाचक शब्द हैं।

१. 'दो'—इस शब्द की मात्रा के लिए आगे दिये हुए लघु गुरु के नियमों में इस प्रकार के शब्दों का प्रसंग देखिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१—यदि किसी 'व्यंजन' वर्ण में (अ, इ, उ, ऋ और ऌ[१] में से कोई) ह्रस्व स्वर मिला होता है तो उसे 'लघु' कहते हैं। और (२) यदि किसी 'व्यंजन' वर्ण में (आ, ई, ऊ, ॠ,[१] ए, ऐ, ओ, और औ में से कोई) दीर्घ स्वर संयुक्त होता है तो उसे 'गुरु' कहते हैं। ह्रस्व स्वर छंदःशास्त्र में लघु और दीर्घ स्वर गुरु माने जाते हैं। ह्रस्व स्वरों को लघु वर्ण और दीर्घ स्वरों को गुरु वर्ण कहते हैं। लघु वर्ण की एक मात्रा और गुरु की दो मात्राएँ मानी जाती हैं।

लघु गुरु के चिह्न और नियम

छंदःशास्त्र में 'लघु' और 'गुरु' का संकेत इन दोनों शब्दों के पहले अक्षरों को लेकर क्रमशः 'ल' और 'ग' माना जाता है। साथ ही, लघु का संकेत-चिह्न "।"—यह माना गया है और गुरु का "ऽ"—यह।

ह्रस्व स्वरों या उनके मेल से बने हुए व्यंजनों की मात्राएँ गिनने में कठिनाई नहीं पड़ती। ऐसे ही अकेले दीर्घ स्वरों या व्यंजनों के विषय में भी होता है। ह्रस्व स्वरों और उनके मेल से बने हुए व्यंजनों में एक मात्रा होती है, और दीर्घ स्वरों तथा उनके संयोग से बने हुए व्यंजनों में दो मात्राएँ मानी जाती हैं। ऐसे ही संयुक्त वर्ण भी ह्रस्व स्वर के मेल वाले उत्तर (बाद वाले) व्यंजनों के होने पर एक मात्रा का एवं दीर्घ स्वर-संयुक्त उत्तर वर्ण के होने पर दो मात्रा का माना जाता है। परन्तु कुछ वर्णों की मात्रा जानने में कभी

---

१. हिन्दी में इन स्वरों या इनके मेल से बने हुए व्यंजनों का प्रयोग प्रायः नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कभी कठिनाई पड़ती है। उसे दूर करने के लिए निम्नलिखित नियमों को ध्यानपूर्वक समझ कर स्मरण रखना चाहिए।

[१] कविता में (क) प्राय: संयुक्त अक्षर के पहले का और (ख) अनुस्वार तथा (ग) विसर्ग[1] से युक्त 'ह्रस्व वर्ण' गुरु माना जाता है।

ऽ ।

जैसे (क) 'गन्ध' में 'न्ध' संयुक्त अक्षर है, अत: इसके पहले का अक्षर 'ग' गुरु होगा[2]। परन्तु संयुक्त वर्ण के पहले के दीर्घ वर्ण की मात्रा में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जैसे, 'मान्धाता' में 'न्धा' के पहले का 'मा' इस नियम के कारण गुरु न माना जायगा, वह तो स्वत: गुरु है। यदि इस पर भी नियम का प्रयोग किया जाय तो 'मा' में तीन मात्राएँ होंगी, परन्तु कविता में तीन मात्रा (प्लुत) वर्णों की मात्राओं की गणना नहीं होती।

---

१. इस नियम को स्मरण करने के लिए संस्कृत का यह श्लोक कंठ कर लेना उपयोगी होगा:—

संयुक्ताद्यं दीर्घं, सानुस्वारं, विसर्गसम्मिश्रम्,
विज्ञेयमक्षरं गुरुं, पादान्तस्थं विकल्पेन।

अर्थात् संयुक्त वर्ण के पहले का, अनुस्वार एवं विसर्ग सहित तथा कभी कभी चरण के अन्त का वर्ण गुरु माना जाता है।

२. हमने बहुत से विद्यार्थियों को ऐसे वर्णों को भी गुरु समझते देखा है जिनके बाद 'ऋ' लगा हुआ वर्ण होता है; जैसे, 'सुकृत' या 'विकृत' में वे 'सु' और 'वि' की दो मात्राएँ समझते हैं। ऐसे अवसरों पर भूलना न चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कभी कभी इस नियम के अपवाद स्वरूप संयुक्ताक्षर के पहले का लघु वर्ण भी लघु ही माना जाता है, गुरु नहीं। संयुक्तवर्ण के पूर्व का ह्रस्व अक्षर कब गुरु होगा और कब लघु--इस बात को समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि जब संयुक्ताक्षर के पहले का लघु वर्ण खींचकर (जरा अधिक समय लगाकर) पढ़ा जाता है तब वह गुरु होता है और जब वह हलके से पढ़ा जाय (उसके उच्चारण में कम समय लगे) तब लघु होता है। जैसे, चन्दन, बन्धन, महन्त, गङ्गा, अञ्जन— इन शब्दों में क्रमशः 'च', 'ब,' 'ह,' 'ग' और 'अ' को उच्चारण करते समय जरा खींचना-सा होता है, इससे इनको उच्चारण करने में ह्रस्ववर्ण की अपेक्षा दुगुना समय लगता है और तभी इनकी दो मात्राएँ मानेंगे। ये गुरुवर्ण (ऽ) हैं। परन्तु 'तुम्हारा, सुन्यो, लह्यो, कुल्हाड़ा' में क्रमशः 'तु' 'सु' 'ल' और 'कु' लघु माने जाते हैं क्योंकि उन्हें धीरे से ह्रस्व की भाँति उच्चारण किया जाता है।

(ख) वंश, हंस, संशय, छंद, फंदा में क्रमशः 'व', 'ह', 'स', 'छ', और 'फ' अनुस्वार (ं) से युक्त ह्रस्व वर्ण होने से गुरु (ऽ) माने जायँगे।

(ग) निःसन्देह, छंदःशास्त्र, दुःख, अतःपर, अन्तःपुर में क्रमशः 'नि', 'द', 'यु', 'त', और 'त' विसर्ग से युक्त वर्ण हैं, इससे इन्हें भी 'गुरु' माना जायगा।

परन्तु यह जान लेना चाहिए कि 'चन्द्रविन्दु' (ँ) से युक्त वर्ण में दो मात्राएँ नहीं मानी जातीं। वह लघु होता है। जैसे—'हँसना', 'फँसना'—में 'ह' और 'फ' लघु हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(२) कभी कभी (सदैव नहीं, विकल्प से) चरण के अन्त का वर्णन लघु होने पर भी छंद के नियम में गड़बड़ी न होने देने के लिए गुरु मान लिया जाता है। कारण यह है कि उसके उच्चारण में गुरु वर्ण के समान ही लघु की अपेक्षा दूना समय लगता है। जैसे—

इच्छा न मेरी कुछ भी बनूँ मैं,
कुबेर का भी जग में कुबेर।
इच्छा मुझे एक यही सदा है,
नये नये उत्तम ग्रंथ देखूँ ॥

यहाँ दूसरे चरण का अन्तिम शब्द 'कुबेर' है। इसका अन्तिम वर्ण 'र' गुरु माना जायगा। क्योंकि जैसा अन्य तीनों चरणों में देखा जाता है इसके प्रत्येक चरण का अन्तिम वर्ण गुरु होना चाहिए।

ऐसे ही—

बलाभिमानी धरणी-धनेश।
कहो, कहाँ हैं अब वे जनेश ॥
चले गये हैं सब आप आप।
हुआ न दो ही दिन का प्रताप ॥

इस छन्द के प्रत्येक चरण के अन्तिम वर्ण के उच्चारण में गुरु की भाँति समय लगेगा और वैसा ही वह माना जायगा। अन्यथा छंद की गति गड़बड़ हो जायगी।

(३) हलन्त वर्ण के पहले का वर्ण भी गुरु माना जाता है और हल् की मात्रा नहीं गिनी जाती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

।।ऽ ऽऽ

जैसे--भगवन् राजन् में 'न्' कार की कोई मात्रा नहीं है और 'व' तथा 'ज' गुरु हैं।

(४) लिखने में दीर्घ-सा जान पड़ने पर भी उच्चारण में ह्रस्व होने पर किसी वर्ण में एक मात्रा ही मानी जाती है। वह लघु ही रहता है। जैसे--

।। ।।ऽ। ऽ। ।। ऽऽ
मोहिं उपदेस दीन्ह गुरु नीका

में पहिले अक्षर 'मो' का उच्चारण दीर्घ नहीं है। इससे इसे लघु मानते हैं।

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
इसी प्रकार "एक सुवन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा" में पहला 'ए', 'य' की तरह उच्चारित होने से, लघु ही माना जायगा। ऐसे ही "मोहिफा हँससि कि कोहरहिं"--में "मो" लघु माना जायगा।

अतः 'ओ' और 'ए'—इन स्वरों या इनके मेल से बने व्यंजनों के उच्चारण के अनुसार ही इनकी मात्राएँ एक या दो गिननी चाहिए।

(५) किसी शब्द के या वाक्य के सर्व प्रथम संयुक्त अक्षर में यदि दीर्घ मात्रा लगी होगी तो वह गुरु माना जायगा, और यदि ह्रस्व होगी तो लघु। जैसे,

।।। ऽ।
'श्रवण' में 'श्र' लघु है और स्वार्थ में 'स्वा' गुरु तथा 'र्थ' लघु। (यह ऊपर भी बतलाया जा चुका है।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह तो हुई 'मात्रिक' छन्दों के सम्बन्ध में सदैव ध्यान रखने की बात। अब वर्णवृत्तों के विषय में भी नीचे लिखी बातें समझ लेनी चाहिए।

गण

तीन अक्षरों के सम्मिलित समूह का नाम 'गण' है। इस प्रकार के समूह संख्या में आठ हैः—मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण और तगण। किस गण में लघु और गुरु वर्ण किस क्रम से आने चाहिएँ इसका ज्ञान नीचे लिखी तालिका से हो जायगा।

सक्षिप्त नाम-सूचक गण का पहला वर्ण	गण का नाम	लक्षण	सङ्केत चिह्न द्वारा व्यक्त रूप	उदाहरण
म	मगण	तीनों वर्ण गुरु	SSS	जामाता
न	नगण	तीनों वर्ण लघु	।।।	सरल
भ	भगण	पहला वर्ण गुरु	S।।	सागर
य	यगण	पहला वर्ण लघु	।SS	विधाता
ज	जगण	बीच का वर्ण गुरु	।S।	सुधार
र	रगण	बीच का वर्ण लघु	S।S	साधना
स	सगण	अन्त का वर्ण गुरु	।।S	सुखदा
त	तगण	अन्त का वर्ण लघु	SS।	बारात

गणों के इन नामों और इनके लक्षणों को याद रखने के लिए संस्कृत और हिंदी दोनों में बहुत से सूत्र हैं। उनमें से दो एक यहाँ बतलाये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गणों के नाम तो 'मनभयजरसत'[1] यह याद कर लेने स न भूलेंगे। स्मरण रहे कि इनमें से एक-एक अक्षर गणों के नाम का आदि अक्षर है।

"य मा ता रा ज भा न स ल ग म्"

इस सूत्र में (१) पहले आठ अक्षर गणों के नाम के आदि वर्ण हैं; 'ल' और 'ग' 'लघु' और 'गुरु' सूचक—इन शब्दों के आद्यक्षर हैं। 'म्' का भी उपयोग है। बतलाया जा चुका है कि हलन्त वर्ण की मात्रा कविता में नहीं गिनी जाती, और उसके पहले का लघु वर्ण गुरु मान लिया जाता है। अतः 'ग' को ('गा' के सदृश मानकर) गुरु वर्ण मानना चाहिए। (२) इस सूत्र से गणों का लक्षण जानने के लिए क्रमशः तीन वर्णों को एक साथ लेना चाहिए। उस तीन वर्णों के समुदाय के पहले अक्षर से गण का नाम जान लिया जायगा और उस में जिस क्रम से लघु और गुरु वर्ण होंगे वही उस गण के वर्ण होंगे। जैसे, पहले तीन अक्षर लीजिए—'यमाता'—इससे यगण के ल ग ग (ISS) वर्ण प्रकट हो गये। ऐसे ही बीच में से 'राजमा' लेने पर रगण (SIS) जाना जायगा। अन्तिम गण जानने के लिए 'सलगम्' लेना होगा। जैसा बत-

---

१. गणों के नाम और रूप स्मरण रखने में नीचे लिखी पंक्तियाँ भी सहायक हो सकती हैं:—

मागाना, नगन, भागन, यगाना, रागना, सगना,
जगानहिं और तागानहिं, समझ कर कीजिए रचना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लाया जा चुका है यह 'सलगा' के सदृश होगा और सगण को (।।ऽ) स्पष्ट कर देगा। शेष गण इसी रीति से निकाल लेने चाहिए।

गणों के देवता और उनका फल

पिंगल-शास्त्र के अनुसार प्रत्येक गण का एक देवता होता है, और उसका अलग-अलग फल होता है। उक्त आठ गणों में से चार शुभ माने जाते हैं और चार अशुभ। इनमें से 'म न भ य' शुभ गण हैं और 'ज र स त' अशुभ। कविता के आरम्भ में, सब से पहले ऐसे शब्दों का प्रयोग न होना चाहिए जिनसे अशुभ—'ज र स त' में से कोई—गण बनता हो, नहीं तो काव्य सदोष और हानिकर होगा। परन्तु यदि कविता का पहला शब्द ईश्वर या देव-वाचक होता हो तो उसके अशुभ गणों में से किसी एक में से होने पर भी यह दोष नहीं माना जाता।

नीचे लिखे दोहों से शुभ और अशुभ गण और उनके देवता का स्मरण रखना आसान हो जायगा। इनमें गणों का लक्षण भी बतलाया गया है।

'म' ति गुरु 'न' ति लघु भादि (भ+आदि) गुरु यादि [य+आदि] लघू—सुभदानि।

महि, अहि, ससि, जल, क्रमहिं ते इष्ट देवता जानि
'ज' गुरु मध्य 'रो'(=र) मध्य लघु, 'स' गुरु अंत 'त' ल अंत
इते असुभ गण रवि, अगिनि पवन, ख, देव कहंत[1]

(भिखारीदास)

(ति=तीन, ख=आकाश)

---

१. इन श्लोकों में यह बात और अधिक अच्छे ढंग से कही गई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जिन वर्ण वृत्तों में गणों का नियम होता है उनमें भी गण संबंधी दोष नहीं माना जाता, कारण उनमें आदि गण चाहे अशुभ क्यों न हो, यदि नियम होगा तो वह आरंभ में आएगा ही। जैसे, 'वसंततिलका' में (जिसका विवेचन आगे किया जायगा) 'त भ ज ज ग ग' होना चाहिए! अतः 'तगण' पहले आएगा ही, यद्यपि यह अशुभ गण है। (परन्तु आजकल के नये खेवे के कवि इस विचार को मानते ही नहीं, शायद उनमें से अधिकांश जानते भी नहीं, और कदाचित् जानने की चेष्टा भी नहीं करते या जानते हुए भी नहीं मानते।)

जैसे अशुभ गणों का कविता के आरंभ में प्रयोग अवांछनीय माना जाता है वैसे ही कुछ

अशुभ और दग्धाक्षर अक्षरों का भी उसके आरंभ में आना सदोष समझा जाता है। ऐसे अक्षरों को 'अशुभ' कहते हैं। स्वर सभी शुभ माने गये हैं। व्यंजनों में क, ख, ग, घ | च, छ, ज, | त, द, ध, न | य, श, स | ये शुभ हैं और शेष सब अशुभ। इन अशुभ वर्णों में भी 'झ, ह, र,

---

है। इनमें क्रमशः गणों का नाम देवता और फल बतलाया गया है।

मो भूमिः श्रियमातनाति य जलं वृद्धिं र चाग्निर्मृतिम्
सो वायुः परदेशदूरगमनं त व्योम शून्यं फलम्
जः सूर्यो रुजका ददाति विपुलं भेन्दुर्यशो निर्मलम्
नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

म, ष'—ये पाँच तो अत्यन्त दूषित माने गये हैं। इन्हें 'दग्धाक्षर' कहते हैं। इन्हें कदापि किसी कविता के प्रारम्भ में न आना चाहिए। परन्तु यदि ये 'गुरु' या देवता के नाम के आद्यक्षर होकर आवें तो इनका भी दोष मिट जाता है।

तुक

छंद के चरणों के अन्त में जब एक ही अक्षर (व्यंजन या स्वर) आया करता है तब उस अक्षर की एकता (या समता) को तुक कहते हैं। तुक की उत्तमता के लिए अन्तिम व्यंजन के साथ ही अन्तिम स्वर की समता भी अपेक्षित है। हिन्दी में अधिकतर तुकान्त (या अन्त्यानुप्रास से युक्त) कविता ही पहले से होती आयी है। इस कारण इसके संस्कार ही तुक-समेत (या तुकान्त) कविता के हो गये थे। फलतः तुक से एक विशेष प्रकार का कर्ण-सुखद आनन्द मिलने के कारण कुछ लोगों की समझ में कविता में तुक का होना अनिवार्य या अत्यावश्यक-सा प्रतीत होता है। परन्तु संस्कृत में प्रचुर परिमाण में तुकविहीन कविता पायी जाती है; और हिन्दी में भी श्रीव्रजलाल दवे कृत शकुन्तला और उत्तर-रामचरित के अनुवादों और पं० सरयूप्रसाद मिश्र के रघुवंश के अनुवाद तथा श्रीहरिऔध जी के प्रियप्रवास एवं 'मधुपजी' द्वारा अनूदित बँगला के मेघनादवध—जैसे महाकाव्य तक पूर्णतया भिन्न तुकान्त छंदों में रचे हुए मिलते हैं। इसलिए, सतुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार की कविता हो सकती है। फिर भी तुक से कविता की रोचकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अधिक हो जाती है। तुक की उत्तम, मध्यम और अधम— ये तीन कोटियाँ निश्चित की गई हैं। १—यदि पद्य के अन्त में दो गुरु (ऽऽ) आवें तो वहाँ पाँच मात्राएँ एक-से स्वर की होने पर तुक उत्तम होगा, चार मात्राओं का सम-स्वर होने से मध्यम और इससे कम का अधम होगा। २—इसी तरह पद्यान्त में गुरु लघु (ऽ।) या लघु गुरु (।ऽ) होने पर पाँच मात्राओं का तुक उत्तम, चार का मध्यम और तीन का अधम तथा एक का त्याज्य होता है। ३—और यदि पद्य के अन्त में दो लघु (।।) आवें तो चार मात्राओं की रूपकता होने पर तुक उत्तम, दो का मध्यम और एक का अधम होगा।

हिन्दी में प्रायः पाँच प्रकार की तुकान्त कविता देखी जाती है :—

१—सर्वान्त्य—जिस छंद के चारों चरणों में तुक मिलता हो, जैसे सवैया, कवित्त।

२—समान्त्य—(सम=२, ४ चरण) जिस छन्द में केवल दूसरे और चौथे चरणों में तुक मिलता हो, जैसे दोहा, बरवै। या जैसे नीचे लिखा छन्द —

जो किसी को कभी नहीं भाती
2—है उसी की तुझे लगन प्यारी
क्यों लगी आग तो न मुँह तुझ में
4—बात लगती अगर लगी प्यारी

३—विषमान्त्य—(विषम = १, ३ चरण) जिस छन्द में केवल पहले और तीसरे चरणों में तुक मिलता हो, जैसे, सोरठा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४—विषमान्त्य-समान्त्य—(१, ३; २, ४ चरण) जिस छंद में विषम (१, ३) चरणों का तुक आपस में मिलता हो, और सम (२, ४) का आपस में। जैसे—

तो न वह करतूत करतूत ही
जो अँधेरे में न उजियाली रखे।
तो निराली बात उसमें क्या रही
जो न काली मूँछ मुँह-लाली रखे॥

कविता में संख्या सूचक शब्दों का विशेष महत्त्व है।

पद्य में संख्या सूचित करने के लिए प्राय: उसके सूचक शब्दों का ही प्रयोग हुआ करता है। कुछ संख्या-सूचक शब्द ये हैं:—

० के लिए—आकाश (और उसके पर्याय वाचक अन्य शब्द)
१ ,, —आत्मा, भूमि, चन्द्र, गणेश का दाँत,
२ ,, —पक्ष (पखवारा), आँख, भुजा, नयन, कान
३ ,, —गुण, ताप, राम, काल, अग्नि, शिव के नेत्र, लोक
४ ,, —वेद, युग, वर्ण, आश्रम, पदार्थ, ब्रह्मा के मुख
५ ,, —शर, पाण्डव, गति, प्राण, यज्ञ, कन्या, भूत (तत्व) गव्य
६ ,, —(खाद्य) रस, राग, भौंरा के पैर, वेदाङ्ग, शास्त्र, ऋतु, कार्तिकेय के मुख
७ ,, —ऋषि (या मुनि) स्वर, सागर, ताल, गिरि, लोक, वार, (सूर्य के रथ के) घोड़े
८ ,, —दिग्गज, वसु, सिद्धि, याम (पहर), योग
९ ,, —निधि, भक्ति, ग्रह, अंक, रंध, (कविता के) रस, भूखण्ड
१० ,, —दिशा, दशा, दोष, रावण के शिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

९—सम-विषमान्त्य (सम विषम, विषम-सम अन्त्य)—जिस छंद में पहले दूसरे की तथा तीसरे चौथे चरण की तुक मिलती हो। जैसे चौपई, चौपाई।

ऊपर तुक के अनुसार छन्दों का विभाग किया गया है।

सम, अर्धसम और विषम

इसी प्रकार छंद के चरणों में मात्राओं या वर्णों की संख्या के अनुसार भी उनके वर्ग बनाये जा सकते हैं। (१) जिन छन्दों के चारों चरण (मात्रा वा वर्ण की संख्या में) समान

---

११ ,, —रुद्र,

१२ ,, —शशि, सूर्य, राशि

१३ ,, —किरण, नदी

१४ ,, —भुवन, रत्न, विद्या, मनु

१५ ,, —तिथि

१६ ,, —संसार, शृङ्गार, कला

१८ ,, —पुराण

२० ,, —नख

इस संबंध में यह आवश्यक नियम भी जान लेना चाहिए—साधारण नियम के विपरीत कविता में अंकों की गिनती दाहिनी ओर से बांई ओर को गिनने की परिपाटी है (अंकानां वामतो गतिः) जैसे "कर[२] मुख[१] निधि[९] भू[१] संख्यक सन् की चौदहवीं एप्रिल है आज" (मैथिलीशरण गुप्त) में १९१२ सन् होगा।

प्रस्तार, मेरु, मर्कटी, पताका, सूची, पाताल, उद्दिष्ट, नष्ट, खंडमेरु—इन नौ प्रत्ययों का वर्णन गणित से सम्बन्ध रखने के कारण अधिक लोगों को उबा देने वाला होने से यहाँ नहीं किया जाता। इन सब का उपयोग भी आजकल बन्द-सा हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हों उन्हें 'सम'; (२) जिन छन्दों में पहले-तीसरे और दूसरे-चौथे चरणों में मात्रायें या वर्ण समान-संख्यक हों उन्हें 'अर्ध-सम' और (३) जिनके चारों चरणों की मात्राएँ या वर्ण भिन्न-भिन्न (असमान) हों उन्हें 'विषम' कहते हैं। ('उभय' छंद तो इन सम, विषम या अर्ध-सम के अंतर्गत हो सकते हैं, परन्तु 'स्वच्छंद छंद' इस बन्धन से भी मुक्त या स्वच्छन्द हैं।)

हिन्दी के उन छन्दों को भी 'विषम' कहा जाता है जिन में छः चरण हुआ करते हैं, जैसे, छप्पय और कुंडलिया (ये दोनों छंद, जैसा कि आगे बतलाया जायगा, दो-दो छन्दों के मेल से बने हैं—इसी कारण इन्हें विषम माना जाता है)

इसके अतिरिक्त मात्राओं और वर्णों की संख्या के विचार से भी छन्दों के दो भेद किये जाते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। मात्रिक वृत्तों में ३२ मात्रा तक के छन्दों को 'साधारण' कहते हैं और इससे अधिक मात्रा वालों को 'दंडक'। वर्ण-वृत्तों में २६ वर्णों तक के छंद 'साधारण'[१] कहे जाते हैं और इससे अधिक वर्ण वाले 'दंडक'।

सामने दिए हुए वृक्ष से उपर्युक्त विवेचन अधिक बोधगम्य हो जायगा।

---

१. वर्ण-वृत्तों में २२ से लेकर २६ वर्ण वाले छन्दों को "सवैया" कहते हैं। इसके कई भेद होते हैं, जिनमें मुख्य का वर्णन आगे यथास्थल किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऊपर कहे हुए छन्दों के विविध प्रकार में से कुछ अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध वृत्तों का वर्णन आगे, संक्षेप में, किया जाता है। छन्दों का लक्षण आसानी से कंठाग्र किया जा सके -- इसके लिए प्रत्येक के आरम्भ में एक 'सूत्र' लिखा गया है, जो छन्द के एक चरण का उदाहरण भी है। उसे कंठाग्र कर लेने से छन्द के लक्षण के साथ उसका एक चरण ज्ञात हो जायगा, कभी-कभी दो चरण भी विदित हो जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मात्रिक और वर्ण-वृत्तों में से कुछ प्रधान छन्दों का विवरण

मात्रिक-सम

(साधारण)

तोमर

(तोमर राशि[1] गल अन्त)

तोमर के प्रत्येक चरण में १२ मात्राएँ होती हैं, अन्त में क्रमशः गुरु और लघु वर्ण होते हैं। जैसे—

ऽ।। ।।। ।।ऽ।
चौदह सहस रनधीर = १२, अन्त में क्रमशः गुरु और लघु
अति भीम राछस बीर = १२ ,, ,, ,,
खरदूषनादि कराल = १२ ,, ,, ,,
तुमने हने तिहि काल = १२ ,, ,, ,,

(सत्यनारायण कविरत्न)

उल्लाला[2]

(उल्लाला आ|ठ रु पाँच)

उल्लाला के प्रत्येक चरण में ८ और ५ मात्राओं पर यति देकर १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे,

---

१. बारह। २. इस छन्द के नाम से मिलता जुलता एक दूसरा छन्द 'उल्लाल' है, यह मात्रिक अर्ध-सम है। इस 'उल्लाल' को कभी कभी भ्रमवश 'उल्लाला' ही कह दिया जाता है। इन दोनों का अन्तर आगे यथास्थान दिये इस 'उल्लाल' के विवरण को पढ़कर अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऽ। ।ऽ।। ऽ।।।
ध्यान करो हरि | के चरण = १३ मात्राएँ; ८,५, मात्राओं पर यति
उसके गुण गा | ओ विमल = १३ ,, ,,
पाओ उसकी | भक्ति तुम = १३ ,, ,,
इससे बढ़कर | है न कुछ = १३ ,, ,,

(रा. ब. शु.)

चौपई

(तिथि[1] गल/अन्त चौपई माहिं)

चौपई में प्रत्येक चरण में पंद्रह मात्राएँ होती हैं। अन्त में क्रमशः गुरु और लघु वर्ण होते हैं। जैसे—

।।।। ऽ ।। ।ऽ ।ऽ।
उपवन में अति भरी उमंग = १५ मात्राएँ, अन्त में गुरु, लघु
कलियाँ खिलती हैं बहुरंग = ,, ,, ,,
पर मिलता है उसको मान = ,, ,, ,,
जो है सुखद सुगंध-निधान = ,, ,, ,,

(रामनरेश त्रिपाठी)

चौपाई

(कल सोलह जत[2] तजि चौपाई)

चौपाई के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त में जगण (।ऽ।) या तगण (ऽऽ।) आने से छंद की सुंदरता जाती रहती है; दूसरे शब्दों में, इसके अंत में गुरु लघु (ऽ।) के आने से छंद की रोचकता घट जाती है।

---

१. पन्द्रह। २. जगण, तगण।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

S I I S I I S I I I I I I I I I I I I I I S I I I I I I
कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्ही[1]

(तुलसी दास)

विशेष—चौपई और चौपाई के दो चरणों को अर्धाली कहते हैं।

अरिल्ल

(सोलह य लल[2] नहीं ज अरिल्ला)

अरिल्ल का हरेक चरण सोलह मात्राओं का होता है। अन्त में या तो यगण (।SS) होना चाहिए या दो लघु। परन्तु जगण (।S।) न होना चाहिए।

S I I S S I I I I S S
ईश्वर ही है सब सुख दाता = १६ मात्राएँ, अन्त में यगण
भक्तों का वह सब विधि त्राता = ,, ,, ,,
इसी लिए भव-मोह छोड़कर = १६ मात्राएँ अन्त में दो लघु
रहो उसी से नेह जोड़कर = ,, ,, ,,

(रा. व. शु.)

१. गोस्वामी जी की अधिकांश चौपाइयों में अन्तिम वर्ण गुरु पाया जाता है; उनमें SS या ।S का नियम अधिक निभाया गया है। हिन्दी कविता में यही आदर्श चौपाइयां हैं।

२. लघु, लघु अर्थात् दो लघु।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्लवंगम

(आदि 'ग' दिग्गज[१] | नदी[२] 'ज' 'ग' न्त प्लवंगमै)

प्लवंगम के प्रति चरण में ८ और १३ के विराम से २१ मात्राएँ होती हैं। आदि वर्ण गुरु, तथा अन्त में एक जगण (।ऽ।) और एक गुरु होता है। जैसे,

ऽ । । ऽ । ।   । ऽ । । । । । ऽ । ऽ
है जग नश्वर | यहाँ विषय सुख तुच्छ है।
जन्म-मरण का | स्थान दुःख का गुच्छ है।
याते हरिजन | संग सदा मन दीजिए।
रामकृष्ण गुण- | ग्राम नाम-रस भीजिये।

(प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ ८, १३, पर यति)

(जगन्नाथ प्रसाद 'भानु')

रोला

(रोला कल चौबीस | रुद्र,[३] सरिता[४] यति धारी)

रोला के प्रत्येक चरण में ११ और १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। कुछ लोग इसके अंत में दो गुरु वर्णों का होना आवश्यक मानते हैं। परन्तु यह अनिवार्य नही जैसै,

ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ   । ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ
जीती जाती हुई | जिन्होंने भारत-बाजी = २४मात्राएँ,अंतमें २गुरु
निज बल से मल मेट | विधर्मी मुगल कुराजी = ,, ,,
जिन के आगे ठहर | सके जंगी न जहाजी = ,, ,,
हैं ये वही प्रसिद्ध | छत्रपति भूप शिवाजी = ,, ,,

(कामताप्रसाद गुरु)

---

१. आठ। २. तेरह। ३. ग्यारह। ४. तेरह।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परन्तु जब रोला के चारों चरणों में ग्यारहवीं मात्रा लघु होती है तब उसे काव्य-छंद कहते हैं। नीचे का रोला 'काव्य' है। (कुंडलिया में इसी 'काव्य' नामक रोला का प्रयोग होना चाहिए। आगे कुंडलिया के उदाहरण में भी यह बात देखनी चाहिए कि उसका 'रोला' काव्य छंद है।)

। । ऽ । । । । ऽ । ऽ । । । । । ऽ । । । ।
कोउ अंजुलि जल पूरि | सूर-सनमुख है अरपत
कोउ देवनि कौं देत | अर्घ पितरनि कोउ तरपत
कोउ तट डटि पट सुवट | साजि संध्या सुभ साधत
जप-माला मन लाइ | इष्ट देवहिं आराधत

प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ, ११ वीं लघु

(रत्नाकर)

दिक्-पाल (दिग्पाल)

(आदित्य[1] युग[2] विराजें | दिक्पाल छंद माहीं)

दिग्पाल में १२, १२ के विराम से प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं। इसकी पाँचवीं और सत्रहवीं मात्राएँ सदैव लघु होती हैं जैसे,

। ऽ । । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ
निहार सखि सारिका कु | छ कह बिना शान्त-सी
दिये श्रवण है यहीं इ | धर मैं हुई भ्रान्त-सी
इसे पिशुन जान तू; सु | न सुभाषिणी है बनी
'धरो !' खगि, किसे धरूँ ? धृ | ति लिये गये हैं धनी

प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ, ५वीं और १७वीं लघु

(मैथिलीशरण गुप्त)

१. बारह। २. दो, आदित्य युग = १२×२, चौबीस।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रूपमाला या मदन

(रत्न[1] दिशि[2] कल रूप माला | या मदन गल अन्त)

रूपमाला में १४, १० के विराम से प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं। अन्त में क्रमशः गुरु और लघु (ऽ।) होना चाहिए। (आरंभ में त्रिकल (ऽ।) के पश्चात् द्विकल (ऽ) वर्ण रखने से इसका सौंदर्य बढ़ जाता है, इससे आरम्भ में गलग (ऽ।ऽ) का होना आवश्यक-सा है।) जैसे,

ऽ।ऽ ।। ऽ। ऽ।। ऽ।ऽ ।। ऽ।
जात है जित बाजि 'केसव' | जात हैं तित लोग
बोलि बिप्रन दान दीजत | तत्र तंत्र सुभोग
वेणु वीण मृदङ्ग बाजत | दुन्दुभी बहु भेव
भाँति भाँतिन होत मङ्गल | देव-से नरदेव

प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ, १४, १० पर यति

(केशवदास)

कामरूप

(निधि[3] मुनिन[4] दिसि[5] धरि | कामरूपहिं | अन्त गल युत मित्त)

कामरूप के प्रत्येक चरण में ९, ७, १० के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं, अंत में क्रमशः गुरु, लघु होता है। जैसे—

---

१ चौदह। २ दश। ३. नौ। ४. सात। ५. दश।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

।।।।।।।ऽ ।।।।।।। ऽ।।।।।ऽ।

सित पछ सुदसमी | विजय तिथि सुर- | वैद्य नखत प्रकास=

कपि भालु-दलयुत | चले रघुपति | निरखि समय सुभास

तरु-कुधर मुख नख | शस्त्र चित बुधि | वीर्य विक्रम गूढ़

नभ भूमि जहँ तहँ | भरे वनचर | राम-कृपा अरूढ़

प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ; ९, ७,१० मात्राओं पर विराम

(जगन्नाथ प्रसाद 'भानु')

गीतिका

(रत्न[1], रवि[2] यति; अन्त लग हो | तब बनेगा गीतिका)

गीतिका[3] के प्रत्येक चरण में १४, १२ की यति से २६ मात्राएँ होती हैं। अन्त में क्रमशः लघु गुरु होता है। [इस छंद के प्रत्येक चरण की तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं, और चौबीसवीं मात्रा लघु होनी चाहिए,और अन्त में रगण (ऽ।ऽ)। ऐसा होने से यह अत्यन्त श्रवण-सुखद हो जाता है।]

ऽ।ऽऽऽ।ऽऽ ऽ।ऽ ।।ऽ।ऽ

मातृ भू-सी मातृ-भू है | अन्य से तुलना नहीं

यत्न से भी ढूँढने पर | मिल नहीं सकती कहीं

जन्मदात्री माँ हमारी | प्रेम में विख्यात है

किन्तु वह भी मातृ-भू के | सामने बस मात है

प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ १४, १२ पर यति

---

१. चौदह। २. बारह।

३. 'गीतिका' नामक वर्णवृत्त भी होता है। उसमें १२ और ८ वर्णों की यति से १ सगण, २ जगण, १ भगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(इस छंद की तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं, और चौबीसवीं—तीसरी में क्रमशः सात-सात जोड़ने से बनी हुई—मात्राएँ लघु हैं। अंत में रगण भी है)

सार या ललितपद

(सोलह बारह पर यति देकर | छन्द 'सार' ग ग अन्ते)

अथवा—कला[1], राशि[2] यति अन्त युगल गुरु | सरस ललित पद गाओ।

सार या ललितपद के प्रत्येक चरण में १६, १२ पर यति देकर २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में दो गुरु होते हैं जैसे,

ऽऽ ऽ ऽऽ ऽऽ ऽ ऽऽ ।। । ।ऽ ऽ
लज्जा की लाली फैली थी | भौंहें तनिक चढ़ी थीं
ग्रीवा नीची थी, पर आँखें | नृप की ओर बढ़ी थीं
कहती थीं मानों वे उससे | क्या हमको छोड़ोगे?
आर्यपुत्र, दो दिन पीछे ही | क्या यों मुँह मोड़ोगे!

प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ, १६, १२ पर यति, अंत में २ गुरु

(कामताप्रसाद गुरु)

एवं १ गुरु—इस प्रकार २० वर्ण होते हैं। जैसे—

सज जीभ री, सु लगै मुही सुन मो कहा चित लायके
नय काल लक्ष्मण जानकी सह राम को नित गायके
पद, मो शरीरहिं रास के कल धाम को लय धावहू
कर, बीन लै अति दीन है नित गीति कान सुनावहू

(छन्द प्रभाकर)

१ सोलह। २. बारह।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हरिगीतिका

(श्रृंगार[1] दिनकर[2] यति चरम[3] | लग | गाइये हरिगीतिका)

हरिगीतिका के हर पद में १६, १२ के विराम से २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में, क्रमशः एक लघु और एक गुरु वर्ण होता है[4]। जैसे,

। । ऽ । ऽ ऽ ऽ । ऽ । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ
खग वृन्द सोता है अतः कल | कल नहीं होता वहाँ,
बस मन्द मारुत का गमन ही | मौन है सोता जहाँ
इस भाँति धीरे से परस्पर | कह सजगता की कथा
यों दीखते हैं वृक्ष ये हों | विश्व के प्रहरी यथा

२८ मात्राएँ, १६, १२ पर यति, अंत में लघु, गुरु

(मैथिलीशरण गुप्त)

वीर या आल्हा

(सोलह, पन्द्रह यति, गल अंता | आल्हा वीर रचो अभिराम[5])

वीर या आल्हा छंद के प्रत्येक चरण में १६, १५ की यति से ३१ मात्राएँ होती हैं। जैसे,

---

१. सोलह। २. बारह। ३. अंत में। ४. 'सार' और हरिगीतिका में मात्राओं की सख्या और विराम एक-समान होता है। परन्तु 'सार' में अंत में दो गुरु होते हैं और हरिगीतिका में लघु गुरु। इनका यह अन्तर ध्यान में रखना चाहिए।

५. इसका लक्षण यह भी है:—

"चौपाई चौपई चरण इक मिला, रचो आल्हा या वीर"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऽऽ ऽऽ ।। ऽ।। ऽ ऽऽ ।ऽ ।ऽऽऽ।
मुर्छा लौटो तब नाहर को | आगे बढ़े पिथौराराय
नौ सै हाथिन के हलका माँ | अकले घिरे कनौजीराय
सात लाख से चढ्यो पिथौरा | नदी बेतवा के मैदान
आठ कोस लौं चलै सिरोही | नाहीं सूझै अपुन-बिरान

प्रत्येक चरण में ३१ मात्राएँ, १६, १५ पर यति

(जगनिक)

त्रिभंगी[2]

(दस, अठ, अठ संगी | षट्, जन रंगी | छंद त्रिभंगी | गांत भला)

त्रिभंगी के प्रत्येक चरण में, १०,८,८ और ६ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु [ग+अंत] होना चाहिए, परन्तु जगण [।ऽ।] वर्जित है। जैसे—

।।ऽ। । ऽऽ ।। ।। ऽऽ ।।। ।ऽ।। ऽ ऽऽ
मुनि साप जो दीन्हा | अति भल कीन्हा | परम अनुग्रह | मैं माना
देखेउँ भरि लोचन | हरि, भवमोचन | इहै लाभ शं- | कर जाना
बिनती प्रभु मोरी | मैं मति भोरी | नाथ न माँगौ | वर आना
पदकमल परागा- | रस अनुरागा | मम मन-मधुप क | रै पाना

प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ, १०, ८, ८, ६ पर यति

(तुलसीदास)

---

२. त्रिभंगी नामक ३४ वर्णों (६नगण,२ सगण,१ भगण,मगन सगण और गुरु का वर्णवृत्त भी होता है उसका एक चरण नीचे दिया जाता है:—
सजल जलद तनु लसत बिमल तनु श्रम कन झलको है उमगो है बुंदमनो है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मात्रिक-अर्धसम

बरवा

(विषमै बारह बरवा | सम दिन[1] जान्त[2])

बरवा के विषम (पहले, तीसरे) चरणों में १२ मात्राएँ होती हैं और सम (दूसरे, चौथे) में ७। (इस प्रकार इसके प्रत्येक 'दल' में १९ मात्राएँ होती हैं।) सम के अंत में जगण (।ऽ।) इसकी सुन्दरता को बढ़ा देता है। जैसे,

। । । । ऽ ऽ । । । । ऽ । । ऽ ।
अवधि-शिला का उर पर | था गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी | दृग जल धार
१२,७ १९=मात्राएँ अंत में जगण

(मैथलीशरण गुप्त)

दोहा

(तेरह विषम न जादि[3] में | सम ग्यारह कल लांत[4])

दोहा के विषम (पहले तीसरे) पदों में १३ और सम (दूसरे चौथे) पदों में ११ मात्राएँ होती हैं। (विषम के) आदि में जगण (।ऽ।) न पड़ना चाहिए, और सम के अंत में लघु (।) पड़ना आवश्यक है। यथा,

ऽ । । । । । । ऽ । ऽ । । ऽ । । । ।ऽ।
भावुक, निज पद-पद्म के | मधु से अब भरपूर = प्रत्येक दल में; १३,
दो ये आँखें आँजने | तिमिर-जाल हो दूर ११, कुल २४ मात्राएँ

(रायकृष्णदास)

---

१. सात। २. ज (जगण) अंत अर्थात् अन्त में जगण।
३. ज (जगण) आदि में न (हो) ४. ल (लघु) अन्त में (हो)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोरठा

(तेरह सम विषमेश[1] | दोहा-उलटा सोरठा)

सोरठा के विषम (पहले-तीसरे) चरणों में ११ और सम (दूसरे-चौथे) में १३, इस प्रकार प्रत्येक 'दल' में २४ मात्राएँ होती हैं। यह छंद दोहा का ठीक उलटा होता है। अर्थात् दोहा के पहले-तीसरे चरण सोरठा के दूसरे-चौथे होते हैं और दूसरे-चौथे उसके पहले-तीसरे। जैसे,

।। ।।।। ।। ऽ। ।। ऽ।। ।।।।।।।
जेहि सुमिरत सिधि होय | गननायक करिवर-बदन
।।। ।ऽ।। ऽ। ऽ। ऽ। ।।।।।।।
करहु अनुग्रह सोय | बुद्धि-रासि, सुभगुन-सदन

(तुलसीदास)

(इस सोरठा की विशेषता यह भी है कि इसके दूसरे-चौथे चरण में भी तुक मिलता है)

उल्लाल[2]

(तिथि[3] सरिता[4] सम विषम में | रख उल्लालहिं कीजिए)

उल्लाल के विषम [पहले, तीसरे] चरणों में १५ और

---

१. विषम + ईश (शंकर) = विषम में ग्यारह। २. इसे कुछ लोग भूल से 'उल्लाला' कहते हैं। उल्लाला का लक्षण मात्रिक सम छंदों के प्रकरण में बतलाया जा चुका है। "सुउल्लाल के विषय में कुछ कवि ऐसा कहैं हैं। दूजे चौथे चरण में अन्त्य वर्ण-त्रय लघु रहैं।"

जैसे—"सब भाँति सुशासित हों जहां, समता के सुखकर नियम
बस, उसी स्वतन्त्र स्वदेश में, जागें हे जगदीश, हम

३. पन्द्रह। ४. तेरह।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सम [दूसरे-चौथे] चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं। [कुछ लोग विषम और सम दोनों में १३, १३ मात्राएँ मान कर उल्लाल के एक दल में २६ मात्राएँ ही मानते हैं। परन्तु इसकी अपेक्षा प्रत्येक दल में २८ मात्रा वाला उल्लाल अधिक सुन्दर होता है।] यथा,

|| ||| ऽ| ऽऽ ||| || || ऽ|| ऽ |ऽ
(१) हम जिधर कान देते उधर | सुन पड़ता हमको यही
जय जय भारतवासी कृती | जय जय जय भारत मही

प्रत्येक चरण में १५ और १३ पर यति, कुल २८ मात्राएँ

(सियारामशरण गुप्त)

|ऽ ऽ |ऽ ऽ| ऽ ऽ ऽऽ ऽ || |ऽ
(२) सभी जातियाँ वेग से | हैं आगे को बढ़ रहीं
चटपट उन्नति शिखर पर | झपट-झपट कर चढ़ रहीं

प्रत्येक चरण में १३, १३ पर यति, कुल २६ मात्राएँ

(रूपनारायण पाण्डेय)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मात्रिक-विषम

कुंडलिया

(दोहा, रोला कुंडलित कर कुंडलिया होय)

कुंडलिया में कुल छः पद होते हैं, जिनमें से पहले दो चरण दोहा के दो 'दल' होते हैं और शेष चार रोला के चारों चरण। इसी प्रकार प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होने से इसमें कुल १४४ मात्राएँ होती हैं। कुंडलिया में पहले चरण का पहला शब्द [या पहले कुछ शब्द] और अंतिम चरण का अंतिम शब्द एक ही होता है [या अन्त के कुछ शब्द समान होते हैं]। साथ ही दोहा का चौथा चरण रोला का पहला चरण हुआ करता है। जैसे,

।।ऽऽऽ ऽ। ऽ ऽऽ ।। ऽ ऽ।
बगला बैठा ध्यान में | प्रातः जल के तीर । = १३+११ = २४
मानों तपसी तप करे | मलकर भस्म शरीर (दोहा)

।।।।ऽ। ।ऽ। ऽ। ।।ऽऽ।।ऽ
मलकर भस्म शरीर | तीर जब देखी मछली = ११+१३ = २४
कहँ 'मीर' ग्रसि चोंच | समूची फौरन निगली (रोला)
फिर भी आवें शरण | बैर जो तैज के अगला =
उनके भी तू प्राण | हरे रे, छी ! छी ! बगला =

(सैयद अमीरअली 'मीर')

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परन्तु गोस्वामी तुलसीदास की 'कुंडलिया रामायण' में इससे भिन्न कई प्रकार की कुंडलियाँ मिलती हैं। उनमें से दो के उद्धरण नीचे दिए जाते हैं। इनमें से प्रत्येक में दूसरे चरण का उत्तरार्द्ध या उसके कुछ शब्द तीसरे में और चौथे का पाँचवें में दोहराया गया है। साथ ही पहले चरण का पूर्वार्द्ध या उसके कुछ शब्द ही अन्तिम का उत्तरार्ध भी है।

(१) को बितान सुषमा कहै, जिहि थल सिद्धि कमाहिं
नटति लच्छमी किंकरी, रुख जुगवत पल जाहिं
रुख जुगवत पल जाहिं, जहाँ दुलहिनि वैदेही
बिधि हरि हर जम इंद्र होत चितवैं हित तेही
चितवैं हित तेही कृपा दूलह श्रीरघुपति रहै
समधी दशरथ जनक सम को बितान सुषमा कहै।

(२) आँगन रानी चलन सिखावति चारयो सुत कर लाई
गिरत परत उठि चलत हँसत पुनि रोवत, रहत रिसाई
रोवत रहत रिसाई झँगुली टोपी डारैं
मुक्तन माल बिदारि नैन भरि नीर निहारैं
नीर निहारैं हँसत सुनति अति तोतरि बानी
भजत भौंन को पैठि धरति लै आँगन रानी
(रा. ब. शुक्ल द्वारा संपादित 'काव्य-कुसुमाकर' से उद्धृत)

छप्पय

(छप्पय षट् पद-छंद, मिलि रोला उल्लाल)

छप्पय में कुल छः चरण होते हैं। उनमें से पहले ४ रोला के २४-२४ मात्राओं के (११, १३ की यति से) होते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और अन्तिम २ उल्लाल के २८-२८ (१५, १३, पर यति) या २६-२६ (१३, १३, पर यति) मात्राओं के होते हैं। इस प्रकार उल्लाल के दो प्रकारों के कारण छप्पय के भी दो प्रकार होते हैं। यथा—

S S I I I I S I I I I I I I S I I S
(१) नीलाम्बर परिधान | हरित पटवर सुन्दर है=११+१३=२४
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट | मेखला रत्नाकर है (रोला)
नदियाँ प्रेम-प्रवाह | फूल तारे मण्डन हैं ,,
वन्दीजन खगवृन्द | शेष-फल सिंहासन हैं ,,
I I S I I S I I S I S I I S I I I S I S
करते अभिषेक पयोद हैं | बलिहारी इस वेष की = १५+१३ = २८
हे मातृभूमि, तू सत्य ही | सगुण मूर्ति सर्वेश की (उल्लाल)
(मैथिलीशरण गुप्त)

S I I I I S S I S I I I I I I I S S
(२) उज्ज्वल हिम का रम्य | रूप तजकर गलती है ११ + १३
जन्म-भूमि को छोड़ | शीघ्रता से चलती है (रोला)
अचल पिता का सभी | प्रेम पीछे रहता है ,,
करके वह पाषाण | हृदय सब कुछ सहता है ,,
I I S S I I S I S I I S I I S S I S
पड़ता जो कुछ मार्ग में | करती मटियामेट है = १३×१३
किससे करने जा रही | तरंगिणी, तू भेंट है ? (उल्लाल)
(राय कृष्णदास)

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्णवृत्त-सम

साधारण

इन्द्रवज्रा

(ता ता ज गा गा शुभ इन्द्रवज्रा[1])

त त ज ग ग अर्थात् २ तगण (SSI,SSI) जगण (ISI) और दो गुरु (SS) इस प्रकार प्रत्यक चरण में ११ वर्णों का इन्द्रवज्रा होता है। जैसे,

S S I | S S I | I S I | S S
मैं जो न | या ग्रंथ | विलोक | ता हूँ = त त ज ग ग, ११ वर्ण
भाता मु | झे सो न | व मित्र | सा है
देखूँ उ | से मैं नि | त बार | बार ('र' दीर्घ वर्ण माना
मानो मि | ला मित्र | मुझे पु | राना जायगा)

(गिरधर शर्मा नवरत्न)

उपेन्द्रवज्रा

(उपेन्द्रवज्रा ज त जा ग गा है[2])

ज त ज ग ग अर्थात् जगण (ISI) तगण (SSI) जगण (ISI) और दो गुरु (SS)—इस तरह प्रति चरण में ११ वर्णों का उपेन्द्रवज्रा होता है। यह इन्द्रवज्रा से वर्णों की संख्या में समानता के साथ ही प्रायः पूर्ण रूप से मिलता जुलता है।

---

१. संस्कृत सूत्र—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ ज गौ गः

२. संस्कृत सूत्र—उपेन्द्रवज्रा ज त जास्ततोगौ

दूसरा सूत्र—उपेन्द्रवज्रा जि त जा गुरू दो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'इन्द्रवज्रा' का पहला वर्ण लघु (।), यानी तगण (ऽऽ।) का जगण (।ऽ।) कर देने से 'उपेन्द्रवज्रा' बन जाता है।

जैसे—

। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
कहीं व|हीं भूल | न जाइ|एगा = ज त ज ग ग, ११ वर्ण
पधारि|ए सत्व|र आइ|एगा
बने स्व|यं सत्प|थ सौख्य|कारी
सुकर्म | हों विघ्न-|विपत्ति|हारी

(कामता प्रसाद गुरु)

विशेष—इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के चरणों के भिन्न भिन्न प्रकार के मेल से भी कई छन्द बनते हैं, उन्हें 'उपजाति' कहते हैं। जैसे—

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
सद्धर्म | का मार्ग | तुम्हीं ब | ताते (इन्द्रवज्रा)
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
तुम्हीं अ|घों से ह|म को ब|चाते (उपेन्द्रवज्रा)
हे ग्रंथ | विद्वान् | तुम्हीं ब|नाते (इन्द्रवज्रा)
तुम्हीं दु|खों से ह|म को छु|ड़ाते (उपेन्द्रवज्रा)

इसी प्रकार और कई प्रकार के उपजाति हो सकते हैं। इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेल से बने हुए 'उपजाति' वृत्तों की १४ किस्में[३] होती हैं। अन्य दो प्रकार के छंदों के मेल से

३. इनके नाम ये हैं—कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हँसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, सिद्धि, ऋद्धि। इनमें से प्रत्येक के उदाहरण के लिए देखिए 'भाषा छंदोमंजरी' अथवा 'छंद प्रभाकर' पृ० १८२—८६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बने छंदों को भी 'उपजाति' कहते हैं। जैसे, नीचे लिखा छन्द 'उपजाति' है।

सूखे जरे बिखा पुनिहूँ, हरिजू के प्रताप सबै हरियै हैं
मालती चारु चमेली गुलाब की, सौरभ फेरि समीर समैहैं
ते नलिनी अरविन्द के बृन्द, सरोबर-वारि में सोभा सजैहैं
कीजै न सोच कछू अलि बावरे, बीते दिना सुख के पुनि ऐहैं
(श्रीधर पाठक)

'उपजाति वृत्तों' के नामकरण का यह भी नियम है कि उसमें जिस छन्द के अनुसार अधिक चरण रहते हैं, उसी का नाम उसे दे दिया जाता है।

दोधक

(दोधक भा भ भ गा ग मिलाओ[1])

'भ भ भ ग ग' अर्थात् ३ भगण [ऽ।। ऽ।। ऽ।।] और दो गुरु [ऽऽ]—इस प्रकार प्रत्येक चरण में ११ वर्णों का दोधक छंद होता है। जैसे,

ऽ।।ऽ।। ऽ।। ऽऽ
पाकर|मानव| देह ध|रा में = भ भ भ ग ग, ११ वर्ण
पाशव|वृत्ति त|जो जित|नी हैं
पुच्छ-वि|षाण-वि|हीन प|शू जो—
होन न|चाहत,|प्रेम क|रो तो (रा० ब० शुक्ल)

वंशस्थ

(विचार वंशस्थ रचो ज ता ज रा)

'ज त ज र' अर्थात् जगण (।ऽ।) तगण (ऽऽ।) जगण (।ऽ।)

1. संस्कृत सूत्र— दोधकमिच्छति भत्रितयाद्गौ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और रगण [ऽ।ऽ]—इस प्रकार प्रत्येक चरण में १२ वर्णों का वंशस्थ या वंशस्थविलम् होता है। जैसे'

।ऽ। ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
ललाम|ता कोम|लता स्व|कीय से = ज त ज र, १२ वर्ण
अनूप|ता पल्ल|व पत्र-|पुंज से
सलोच|नों को क|रती प्र|लुब्ध थी
प्रलोभ[1]|नीया ल|तिकाल|वङ्ग की

(हरिऔध)

भुजंगप्रयात

('य' चारों मिलाये भुंजंगप्रयाता[2])

[चार यगण [।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ] अर्थात् प्रत्येक चरण में १२ वर्णों का भुजंगप्रयात होता है। जैसे,

।ऽऽ। ऽऽ ।ऽऽ ।ऽ ऽ
तुझे बां|ध बाधा | सताती | नहीं है = य य य य १२ वर्ण
मुझे स|र्वदा मुक्ति पाती|नहीं है
प्रभो शं|करान|न्द आन|न्द दाता
सुझे क्यों | नहीं आ|पदा से | छुड़ाता

(शंकर)

---

१. स्मरण रहे कि यदि संयुक्त वर्ण चरण के आदि में हो तो उसका प्रभाव किसी पहले के वर्ण पर तो नहीं पड़ेगा। इससे उसकी मात्रा के विषय में साधारण नियम का पालन किया जायगा।

२. संस्कृत सूत्र—भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

द्रुतविलंबित

(द्रुतविलंबित होत न भा भरा[1])

'न भ भ र' अर्थात् नगण (।।।) दो भगण [ऽ।। ऽ।।] और रगण (ऽ।ऽ)--इस प्रकार प्रत्येक गण में १२ वर्णों का द्रुतविलंबित होता है। जैसे—

।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ
तनय | के बल | को वह | सोच के=न भ भ र, १२ वर्ण
तुरत | भूल ग|या मक|राक्ष को
फिर वि|चार कि|या दश|कंध ने
समर | शासन | दूँ घन|नाद को

(श्यामनारायण पांडेय)

मौक्तिकदाम (मोतियदाम)

('ज' चार धरो शुभ मौक्तिकदाम)

प्रत्येक चरण में चार जगण (।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ।) का मौक्तिक-दाम (या मोतियदाम) होता है। जैसे,

।ऽ ।। ऽ ।। ऽ।ऽ ।।
बड़े ज|न को न|हिं माँग|न जोग
फबै छ | ल साध | न में ल | घु लोग
रमाप|ति विष्णु | असङ्ग | अनूप
धरयो ए|हि कार|न वाम|न रूप

प्रत्येक चरण में ज ज ज, ज, १२ वर्ण

('धरयो' में 'ध' लघु और आगे का 'ए' भी लगु)

(देवीप्रसाद पूर्ण)

---

१. संस्कृत सूत्र—द्रुतबिलम्भितमाह न भौ भ रौ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वसंत तिलका

(जानो वसंत तिलका त भ जौ ज गौ गा[१])

'त भ ज ज ग ग' अर्थात् तगण (SSI) भगण (SII) दो जगण (ISI,ISI) और दो गुरु (SS)—इस प्रकार प्रत्येक चरण में १४ वर्णों का वसंत तिलका होता है। आठवें वर्ण पर यति होती है। जैसे,

S S I S I I I S I I S I S S
भू में रमी शरद की, कमनीयता थी
नीला अनन्त नभ निर्मल हो गया था
थी छा गई ककुभ में, अमितासिताभा
उत्फुल्लसी प्रकृति थी, प्रतिभात होती

प्रत्येक चरण में त भ ज ज ग ग, १४ वर्ण

(हरिऔध)

मालिनी

(न न म य य जुटा के मालिनी रम्य गाओ[२])

'न न म य य' अर्थात् दो नगण (III, III) मगण (SSS) और दो यगण (ISS,ISS)—इस प्रकार एक चरण में १५ वर्णों का 'मालिनी[३]' वृत्त होता है। इसमें ८वें वर्ण पर यति होती है, जैसे—

---

१. दूसरा सूत्र—गाओ वसन्ततिलका त भ जा ज गा गो
संस्कृत सूत्र—उक्ता वसन्ततिलका त भ जा ज गौ गः

२. दूसरा सूत्र—न न सि य यह काहे मालिनी मूर्ति धन्या
संस्कृत सूत्र—न नु म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः

३. 'मालिनी' नामक एक दूसरा वर्णवृत्त भी होता है। उसमें न न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

। । । । । ।ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
टप टप गिरते थे, अश्रु नीचे। निशा में
झड़ झड़ पड़ते थे, तुच्छ तारे। दिशा में
कर पटक रही थी निम्नगा पीट छाती
सन सन करके थी, शून्य की साँस आती
(प्रत्येक चरण में न न म य य, १५ वर्ण)

(मैथिलीशरण गुप्त)

शिखरिणी[1]

(रस,[2] स्थाणू[3] युक्ता। य म न स भ ला गा शिखरिणी)

छः और ग्यारह वर्णों के विश्राम से य म न स भ ल ग अर्थात् यगण (।ऽऽ) मगण (ऽऽऽ) नगण (।।।) सगण (।।ऽ) भगण (ऽ।।) लघु (।) और गुरु (ऽ)—इस प्रकार प्रति चरण में १७ वर्णों का 'शिखरिणी' वृत्त होता है। जैसे—

।ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ
मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के ?
बहे आँसू हो के, सखि सब उपालंभ गल के
उन्हें हो आई जो; निरख मुझको नीरव दया
उसी की पीड़ा का, अनुभव मुझे हा रह गया
प्रत्येक चरण में य म न स भ ल ग; ६, ११ पर यति, १७ वर्ण

(मैथिलीशरण गुप्त)

य य—इस तरह प्रति चरण में १५ वर्ण होते हैं। यथा—

यदि दिन कट जाता बीतती थी न दोषा
यदि निशि टलती थी बार था कल्प होता
पल पल अकुलाती ऊबती थी यशोदा
रट यह रहती थी—क्यों नहीं श्याम आये ? (हरिऔध)

१. संस्कृत सूत्र—रसै रुद्रैश्छिन्ना य म न स भ ला गः शिखरिणी
२. छः। ३. रुद्र = ग्यारह।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

।ऽ ऽऽ ऽ ऽ ।।। ।।ऽ ऽ ।।।ऽ
हरे सार्वे स्वामिन् । अमर । अविनाशिन् जगपते
विभो लीलाकारिन् । सकल गुण धारिन् भगवते
व्यथा बाधा-हारिन् अजर अघनाशिन् शुभ गते
अहो लक्ष्मीनाथ, प्रभुवर सदा । मंगलमते

प्रत्येक चरण में य म न स भ ल ग; ६,११ पर यति; १७ वर्ण

(हलन्त 'न्' की मात्रा नहीं गिनी जायगी। उसके पहले का वर्ण गुरु गिना जायगा)

मंदाक्रांता[1]

(मंदाक्रांता । म् भ् न् त् त गा । गा श्रुति[2], राग[3], बाजी[4])

'म भ न त त ग' अर्थात् मगण (ऽऽऽ) भगण (ऽ।।) नगण (।।।) तगण (ऽऽ।) तगण (ऽऽ।) और दो गुरु (ऽऽ)— इस तरह प्रत्येक चरण में १७ वर्णों का 'मंदाक्रांता' होता है। इसमें ४,६ और ७ वर्णों पर यति होती है। जैसे,

ऽऽ ऽ ऽ। ।।। । ऽ ऽ। ऽ ऽ। ऽऽ
फूली डालें, सु-कुसुम मयी, नीप[5] की देख आँखें
आ जाती है, मुरलि-धर की, मोहिनी-मूर्त्ति आगे
कालिन्दी के, पुलिन पर आ, देख नीलाम्बु न्यारा
हो जाती है, उदय उर में, माधुरी अम्बुदों की

प्रत्येक चरण में म भ न त त ग ग; ४, ६, ७ पर यति; १७ वर्ण

(हरिऔध)

---

१. संस्कृत सूत्र—मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मोभनौ तौ गयुग्मम्

२. श्रुति, वेद, चार। ३. राग, छः । ४. (सूर्य के घोड़े) सात

५. कदम्ब ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शार्दूलविक्रीडित[1]

(श्री सूर्य,[2] स्वर[3] मा स जा स त त गा | शार्दूलविक्रीडितम्)

'म स ज स त त ग', अर्थात् मगण (SSS) सगण (IIS) जगण (ISI) सगण (IIS) दो तगण (SSI, SSI) और गुरु [S] —इस प्रकार प्रत्येक चरण में १९ वर्णों का शार्दूल विक्रीडित **छंद होता है। इसमें १२ और ७ वर्णों पर यति होती है। जैसे—**

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

रूपोद्या|न प्रफु|ल्ल प्राय | कलिका, | राकेन्दु | बिम्बान|ना

तन्वंगी[4] | कल-हा|सिनी सु-रसिका, | क्रीडा-क|ला पुत्त|ली

शोभा-वा|रिधि की | अमूल्य-|मणि-सी,| लावण्य|लीलाम|यी

श्रीराधा | मृदुभा|षिणी मृ|ग-दृगी, | माधुर्य-|सन्मूर्त्ति | थी

प्रत्येक चरण में म स ज स त त ग; १२ और ७ पर यति, १९ वर्ण

(हरिऔध)

(यहाँ पहले चरण में चौथे वर्ण'न'और'ल्ल'के आगे संयुक्त वर्ण'प्र' है। इससे इन्हें गुरु होना चाहिए था। परंतु इन्हें 'लघु' मानने से ही गण-दोष नहीं आएगा। शेष चरणों में ये गण ठीक हैं)।

स्रग्धरा

(मा रा भा ना य या या | मुनि[5] गुन[6] यति से | स्रग्धरा[7] होत रम्या)

'म र भ न य य य' अर्थात् मगण (SSS) रगण (SIS)

---

१. संस्कृत सूत्र—सूर्यैश्वर्यदि मः सजौ स त त गाः शार्दूल विक्रीडितम्। २. बारह। ३. सात।

४. कोमल या सुन्दर अंगों वाली। ५. सात। ६. तीन; अर्थात् तीन वार सात; या सात, सात, सात (पर)। ७. संस्कृत सूत्र—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भगण (ऽ।।) नगण (।।।) और तीन यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ,।ऽऽ)—इस प्रकार २१ वर्णों का स्रग्धरा वृत्त होता है। इसमें ७,७, ७ वर्णों पर यति होती है। जैसे—

ऽऽ ऽ ऽ।ऽ ऽ ।।।।। ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ ।ऽऽ
मोरे भौ|ने ययू[1] को,| कहहु सुत| कहाँ, ते| लिये आ|वते हो?
भा का आ|नंद आ|जी,[2] तुम|फिरि फि|रि कै, मा|थ जो ना|वते हो
बोले—मा|ता विलो|क्यो फिर|न |सहचमू बा|ग में स्रा|ग्धरे[3] ज्यों
का|ढ़ी मा|ला रु मा|रे विपु|ल रिपु|बली अ|श्व लो जी|ति के त्यों

प्रत्येक चरण में म र भ न य य य, २१ वर्ण

(जगन्नाथप्रसाद 'भानु')

सवैया

२२ से लेकर २६ वर्णों तक के वृत्त सवैया[4] कहलाते हैं। नीचे कुछ मुख्य-मुख्य सवैया छंदों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है:—

मदिरा

(भागण सात मिला गुरु एक रचो 'मदिरा'[5] शुभ मोदमयी)

७ भगण (ऽ।।) और एक गुरु (ऽ) इस प्रकार २२ वर्णों का 'मदिरा' सवैया होता है। जैसे—

---

१. (अश्वमेध) यज्ञ का अश्व। २. आज। ३. स्रक् (माला धरे (धारण किये हुए)=माला पहने हुए।

४. नीचे लिखे छन्द से कई सवैयों के लक्षण एक साथ याद किये जा सकते हैं:—

सात भ है मदिरा गुरु अंतहु; दै लघु और चकोर कहो गुनि।
ताहु गुरू करि मत गयंद; लघू मदिरा; शिर मानिनि ये सुनि।
आठ करो य भुजंग; र लच्छिय; सो दुमिला; त हि आभार है पुनि
जा हि सु-मोतियदाम बनावहु; भागन आठ किरीट रचो चुनि।

(भिखारीदास)

५. सप्त भकार युतेक गुरुर्गदितेयमुदारतरा मदिरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऽ। । ऽ। । ऽ ।। ऽ।। ऽ। ।ऽ।।ऽ।।ऽ
राम कौ | काम कहा ? रिपु | जीतहिं | कौन, कबै रिपु | जीत्यो कहाँ ?
बालि बली; छलसों;' भृगुनंदन | गर्व हरो; द्विज | दीन महा
दीन सो | क्यों ? छितिछत्र हत्यो; बिनप्राननि | हैहय | राज कियो
हैहय | कौन ? वहै, बिसरयो, जिनखेलत | ही तुम्हें बाँधि लियो

प्रत्येक चरण में ७ भगण १ गुरु = २२ वर्ण

(केशवदास)

चकोर

(भागण सात मिला गल लेत 'चकोर' कलानिधि हेत सुहात)

सात भगण [ऽ।।] एक गुरु [ऽ] और एक लघु [।] अर्थात् २३ वर्णों का 'चकोर' सवैया होता है। जैसे—

ऽ।। ऽ।।ऽ।।ऽ ।। ऽ। । ऽ। ।ऽ।।ऽ।
सावन | आय समीप लगो, तब | नारि कै | प्रान बचावन काज
बादर | दूत बनावन | कों, कुसलात सँदेस पठानव | काज
कूटज | फूल नये कर | लै, मनकल्पित | अर्घ बनावन | काज
बोल उठ्यो हँसते मुख | है वह | मेघ तें | प्रीति बढ़ावन | काज

प्रत्येक चरण में ७ भगण १ गुरु १ लघु = १३ वर्ण

(पहले चरण में 'कै' और चौथे में 'उ' 'ख'—ये लघु हैं।)

(राजा लक्ष्मणसिंह)

मत्तगयंद

(भागण सात मिली गुरु दो रच लो तुम 'मत्तगयंद' सवैया)

सात भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) अर्थात् २३ वर्णों का 'मत्तगयंद' सवैया होता है। इसे 'मालती' और 'इन्दव' भी कहते हैं। यथा—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऽ। ।।ऽ।। ऽ।।ऽ।।ऽ।। ऽ।।ऽ।।ऽऽ
हो रहते तुम | नाथ जहाँ, रहता मन | साथ सदैव वहीं है
मञ्जुल-मूर्त्ति बसी उरमें, वह | नेक कभी टलती न कहीं है
लोलुप | लोचन | को दिखती, वह | चारु घटा सब | काल यहीं है
है वह | योग मिला हमको, जिसमें दुख-मूल | वियोग नहीं है

प्रत्येक चरण में ७भ+२ग=२३ वर्ण

(ठाकुर गोपाल शरणसिंह)

सुमुखी

('ज' सात 'ल' 'गा' 'सुमुखी' रचिए मन मोहकता अति शुभ्र लसै)

सात जगण (।ऽ।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) अर्थात् २३ वर्णों का 'सुमुखी' सवैया होता है। इसे 'मानिनी' और 'मल्लिका' भी कहते हैं। जैसे--

।ऽ। । ऽ।।ऽ। । ऽ ।।ऽ। ।ऽ।।ऽ ।ऽ
कुमार| के रंग|निवास|की हैं अ|लबेली | नवेली|नहाँ र|मनी
लसै छ|वि सोव|त में मु|ख की प्र|ति एक| की ऐसी| लुनाई|सनी
परै क|हुँ जा|हि पै दी|ठि|जहाँ| सोइ लाग|ति सुंद|रि ऐसी | घनी
यहै क|हि आव|त है म|न में स|ब में य|ह रत्न-अमोल | धनी

७ जगण+१ लघु+१ गुरु=२३ वर्ण

(रामचंद्र शुक्ल)

(प्रथम चरण के 'के' 'की' 'ली' और 'ली' तथा अन्य चरणों के वे वर्ण जो काले टाइप में छपे हैं लघु वर्ण हैं।)

किरीट

(भागण आठ मिला रच लो शुभ छंद 'किरीट' मनोहर सुन्दर)

आठ भगण (ऽ।।) अर्थात् २४ वर्णों का 'किरीट' सवैया होता है। जैसे--

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।ऽ।।
भीषन | भोरहि | ते बनि | पूषन[1] | है जन | के तन | को बहु |तावत
आग ल|गाइ अ|गारन[2] | माँहि अ|गार ध|रातल | पै बग|रावत
का 'हरि|औध' क|रै कित | जाय अ|है तप-|ताप अ|गार न | पावत
ना तह|खानन | में कल | आवति | ना खस|खाननि |में सुख | पावत

प्रत्येक चरण में ८ भगण, २४ वर्ण

(हरिऔध)

(इस छद का अंतिम वर्ण कहीं-कहीं गुरु भी देखा जाता है परन्तु उसका उच्चारण लघु वर्ण की ही भाँति होता है।)

मुक्तहरा

('ज' आठ मिलाय सु-'मुक्तहरा' रचिए शुभदायक छंद सुहाय)

आठ जगण (।ऽ।) अर्थात् २४ वर्णों का 'मुक्तहरा' वृत्त होता है। जैसे—

।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।
लसैं र|द उज्ज्व|ल मो ति|समान | वुही छ|वि मोहि|नि मंजु | रसाय |
मनोह|र है ति|न सों दो|उ ओंठ | वुही श्रु|ति सोभा | रही स|रसाय
भले दृ|ग स्याम|ल औ र|तनार | सुहाव|त जद्य|पि तेज | जनाय
तऊ इ|न में वि|लसै वु|ही चारु | प्रिया के | कटाच्छ|न की स|मताय

प्रत्येक चरण में ८ जगण, २४ वर्ण

(सत्यनारायण कविरत्न)

(काले टाइप में छपे हुए वर्णों को लघु समझना चाहिए)

---

१. सूर्य। २. घरों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दुर्मिल

(सगना जब आठ रहैं पद में तब 'दुर्मिल' होत सुछन्द-छटा)

आठ सगण (।।ऽ) अर्थात् २४ वर्णों का 'दुर्मिल' सवैया होता है। इसे 'चन्द्रकला' भी कहते हैं। जैसे,

।।ऽ ।।ऽ।।ऽ ।।ऽ।। ऽ। ।ऽ। ।ऽ ।।ऽ
इसके | अनुरू|प कहैं | किसको | वह कौ|न सुदे|श समु|न्नत है
समझें | सुरलो|क समा|न इसे | उनका | अनुमा|न असं|गत है
कवि-को|विद | वृन्द बखा|न रहे | सब का | अनुभू|त यही |मत है
उपमा|न-विही|न रचा | विधि ने| बस भा|रत के | सम भा|रत है

प्रत्येक चरण में ८ सगण = २४ वर्ण

(नाथूराम शर्मा 'शंकर')

अरसात

(भागण सात मिले रगना इक, मञ्जुल छंद बने 'अरसात' है)

सात भगण (ऽ।।) और एक रगण (ऽ।ऽ) अर्थात् २४ वर्णों का 'अरसात' सवैया होता है। जैसे—

---

१. 'दुर्मिल' नामक एक मात्रिक वृत्त भी होता है। उसमें १०, ८ और १४ पर यति देकर ३२ मात्राएँ होती हैं उसके आदि में जगण का निषेध है, और पदान्त में सगण और दो गुरु होते हैं। जैसे,

जय जय रघुनन्दन। असुर विहण्डन। कुल मण्डन यश के धारी
जन मन सुखकारी। विपिन बिहारी। नारि अहिल्या सी तारी
शरणगत आयो। ताहि बचायो। राज विभीषण को दीनो
दशकन्ध बिदारी। पंथ सुधारी। काज सुरन जन को कीनो

(छंद प्रभाकर)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऽ। ।ऽ।। ऽ।।ऽ ।। ऽ।।ऽ।। ऽ।।ऽ।ऽ
भाव भ|ला उस|के मन|के, किस | भाँति क|हूँ वह | है न ब|खानता
ली न क|भी उस|ने सुध| भी, अप|ना जन | क्या न मुझे वह|मानता
जान स|का यह | क्यों न मुझे, कह|ते सब | हैं वह |है सब|जानता
है नित |ही रह|ता उर|में, फिर | क्यों न मुझे वह | है पह|चानता

प्रत्येक चरण में ७ भगण+१ रगण=२४ वर्ण

(ठा० गोपाल शरणसिंह)

वाम

('ज' सात मिलाय 'य' एक रचो अति भव्य मनोहर 'वाम' सवैया)

सात 'जगण' (।ऽ।) और एक 'यगण' (।ऽऽ) अर्थात् २४ वर्णों का 'वाम' सवैया होता है। इसे 'मंजरी' 'मकरंद' या 'माधवी' भी कहते हैं। यथा—

।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽऽ
अकेली|ही है मुनि को यह बाल|तऊ भ|य-भीत| न रंच|लखावै
मनौ कु|लहा र|घुबंस|को चारु| दुरयो जि|य नेह|लता उ|लहावै
दलै ग|ज गंड|थलीनि|की ग्रंथि|जबै ध|नु घोर| कठोर | मचावै
घिरयो ब|हु बीर|न सों च|हुँ तीर|चलाव|त मो उ|र कौतु|क छावै

प्रत्येक चरण में ७ जगण+१ यगण=२४ वर्ण

(सत्यनारायण कविरत्न)

(काले टाइप में छपे हुए वर्णों को लघु समझना चाहिए)

सुन्दरी

(वसु[1] सागण एक मिला करके गुरु 'सुन्दरी'[2] नामक छंद बनावे)

आठ सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) अर्थात् २५ वर्णों का 'सुन्दरी' सवैया होता है। जैसे—

---

१. आठ।

२. इसी के नाम से मिलता-जुलता 'सुन्दरि' भी सवैया है जिसमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

यहिं बेतस बल्लरि पै | खग बैठि, कलोल भरे | मृदु बोल सुनावैं
तिन सों झरे पुष्प-सुगन्धित तोय, बहैं अति सीतल हीतल भावैं
फल-पुंज पकेनि के कारन स्यामल, मंजुल जंबु निकुंज लखावैं
उनमें | रुकि कें | करि घोर[1] घनी, झरनानि के सोत समूह लखावैं

प्रत्येक चरण में ८ सगण+१ गुरु, २५ वर्ण

(सत्यनारायण कविरत्न)

(काले टाइप में छपे वर्णों को लघु समझना चाहिए)

उपर्युक्त सवैयों के अतिरिक्त नीचे लिखे छंद भी सवैया के अन्तर्गत हैं

२२ वर्ण—हंसी (म म त न न न स ग), मोद (भ भ भ भ भ म स ग), भद्रक (भ र न र न र न ग), मन्दारमाला (७ त ग)

२३ वर्ण—सुन्दरि (स स भ स त ज ज ल ग), अद्रितनया या अश्व-ललित (न ज भ ज भ ज भ ल ग,), मत्ताक्रीड़ा (म म त न न न न ल ग)

२४ वर्ण—गंगोदक, गंगाधर, लक्ष्मी या खंजन (८ रगण) आभार (८ तगण)

२५ वर्ण—क्रौंच (भ म स भ न न न न ग), अरविंद (८ स ल) लवंगलता (८ ज ल)

२६ वर्ण—सुख,कुन्दलता या किशोर (८ स ल ल), भुजंगविजृम्भित (म म त न न न र स ल ग)

स स भ स त ज ज ल ग'—इस प्रकार २३ वर्ण होते हैं।

भिखारी दास ने 'सुन्दरी' का नाम 'माधवी' दिया है; परन्तु उपर्युक्त 'वाम' ही 'माधवी' है—ऐसा संस्कृत के आचार्यों के अनुसार ठीक प्रतीत होता है।

१. ध्वनि।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्णवृत्त

दंडक

प्रत्येक चरण में २६ वर्णों से अधिक वर्ण वाले छंद 'दंडक' वृत्तों के अन्तर्गत हैं। उनमें से ऐसे छंद 'मुक्तक'[१] कहलाते हैं जिनमें वर्णों की संख्या का ही प्रमाण रहता है, या कहीं-कहीं गुरु लघु का भी नियम रहता है। इन्हें 'मुक्तक' इसलिए कहते हैं कि इनमें 'गणों' के बंधन से मुक्त रहना होता है। 'मुक्तकों में 'कवित्त' और 'घनाक्षरी' नामक वृत्त हमारी भाषा में बहुत प्रचलित हैं।

कवित्त या मनहर[२]

('याम'[३] 'योग'[४] योग| कर[५] यति दैके भक्ति[६] राग[७] | संयुत कवित्त मनहरण बनाइए)।

मनहर या कवित्त [अथवा मनहरण कवित्त] के प्रत्येक

१. अक्षर की गिनती यदा, कहुँ कहुँ गुरु लघु नेम
वर्णवृत्त में ताहि कवि, मुक्तक कहैं सप्रेम (भिखारीदास)

२. इसे कुछ लोग मनहरण अथवा मनहरण कवित्त भी कहते हैं। पर चाहिए कहना मनहर (मनहरण) या कवित्त—दो में से कोई एक। कुछ लोगों की समझ में कवित्त शब्द का प्रयोग मनहरण, रूपघनाक्षरी और देवघनाक्षरी तीनों के लिए प्रयुक्त होने में कोई हानि नहीं है।

३. प्रहर = आठ। ४. योग = आठ। ५. योगकर=जोड़कर
६. नौ। ७. छः।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चरण में कुल ३१ वर्ण होते हैं, जिनमें १६, १५ वर्णों पर यति होती है। इस छंद में अंतिम वर्ण गुरु होता है। यथा,

मञ्जुल मृदुल मुरली के स्वर के समान,
उसका सरस गान गूँजता है कान में।
उसका अनूप रूप भूलता कभी नहीं,
चाहे कुछ सोचूँ किंतु आता वही ध्यान में।
सुखकर उसके शरीर की सुगंधि जैसी,
है मुझे उसी की सुध आती आन आन में।
प्राण में उसी की मञ्जु मूर्ति है समाई हुई,
मानो उड़ती है वहाँ साँसों के निमान में॥
प्रत्येक चरण में १६, १५ पर यति कुल ३१ वर्ण

(ठा० गोपालशरणसिंह)

घनाक्षरी

घनाक्षरी के दो भेद हैं; (१) रूप-घनाक्षरी और (२) देव-घनाक्षरी।

रूप-घनाक्षरी

(आठ, आठ, आठ, आठ | पर यति दे बत्तीस | की 'रूपक-घनाक्षरी' | रचो चरण सुचार)

रूप-घनाक्षरी में ८,८, ८,८, की यति से प्रति चरण में ३२ वर्ण होते हैं। अंत में गुरु लघु (ऽ।) आते हैं। जैसे—

नगर से दूर कुछ | गाँव की-सी बस्ती एक |
हरे-भरे खेतों के स|मीप अति अभिराम
जहाँ पत्रजाल अंत | राल से झलकते हैं |
लाल खपरैल, श्वेत | छज्जों के सँवारे धाम।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बीचों बीच बट-वृक्ष | खड़ा है विशाल एक |
झूलते हैं बाल कभी | जिसकी जटाएँ थाम;
चढ़ी मंजु मालती-ल|ता है जहाँ छाई हुई,
पत्थर की पट्टियों की | चौकियाँ पड़ी हैं श्याम ।

८,८,८,८ पर यति; ३२ वर्ण

(रामचन्द्र शुक्ल)

देव-घनाक्षरी

(तेंतीस वर्ण को देव | घनाक्षरी होती मंजु |
आठ, आठ, आठ, नव | पर विराम रखकर)

देवघनाक्षरी के प्रत्येक चरण में ८,८,८, ९ के विराम से ३३ वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण के अंतिम तीन वर्ण लघु होते हैं। जैसे—

झिल्ली झनकारैं पिक | चातक पुकारैं बन |
मोरनि गुहारैं उठैं | जुगनू चमकि चमकि
घोर घन कारे भारे | धुखा[1] धुरारे धाम |
धूमनि मचावैं नाचैं | दामिनी दमकि दमकि
झूकनि बयार बहै | लूकनि लगावै अंग |
हूकनि भभूकनि की | उर में खमकि खमकि
कैसे करि राखौं प्राण | प्यारे 'जसवंत' बिना |
नान्ही नान्ही बूँद झरै | मेघवा झमकि झमकि

८,८,८,९ पर यति, ३३ वर्ण

(जसवंतसिंह)

---

१. बादल।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

८—दोष-दर्शन

काव्य में दोष का स्थान

पिछले पृष्ठों में कविता के उन भिन्न-भिन्न तत्वों के विषय में बतलाया जा चुका है, जिनके होने से उसमें रसात्मकता आती है। उन सभी तत्वों के बिना सत्कविता नहीं हो सकती। परन्तु यदि कविता में वे मौजूद हों और साथ ही उसमें कोई एक या अधिक दोष भी हों, तो उसके सौन्दर्य में वैसे ही व्याघात पहुँचेगा जैसे अन्य सभी दृष्टियों से सुन्दर किसी व्यक्ति की एक आँख में छोटी-सी फूली पड़ जाने से उसकी अनिंद्य सुन्दरता में धक्का लगता है। अस्तु काव्य में गुणों का होना जिस प्रकार आवश्यक है, उसी प्रकार उसमें दोषों का न होना भी अनिवार्य है।

दोष का लक्षण और उसके प्रकार

जिस किसी वस्तु के द्वारा कविता के मुख्य अर्थ के समझने में बाधा पहुँचती है, अथवा उसकी सुन्दरता में कमी आती है, या उसमें खराबी जान पड़ती है उसे दोष कहते हैं।

कविता का मुख्य उद्देश्य रस का संचार करना है। और रस का संचार शब्दों या वाक्यों और उनके अर्थों की सहायता से होता है। जहाँ इनमें से किसी में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कोई त्रुटि आई वहाँ काव्य की हीनता निश्चित हो जाती है। यह काव्य की हीनता (अपकर्ष) तीन प्रकार से होती है, (१) काव्य का आनन्द (रस की अनुभूति) रुक जाने से, (२) रस की श्रेष्ठता में बाधा पहुँचाने वाली किसी वस्तु के बीच में आ जाने से, और (३) काव्य-रस का आनन्द अनुभव होने (आस्वाद लेने) में देर करने वाले कारणों के आ जाने से[1]। इनमें से कोई एक भी स्थिति जहाँ हो, वहाँ दोष होता है। इस प्रकार के दोषों की संख्या बहुत अधिक हैं।[2] यहाँ उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य दोषों का दिग्दर्शन कराया जायगा।

१. पद-दोष [शब्द-दोष]

जो शब्द कठोर अक्षरों से बने होने के कारण सुनने में अच्छे नहीं लगते, खटकते हैं, उन्हें श्रुति कटु या दुःश्रव[3] कहते हैं। इनके प्रयोग से रचना में श्रुति कटुत्व या दुःश्रवत्व दोष आता है। जैसे—

दुःश्रवत्व या श्रुतिकटुत्व

देखत कछु कौतुक इतै, देखौ नेकु बिचारि
कत्र की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिन डारि

(बिहारी)

---

१. साहित्य-दर्पण। २. 'काव्य प्रकाश' में ७० बतलाये गये हैं, जिन में ३७ शब्द के, २३ अर्थ के और १० साक्षात् रस के दोष हैं। ३. सुनने में कड़वे या सुनने के अयोग्य।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह श्रृंगार रस का दोहा है, इसमें दूसरे 'दल' में 'टवर्ग' के कई अक्षरों के आने के कारण श्रृंगार की सुन्दरता को धक्का पहुँचता है। इससे इस दोहे में 'श्रुति कटुता' का दोष पाया जाता है। [श्रृंगार आदि कोमल रसों में दूषण होते हुए यही वर्ण वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों में गुण होंगे]

च्युति-संस्कृति या व्याकरण-विरुद्ध दोष

जब कोई शब्द व्याकरण के नियमों के विरुद्ध प्रयुक्त होता है तब भाषा के संस्कार से च्युत होने (गिर जाने) के कारण 'च्युति-संस्कृति' या 'व्याकरण विरुद्ध' दोष होता है। जैसे—

फूलों की लावण्यता देती है आनंद
मधुप मस्त हो कुंज में गाते छवि के छंद

यहाँ 'लावण्यता' शब्द अशुद्ध है। संस्कृत शब्द 'लावण्य' है। यह शब्द उसी प्रकार भूल से हिंदी के भाव-वाचक संज्ञा के 'ता' प्रत्यय के योग से बना है जिस प्रकार 'पाण्डित्यता', 'मनुष्यत्वता'—जैसे अनेक शब्द इन दिनों बहुधा देखने में आया करते हैं। 'लावण्य' स्वयं भाववाचक संज्ञा शब्द है। ऐसे ही, "हम कहे कि आज बड़ी आराम है"—जैसे अशुद्ध प्रयोग भी संयुक्त प्रान्त के पूर्वी जिलों (बनारस आदि) में बहुत सुनने में आते हैं। इसी तरह 'सुत-सुफल्क समागत हैं हुए' में हिन्दी के नियम के विरुद्ध 'सुत-सुफल्क' में तत्पुरुष समास बनाया गया है। होना चाहिए था 'सुफल्क-सुत'; पर यहाँ समास बनाया गया है उर्दू के नियम के अनुसार। ये भी च्युति-संस्कृति दोष ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अप्रयुक्तत्व

जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जो व्याकरण, कोष आदि से ठीक हों परन्तु प्रयोग में न आते हों, वहाँ अप्रयुक्तत्व दोष होता है । जैसे—

पुत्र जन्म-उत्सव समय, स्पर्श कीन्ह बहु गाय

यहाँ 'स्पर्श' शब्द 'दान'[1] का समानार्थक होने पर भी साधारण प्रयोग में न आने के कारण 'अप्रयुक्तत्व' दोष में आ जाता है ।

ग्राम्यत्व

जब ऐसे शब्दों का साधु अथवा साहित्यिक भाषा में प्रयोग किया जाता है जो गँवारू बोल चाल में प्रयुक्त होते हैं, या प्रान्तीय होते हैं, तब 'ग्राम्यत्व' [गँवारपन] दोष होता है । जैसे, पं० सत्यनारायण कविरत्न ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'भ्रमर दूत' में लिखा है:—

जैयो षटपद धाय कें, करि निज कृपा विशेष
लैयो काज बनाय कें, दै मो यह संदेश
सिदोसौ लौटियो

यहाँ 'सिदोसौ' (शीघ्र) शब्द व्रजमंडल में बोल चाल का शब्द होते हुए भी साहित्यिक व्रजभाषा में अंगीकृत न होने के कारण ग्राम्यत्व दोष का उदाहरण है ।

---

१. विश्रामणं वितरणं स्पर्शनं प्रतिपादनम् (अमरकोष)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जिस शब्द से अश्लीलता (असभ्यता-सी) प्रकट हो, उसके प्रयोग से अश्लीलत्व दोष होता है। यह (१) घृणा (२) लज्जा और (३) अमंगल व्यंजक होने से तीन तरह का होता है। जैसे—

अश्लीलत्व

(१) रावण के दरबार में स्थिर अंगद का पाद

यहाँ 'पाद' का अर्थ चरण है। परन्तु अपानवायु के छोड़ने को भी यही कहते हैं—इससे यहाँ यह अश्लीलता सूचक है। इसी प्रकार

(२) जो औरों की उक्तियाँ चुराते हैं वे 'उत्सर्ग' या 'वमन' का उपयोग करते हैं।

यहाँ उत्सर्ग (मल) और वमन (कै)—ये घृणा उत्पन्न करने वाले शब्द हैं।

(३) 'हे राजन् मदान्ध शत्रुओं को विजय करने में तुम्हारा साधन (सेना) बहुत बड़ा है।" यहाँ साधन शब्द से पुरुष की गुह्येंद्रिय का लज्जा-जनक अर्थ निकलता है।[1]

(४) "ग्रीक शिविर के बीच एक सुन्दरी अकेली,
बैठी थी निज गण्ड-देश पर दिये हथेली।"

यहाँ 'गण्ड-देश' से अश्लीलता सूचक अर्थ निकल सकता है।

(५) "हे तन्वि तुम्हारे बिनाश (अदर्शन=चले जाने) पर वायु चली।" यहाँ विनाश अमंगल सूचक और 'वायु' घृणा बोधक शब्द है।

---

१. 'साहित्य दर्पण' से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अप्रतीतत्व

जहाँ कविता में किसी ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो किसी खास अर्थ में किसी शास्त्र, विज्ञान, विद्या-विशेष में प्रयुक्त होता है, अथवा जो पारिभाषिक हो, और जो साधारण लोक-व्यवहार और काव्य-भाषा में प्रयुक्त न होता हो, वहाँ अप्रतीतत्व [प्रतीति—जानकारी—न होने का] दोष होता है। जैसे,—

जिसका आशय दलित हो गया तत्त्व-ज्ञान के पाने से
लाभ उसे क्या विधि-निषेध युत कर्मों में फँस जाने से ?

यहाँ 'आशय' शब्द का प्रयोग उसके योग-शास्त्र में प्रयुक्त अर्थ (अर्थात् 'मिथ्या ज्ञान' के अर्थ) में हुआ है। इस अर्थ में यह शब्द केवल योग-शास्त्र में प्रयुक्त होता है, अन्यत्र नहीं। इसीसे इस शब्द के प्रयोग के कारण यहाँ अप्रतीतत्व दोष है।

इसी प्रकार नीचे लिखे अवतरण में मिसिल, सबूत, मुद्दालेह, मुजरिम, रूपदाद आदि कई अदालती शब्दों का प्रयोग करके प्रेम के मुकदमे का फैसला किया गया है। अतः इन विषय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के कारण यहाँ भी उक्त दोष है:—

आज पेश होकर मिसिल सब देखी गयी
आये सब वजह सबूत निज जाने में;
मुद्दालेह मुजरिम बेशक करार पाये,
बाकी नहिं राख्यो सैन सैफ[1] के चलाने में

1. तलवार।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहै 'श्याम सेवक' या ताही ते हुकुम होत
रूपदाद हासिला मिसिल कै सु पाने में
छूटन न देवैं वे छनक नैन खूनियों को
कैद करि राखैं निज नैन-कैदखाने में

क्लिष्टत्व जहाँ किसी शब्द के अर्थ को तुरन्त समझने में कठिनाई हो वहाँ क्लिष्टता (कठोरता) का दोष होता है। जैसे—

कहत कत परदेसी की बात
मंदिर-अरध अवधि हरि बदि गये हरि-अहार चलि जात
ससि-रिपु बरस, भानु-रिपु जुग सम, हरि-रिपु किये फिरै घात
मध-पंचक लै गये स्याम-घन, तातें जिय अकुलात
नखत, बेद, ग्रह जोरि अरध करि को बरजै हम खात ?
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलन को कर मींजत पछितात,

सूरदास के इस प्रसिद्ध 'कूट' के कई शब्दों या शब्द-समूहों के अर्थ बहुत कठिनाई से निकलते हैं। 'मंदिर-अरध' (घर का अर्ध भाग = पक्ष, पखवारा), हरि-अहार (सिंह का आहार, मांस = मास, महीना), ससि-रिपु (चन्द्रमा का शत्रु = दिन—कारण दिन में वह मलीन रहता है), भानु-रिपु (रात, जो सूर्य को अदृश्य रखती है), हर-रिपु (शंकर का शत्रु, कामदेव) मध-पंचक (पाँचों पवन—जो शरीर में होते हैं—के मध्य का 'प्राण' वायु, अर्थात् प्राण, अथवा पाँचों तत्वों के बीच का जीव), नखत, वेद, ग्रह जोरि अरध करि (नक्षत्र (२७)+वेद (४)+ग्रह (९) = ४०÷२ = २०, बीस, बिस = विष) हम खात, अर्थात् हम विष खाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ उक्त अर्थ समझने में क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती है, अतः यहाँ क्लिष्टत्व दोष है।

२. वाक्य-दोष

जब किसी वाक्य में इच्छित अर्थ की पूर्ति के लिए कोई शब्द अपनी ओर से मिलाना (उसका अध्याहार करना) पड़ता है, तब उसमें 'न्यून-पदत्व' (शब्द की कमी का) दोष समझा जाता है। जैसे—

न्यून पदत्व

"हे राजा, तुम्हारे खड्ग से यश-पुष्प विकसित हुआ।"[1]

यहाँ 'यशरूपी फूल' की संगति बैठाने के लिए 'खड्ग' को 'खड्ग-लता' करने की आवश्यकता पड़ती है, अस्तु यहाँ खड्ग के साथ 'लता' शब्द न होने से 'न्यून-पदत्व' दोष है। इसी प्रकार—

"कृपा दृष्टि हो जाय यदि, बन जावेंगे काम"

में 'कृपा-दृष्टि' शब्द के पहले 'आपकी' और काम के पूर्व 'मेरे' इन दो शब्दों को अपनी ओर से मिलाना पड़ेगा; तब इसका अर्थ पूर्णतया स्पष्ट होगा। इन पदों (शब्दों) की न्यूनता (कमी) के कारण इस में भी 'न्यूनपदत्व' दोष है।

जहाँ वाक्य में कुछ ऐसे शब्द आ जायँ जिनकी उसमें आवश्यकता न हो, जिनके निकाल देने से उसका अर्थ बिगड़ता न हो, उलटे अधिक अच्छा हो जाता हो, वहाँ 'अधिक-पदत्व' दोष होता है। जैसे—

अधिकपदत्व

1. काव्य-निर्णय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'पुष्प पराग से रंगकर भ्रमर गुंजरता है'

में 'पुष्प' शब्द व्यर्थ है। कारण, 'पराग' की उत्पत्ति पुष्प में ही होती है, अन्यत्र नहीं। अस्तु 'पराग' कहने से ही जब काम चल सकता है, तब उस में पुष्प जोड़ने से क्या लाभ? यहाँ 'पुष्प' शब्द अधिक है। इससे इस उक्ति में अधिक-पदत्व दोष है।

पुनरुक्ति

जब एक शब्द या वाक्य से इच्छित अर्थ की सिद्धि होने पर भी, उसी के समान अर्थ वाले शब्द या वाक्य का फिर निरर्थक प्रयोग, उसी सिल-सिले में, किया जाता है, तब 'पुनरुक्ति' (फिर से कहने का) दोष होता है। जैसे—

"कोमल वचन सभी को भाते,
अच्छे लगते कलित कथन"

यहाँ पूर्वार्द्ध में जो कुछ कहा गया है, वही केवल शब्दों के हेर फेर से उत्तरार्द्ध में दोहराया गया है। इस कारण इसमें पुनरुक्ति (पुनः उक्ति = फिर से कहने का) दोष है।

अक्रमत्व

जहाँ वाक्य में कोई शब्द, अथवा कुछ शब्द अपने उपयुक्त स्थल पर प्रयुक्त न होकर बेसिलसिले प्रयुक्त हुए हों, वहाँ 'अक्रमत्व' (बेसिलसिला होने का) दोष होता है। प्रायः विभक्ति-चिह्न उपसर्ग, अव्यय आदि में व्यतिक्रम के कारण यह दोष हुआ करता है। जैसे—

"हैं लड़के खेलते"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में "गद्य में पहले कर्ता, फिर कर्म, तब मुख्य क्रिया, और तत्पश्चात् सहायक क्रिया आनी चाहिए"—इस नियम के विरुद्ध पहले सहायक क्रिया, फिर कर्ता, और तब प्रधान क्रिया का बिना सिलसिलेवार प्रयोग हुआ है। इससे इसमें अक्रमत्व दोष है। ऐसे ही—

"खायी लड़कों मधुर-सु मिठाई ने"

में 'ने' विभक्ति और 'सु' उपसर्ग का यथास्थल प्रयोग होना चाहिए था।

हत वृत्तत्व या छंदोभंग

(१) छंद विशेष की मात्राओं या उसके वर्णों की संख्या ठीक होने पर भी जब उसकी गति ठीक न हो अथवा किसी शब्द के बीच में ही यति पड़े तो छंद ठीक नहीं रहता। ऐसे समय 'हतवृत्तत्व' अथवा 'छंदोभंग' दोष होता है। जैसे—

ऽ।। ।। ऽऽ ऽ। ।।।
'भंजहु भव चापू राम उठहु'

में 'चौपाई छन्द' के नियमानुसार एक चरण के लिए आवश्यक १६ मात्राएँ भी हैं और अंत में जगण तगण भी नहीं है, परन्तु इसकी गति ठीक नहीं, पढ़ने में एक धारा-सी नहीं। अतः यहाँ छंदोभंग दोष है, जो इसे 'उठहु राम भंजहु भव चापू' कर देने से ठीक हो जायगा।

'सुन्दर श्याम सरोरुह से छवि—
धाम विलोचन में घनश्याम हैं'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में 'छवि' और 'धाम' के बीच में यति पड़ती है, जो ठीक नहीं है।

रस के प्रतिकूल छन्दों में भी 'हतवृत्तत्व' दोष माना जाता है। इसके अनुसार करुणरस में मन्दाक्रान्ता, पुष्पिताग्रा आदि; शृंगार में पृथ्वी, स्रग्धरा आदि; वीर में शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्द अनुकूल माने गये हैं। इनके विरुद्ध छन्दों का प्रयोग सदोष है।

३. अर्थदोष

'अक्रम' दोष में शब्दों का प्रयोग बिना क्रम के होता है।

दुष्क्रमत्व

परन्तु जब कोई ऐसी बात कही जाती है जो लोक या शास्त्र के विरुद्ध हो, तब दुष्क्रम (बुरा क्रम) स्थापित होने के कारण 'दुष्क्रमत्व' दोष होता है। जैसे,

"फूलै फलै न बेत"

बेत वास्तव में फूलता-फलता है। इस प्रकृति के नियम का उल्लंघन होने से उक्त कथन में दुष्क्रमत्व दोष है। ऐसे ही,

"मुख-मयंक को देख कर, विकसा मानस-कंज"

में मयंक (चन्द्रमा) के दर्शन से कंज (कमल) के विकसित होने की प्रकृति के विरुद्ध बात कही गई है, जो सदोष है। इसी प्रकार—

यह बसंत न, खरी गरम, अरी, न सीतल बात[1]
कह क्यों प्रगटे देखियत, पुलक[2] पसीजे गात (बिहारी)

1. हवा। २. रोंगटों का (शीत आदि से) खड़ा होना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गरमी से पसीना निकलता है, और शीत से रोंगटे खड़े होते हैं। दोहे के पहले 'दल' में पहले 'गरम' और फिर 'शीतल' होने का उल्लेख हुआ है। इसी क्रम से दूसरे दल में पहले पसीजना और फिर पुलकित (रोमांचित) होना कहना चाहिए था, परन्तु कहा इससे विपरीत गया है। यहाँ भी दुष्क्रमत्व है।

जब किसी वाक्य का अर्थ समझने में कठिनाई पड़े तब

कष्टार्थत्व

'कष्टार्थत्व' (कठिनाई से अर्थ समझने का) दोष समझना चाहिए। जैसे,

"बरसत जल निज किरन खैंचि दिनकर-नहिं घन यह
यमुना सविता-सुता[1] मिली सुर-सरिता सों वह
करत न को बिस्वास कहो या व्यास-वचन में ?
मूढ़ मृगी समुझै न तऊ, जल रवि-किरनन में[2]

यहाँ अप्रस्तुत वाच्यार्थ यह है—सूर्य अपनी किरणों से खींचे हुए जल की वर्षा करता है, न कि मेघ। यमुना भी सूर्य से उत्पन्न है, और वही गंगा में मिलती है। व्यास जी के इन वचनों में कौन विश्वास नहीं करता ? अर्थात् जब जमुना और वर्षा सूर्य से ही उत्पन्न हैं तब सूर्य की किरणों में जल का होना निर्विवाद है। फिर भी मूढ़ हिरनी को सूर्य की किरणों में जल होने का विश्वास नहीं होता (वह मरीचिका

१.सूर्य की पुत्री। २. 'साहित्य दर्पण' के एक श्लोक का सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को भ्रम ही समझती है)—यहाँ पर यह अस्प्रतुत अर्थ ही समझने में कष्ट करना पड़ता है, फिर इससे 'मुग्धा नायिका के नायक पर अविश्वास' रूप प्रस्तुत (अभिप्रेत) अर्थ की कल्पना करना तो और भी कष्ट साध्य है। इससे यहाँ 'कष्टार्थत्व' दोष है।

सूचना—पहले कहे गये 'क्लिष्टत्व' दोष का निराकरण कठिन शब्द में परिवर्तन करने से हो जाता है, अतः वह शब्द दोष है; परन्तु 'कष्टार्थत्व' में शब्द परिवर्तन करने पर भी क्लिष्टता दूर नहीं होती; इसमें क्लिष्टता शब्द में नहीं रहती, अर्थ में रहती है।

व्याहतत्व

किसी वस्तु का पहले उत्कर्ष (बढ़ती) या अपकर्ष (घटती) दिखा कर फिर उसके विपरीत कहने से 'व्याहतत्व' (वि+आहत) दोष होता है। जैसे,

जिन लोगों को चन्द्रमा की नवीन कला आनन्द नहीं देती, उन्हीं को आनन्दित करने के लिए प्रकृति की चन्द्रिका फैल रही है।"

यहाँ पहले चन्द्रकला का अपकर्ष दिखाकर, फिर उसका उत्कर्ष दिखाया गया है। यहाँ 'व्याहतत्व' दोष है।

अपुष्टार्थत्व

जहाँ किसी ऐसी वस्तु का वर्णन हो जिसके न होने पर भी इच्छित अर्थ की प्राप्ति में बाधा नहीं पहुँच सकती वहाँ 'अपुष्टार्थत्व' (अर्थ के पुष्ट होने में सहायक न होने का) दोष है। जैसे,

"आये वैरी विपुल चढ़के, अब उठो सैनिको तुम"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहाँ, 'विपुल' शब्द का प्रयोग अनावश्यक है । कारण, वैरियों की संख्या विपुल न भी हो, तो भी सैनिकों को उनका सामना करने के लिए उठना पड़ेगा । अस्तु, यहाँ 'अपुष्टार्थत्व' दोष है ।

सूचना—पूर्व-वर्णित 'अधिकपदत्व' दोष में अन्वय करते ही पद [शब्द] की निरर्थकता विदित हो जाती है; किन्तु 'अपुष्टार्थत्व' में पद का अन्वय हो जाता है, इसमें कोई बाधा नहीं पड़ती; बाधा तो तब उपस्थित होती है जब उस (शब्द) का अर्थ किया जाता है ।

संदिग्धत्व

जिस वाक्य में शब्दों का अर्थ निश्चय रूप से न समझा जा सके, जिसके विषय में सन्देह बना रहे, उसमें 'संदिग्धत्व' दोष होता है । जैसे,

जीना चाहो देश-हित या इन्द्रिय-सुख हेतु ।

यहाँ प्रकरण तो विदित नहीं, इससे यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि वक्ता विषय-वासना में लिप्त है या देश सेवा में । अतः यहाँ अभिप्राय संदिग्ध होने से 'संदिग्धत्व' दोष है ।

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त अन्य बहुत से दोष कविताओं में हो सकते हैं—जैसे, प्रतिकूलवर्णत्व, पतत्प्रकर्षत्व, प्रसिद्ध-त्यागत्व आदि । स्थान संकीर्णता और विस्तार भय से उनका विवेचन यहाँ नहीं किया जाता । इन दोषों के संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि सर्वत्र ही एक बात में दोष नहीं हो सकता । एक जगह वह सदोष है, तो दूसरी जगह गुण हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सकती है। जैसे श्रुतिकटुत्व दोष के सम्बन्ध में बतलाया जा चुका है कि जिन वर्णों के कारण माधुर्य गुण को व्याघात पहुँचता है, उनके कारण ही ओज गुण का उत्कर्ष बढ़ता है। ऐसे ही किसी शराबी या अत्यन्त दुःखी व्यक्ति का वर्णन करते समय यदि असंबद्ध और निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया जाय तो उनमें दोष समझना ही दोष है। अस्तु, प्रसंग देखकर दोषों की छानबीन करना उचित है।

————

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE